रबर

फूलदेव सहाय वर्मा, एम. एस-सी.; ए. आइ. आइ. एस-सी.

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

वक्तव्य

बहुत दिनों से हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों के अभाव का अनुभव किया जा रहा है; पर अब क्रमशः उस अभाव की पूर्ति होती जा रही है। पिछले कुछ वर्षों से विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की कई अच्छी पुस्तकें निकल रही हैं, फिर भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से विश्वविद्यालयों में विज्ञान की उच्चशिक्षा देने तथा वैज्ञानिक शोध करने के लिए आकर-ग्रन्थों या सहायक पुस्तकों की खोज आज भी जारी है। इसी बात को ध्यान में रखकर बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने वैज्ञानिक साहित्य की गवेषणापूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन का क्रम आरम्भ किया है।

गत वर्ष इस परिषद् ने प्रयाग-विश्वविद्यालय के विज्ञान-विभाग के विद्वान् प्रोफेसर डॉ० सत्यप्रकाश की एक पुस्तक (वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा) प्रकाशित की थी। यह दूसरी पुस्तक (रबर) इस वर्ष प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा की प्रकाशित हो रही है। इस समय तक हिन्दी में इस विषय की कोई पुस्तक देखने में नहीं आई; किन्तु यह विषय आज के वैज्ञानिक संसार में कितना नवीन, महत्त्वपूर्ण और सामयिक है, यह इस पुस्तक के पाठ से ही मालूम होगा।

इस पुस्तक में प्रो० वर्माजी के उन पाँच भाषणों का समावेश है, जो सन् १६५३ ईसवी में, ४ मार्च से ८ मार्च तक, पटना के साइन्स-कालेज में, परिषद् की ओर से हुए थे। विज्ञान-विशारद लेखक ने बड़ी सरल भाषा में आज तक के रबर-सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधानों के प्रामाणिक विवरण इस पुस्तक में दिये हैं। साथ ही, आज के युग में रबर के व्यापक उपयोग-प्रयोग की महत्ता भी प्रत्यक्ष उदाहरणों तथा चित्रों से दरसाई है। इस प्रकार, इस पुस्तक की उपादेयता स्पष्ट प्रकट है।

इस पुस्तक के लेखक प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा बिहार-राज्य के सारन-जिले के निवासी हैं। आप काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में अनेक वर्षों तक औद्योगिक रसायन के युनिवरसिटी-प्रोफेसर रह चुके हैं। आप वहाँ कालेज-आफ-टेकनोलोजी के प्रिंसिपल भी थे। इस समय आप बिहार-विश्वविद्यालय में कालेजों के निरीक्षक हैं। हिन्दी में आपकी लिखी एक दर्जन से अधिक वैज्ञानिक पुस्तकें हैं और अंग्रेजी में भी आपकी पाँच वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में आपके अनुसंधानपूर्ण वैज्ञानिक निबंध छपा करते हैं। भारत-सरकार ने विज्ञान-शास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने के लिए जो विद्वत्समिति संघटित की है, उसके आप संयोजक-सदस्य हैं।

प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा की मौलिक और नवीन पुस्तक (ईख और चीनी) भी बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से इसी साल इस पुस्तक के बाद ही प्रकाशित हो रही है। वह पुस्तक भी हिन्दी में अपने विषय की बिलकुल नई है। आशा है कि वर्माजी की दोनों पुस्तकों से हिन्दी के एक अभाव की बहुलांश में पूर्ति होगी।

माघी पूर्णिमा
सं० २०११ वि०

शिवपूजन सहाय
(परिषद्-मंत्री)

लेखक के दो शब्द

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के तत्त्वावधान में किसी वैज्ञानिक विषय पर व्याख्यान देने को मुझसे कहा गया था। इस व्याख्यान-माला के लिए मैंने 'रबर' विषय चुना। जो पाँच व्याख्यान मैंने दिये, उन्हींके आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। जहाँ तक मालूम है, अभी तक रबर पर कोई पुस्तक हिन्दी में छपी नहीं है।

पुस्तक कैसी है, इसका निर्णय पाठक स्वयं कर सकते हैं। इस पुस्तक को पूर्ण और उपयोगी बनाने का मैंने पूरा प्रयत्न किया है। इस पुस्तक में रबर के विज्ञान और व्यवसाय की सारी बातों के समावेश करने की मैंने चेष्टा की है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का मैं आभारी हूँ, जिसके प्रयत्न से ही यह पुस्तक इतना शीघ्र छपकर इतनी सुन्दरता से प्रकाशित हो रही है।

शक्ति-निवास,
बोरिंग रोड, पटना
फाल्गुन, सं० २०११ वि०

फूलदेव सहाय वर्मा

विषय-सूची

चित्र-सूची

रबर

पहला अध्याय
रबर की उपयोगिता

आधुनिक सभ्यता का रबर एक आवश्यक प्रतीक है। संसार की बड़ी उपयोगी वस्तुओं में रबर का स्थान बहुत ऊँचा है। हमारे जीवन से यदि रबर आज पूर्णतया हटा लिया जाय तो आधुनिक सभ्यता अन्धकार युग में चली जायगी इसमें कोई सन्देह नहीं। रबर की आवश्यकता शान्तिकाल और युद्धकाल में समान रूप से होती है। रबर के बने सामानों की संख्या और उपयोगिता इतनी बढ़ गई है कि आज हम यह सोच ही नहीं सकते कि किसी समय में रबर के सामानों का बिलकुल अभाव था और उनके बिना ही हमारा सारा काम-काज सुचारु रूप से चलता था। रबर की महत्ता का पूरा अनुभव हमें गत विश्वयुद्ध में हुआ जब कुछ देशों को रबर का मिलना बन्द हो गया था। रबर के बने विभिन्न सामानों की संख्या आज पैंतीस हजार तक पहुँच गई है। केवल हमारे प्रतिदिन व्यवहार के अथवा युद्ध के ही सामान रबर के नहीं बनते, वरन् अनेक उद्योग-धन्धों के विकास में भी रबर का आज पूरा हाथ है।

संसार में जितना रबर पैदा होता है उसका प्रायः ७८ प्रतिशत गाड़ियों के टायर और ट्यूब बनाने में लगता है। ये टायर और ट्यूब यात्रियों के ले जाने-ले आनेवाले, सामानों के ढोनेवाले, मोटर बसों, मोटर ट्रकों, बैलगाड़ियों (अब बैलगाड़ियों में भी रबर टायर इस्तेमाल हो रहे हैं), घोड़ागाड़ियों, मोटरकारों, वायुयानों, खेतों के ट्रैक्टरों और अन्य यंत्रों, मोटर साइकिलों, बाई-साइकिलों और ट्राइसाइकिलों में लगते हैं। शेष २२ प्रतिशत में प्रायः १० प्रतिशत नाना प्रकार के यंत्रों के भागों, पटियों (बेल्टों) के बनाने, साँचों और ठप्पों के बनाने, सामानों के बाँधने और तरलों के नलों, होजों इत्यादि के बनाने में काम आते हैं। लगभग ३ प्रतिशत बूटों, जूतों, जूतों के तलवों और एड़ियों के बनाने, ४ प्रतिशत बिजली के तारों और सामुद्री तारों के बनाने में, शेष ५ प्रतिशत में अन्य हजारों सामान; खिलौने, बरसाती कपड़े, गच पर बिछाने की चादरों या चटाइयों, खेलकूद के सामानों, फुटबॉल, टेनिस और गोल्फ के गेंदों, ब्लैडरों और सरजरी के सामानों, गरम बोतलों, बर्फ के थैलों इत्यादि के बनाने में लगते हैं।

रबर के सामानों को हम निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—

क. यात्री ढोनेवाली मोटरगाड़ियों के टायर और ट्यूब

ख. बोझ ढोनेवाली मोटरगाड़ियों के टायर और ट्यूब

ग. खेत जोतनेवाले ट्रैक्टरों (कृषित्रों) के टायर और ट्यूब

घ. मोटर साइकिल, बाई-साइकिल और ट्राइ-साइकिल के टायर और ट्यूब

ङ. बैल और घोड़ेगाड़ियों के टायर
च. ठोस टायर
छ. वायुयानों के टायर और ट्यूब
ज. सामान्य यंत्रों के भाग, बिजली यंत्रों के भाग, नल और नलियाँ, मशीन चलाने की पटियाँ (बेल्ट), गठरी बाँधने के सामान, बूट, जूते, जूतों के तलवे और एड़ियाँ
झ. रबर के वस्त्र, बरसाती कपड़े और बरसाती टाट
ञ. औषधियों, सरजरी और दाँतसाजी के सामान
ट. खेल के सामान, फूटबाल के ब्लैडर, टेनिस और गोल्फ के गेंद
ठ. बच्चों के सैकड़ों खिलौने, गुब्बारे, मूर्त्तियाँ इत्यादि
ड. सन्तति-निग्रह के सामान

रबर के सामान तैयार करने के सबसे अधिक कारखाने आज अमेरिका में हैं। समस्त रबर के उत्पादन का लगभग ५० प्रतिशत रबर अमेरिका में ही खपता है। वहाँ रबर के प्रायः ५०० कारखाने हैं जिनमें रबर के सामान बनते हैं। प्रायः डेढ़ लाख आदमी इन कारखानों में काम करते हैं। ऐसा अनुमान है कि अमेरिका में प्रायः ४ से ५ अरब रुपये के रबर के सामान बनते हैं।

भारत में १९४५ से १९४८ ई० तक प्रायः साढ़े तीन करोड़ पाउण्ड रबर का उत्पादन हुआ था। स्वतंत्रता मिलने के बाद भारत में भी रबर के सामान अधिक मात्रा में बनने लगे हैं। रबर के कारखानों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है। टायर और ट्यूब भी यहाँ पर्याप्त बनते हैं। लड़कों के खेल के गुब्बारे अब बहुत बनने लगे हैं। रबर के उत्पादन में भी वृद्धि हुई और हो रही है। कृत्रिम रबर पर अन्वेषण हो रहे हैं, पर इसके निर्माण का अभी कोई कारखाना भारत में नहीं खुला है।

उद्योग-धन्धों के विकास में रबर का पूरा हाथ है। प्रायः प्रत्येक उद्योग-धन्धे में कुछ-न-कुछ रबर का सामान अवश्य लगता है। रबर की टायर और ट्यूबवाली गाड़ियों से सामान ढोये जाते हैं। खेत जोतनेवाले ट्रैक्टरों के पहिए अब रबर के बनते हैं। ट्रैक्टरों में लोहे के चक्कों के स्थान में रबर के चक्कों के उपयोग से कृषि की आशातीत उन्नति हुई है। विद्युत् यंत्रों में रबर का उपयोग आज बहुत बढ़ रहा है। विद्युत् का अचालक अथवा कुचालक होने के कारण सामुद्री तारों और बिजली के सामान्य तारों में रबर का उपयोग आज प्रचुरता से हो रहा है। वैद्युत गुणों, अच्छे यांत्रिक गुणों और सरलता से सामानों के बनने के कारण उद्योग-धन्धों में रबर का उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है।

रबर का महत्त्व आज युद्ध में बहुत अधिक बढ़ गया है। यांत्रिक सेना बिना द्रुतगामी वाहनों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकती। युद्ध के गोलों, बारूद और अन्य अस्त्र-शस्त्रों को द्रुतगामी मोटरों से पहुँचाना आवश्यक है। यांत्रिक युद्ध के लिए विशेष साधनों, विशेष नियंत्रणों, विशेष उपकरणों, विशेष संरक्षक युक्तियों की आवश्यकता होती है और उनमें रबर के उपयोग के बिना काम नहीं चल सकता।

युद्ध के कारों, बसों और ट्रकों इत्यादि में टायर ऐसा होना चाहिए कि उनपर बमगोलों का कम-से-कम असर हो, तोप या बन्दूकों के गोलों से उनमें जल्दी छेद न हो। युद्ध टैंकों में रबर का उपयोग विशेष रूप से होता है। ऐसा कहा जाता है कि ३० टन के भार के टैंकों में प्रायः एक टन रबर लगता है। आधुनिक युद्धपोतों में प्रायः ७० टन रबर प्रति पोत उपयुक्त होता है।

वायुयानों में पेट्रोल टंकियों और नम्य नालों, होज़ों में रबर लगता है। नम्य नाले, पेट्रोल, तेल, पानी, वायु तथा अन्य तरलों के एक स्थान से दूसरे स्थान के हस्तान्तरण में अत्यावश्यक है। आग बुझाने के लिए नम्य नालों का उपयोग होता है। नम्य नालों की युद्ध में उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी शान्तिकाल में।

युद्ध में संरक्षण के लिए रबर के विद्युत-अचालक तार और सामुद्री तार आवश्यक हैं। अन्वेषि-प्रकाश और प्रति-विमान तोपों के संचालन में रबर लगता है। विस्फोटों से संरक्षण में रबर के पट्टक उपयुक्त होते हैं। धक्के की चोट से बचाव के लिए युद्ध विमानों और मोटर टैंकों में रबर की गद्दियाँ लगी रहती हैं। पाराशूट (वायु-छत्र) के कुछ अंशों और युद्ध के अन्य उपकरणों में रबर लगता है।

आजकल सैनिकों, विशेषतः जल-सैनिकों, के बूट और जूते रबर के बनते हैं। वायुसेना के सैनिकों के जूते विशेष रूप से रबर के बनते हैं। वर्षा से रक्षा के लिए रबर की बरसाती बनती है। गैस-मास्क के कुछ भाग में रबर लगता है।

युद्धपोत, युद्ध विमान और युद्ध वाहकों के सञ्चय बैटरी के लिए रबर के आवरण बनते हैं। पन्तून या पीपे के पुल आज रबर के बनते हैं। रबर की ही आज छोटी-छोटी नावें, जीवन जाकिट या निचोल और अवष्टम्भ बैलून बनते हैं।

शान्तिकाल के सामानों में रबर का स्थान प्रमुख है। आज रबर के जूते, जूतों के तलवे और एड़ियाँ प्रचुरता से बनती हैं। बरसाती कपड़ों और टाटों में रबर लगता है। औषधालयों के अनेक सामान, सरजनों के दस्ताने, गरम जल और बर्फ की बोतलें, सूत, स्पंज, गद्दियाँ, तकिए, थैलियाँ, बच्चों के खिलौने इत्यादि रबर के बनते हैं।

रबर की सड़कें भी बन सकती हैं। ऐसी एक सड़क हालैंड के एमस्टरडम नगर में १३ वर्ष पूर्व बनी थी। युद्ध के दिनों में यातायात बहुत अधिक होने पर भी अभीतक यह सड़क अच्छी हालत में है। ऐसी सड़कें रबर के छोटे-छोटे टुकड़ों और कोलतार के मिश्रण से बनती हैं। बहुत अधिक गर्मी और सर्दी से ये अधिक प्रभावित नहीं होतीं। ऐसी सड़कों पर धूलें बहुत कम होती हैं और कारों और बसों को अधिक नुकसान नहीं होता। ऐसी सड़कों पर ब्रेक भी अधिक सफलता से लगता है। भारत की सड़कें धूल के लिए विख्यात हैं, यद्यपि नगर की सड़कें कोलतार के बने होने के कारण धूल की मात्रा उन नगरों में अब बहुत कम हो गई है जहाँ की सड़कें कोलतार से बनी हैं।

रबर का व्यवसाय आज दिनोंदिन बढ़ रहा है।

दूसरा अध्याय
रबर का उत्पादन

पहले-पहल जंगलों में आप-से-आप उगे रबर के पेड़ों से रबर प्राप्त हुआ था। ये पेड़ अनेक प्रदेशों के विशेषतः अमेरिका के जंगलों में उपजे थे। पीछे जब रबर की माँग बढ़ने लगी तब अनेक दूसरे पेड़ों और लताओं की खोज शुरू हुई जिनसे रबर प्राप्त हो सकता था और फिर रबर के पेड़ों की खेती भी शुरू हुई। आज रबर की माँग इतनी बढ़ गई है कि संसार के अनेक भागों में विस्तृत रूप से इसकी खेती होती है और कृत्रिम रीति से भी पर्याप्त मात्रा में रबर का उत्पादन होता है।

रबर का उत्पादन किस गति से बढ़ा है इसका कुछ अनुमान निम्नलिखित आँकड़ों से होता है—

प्राकृतिक रबर का उपभोग

	टन
१८६०	१,५००
१८७५	६,०००
१८९०	३०,७५०
१९००	४८,०००
१९१०	९५,०००
१९१५	१५५,०००
१९२०	२९५,०००
१९२५	५२५,०००
१९३०	८२५,०००
१९३५	८७३,०००
१९३७	१,१२५,०००
१९४०	१,३९२,०००

किस देश में कितना रबर उत्पन्न होता है उसका तुलनात्मक ज्ञान १९४० ई० के उत्पादन के निम्नलिखित आँकड़ों से प्राप्त होता है—

ब्रिटिश मलाया	५४०,४१७ बड़ा टन*
नेदरलैंड इस्ट इण्डीज	५३६,७४० ,,

*एक बड़ा टन २२४० पाउण्ड का होता है।

सीलोन	८८,८६४ वड़ा टन
इण्डोचायना	६४,४३७ ,,
थाइलैण्ड	४३,६४० ,,
सरावक	३५,१६६ ,,
उत्तर वोर्नियो	१७,६२३ ,,
दक्खिन अमेरिका	१७,६०१ ,,
भारत	११,५१० ,,
अफ्रिका (लाइवेरिया को छोड़कर)	१०,१०३ ,,
वर्मा	६,६६८ ,,
लाइवेरिया	७,२२३ ,,
मेक्सिको	४,१०६ ,,
फिलिपिन	२,२६७ ,,

भारत में १६४२ में १,३८,४४२ एकड़ भूमि में रवर की खेती हुई थी, विभिन्न वगीचों की संख्या १४,६८२ थी। प्रायः ५० हजार मजदूर उन खेतों में काम करते थे। इनमें ७५ प्रतिशत त्रावणकोर में, १२ प्रतिशत मद्रास में, १० प्रतिशत कोचीन में, २ प्रतिशत कुर्ग में और १ प्रतिशत मैसूर में थी। इन खेतों से निम्नलिखित मात्रा में रवर की पैदावार हुई थी—

१६४२	३५,७५७,६८८ पाउण्ड
१६४४	३८,४६६,७६० ,,
१६४५	३६,०१२,४८० ,,
१६४६	३५,१०५,२८० ,,

१६४७ में समस्त जगत् में रवर का उत्पादन २,६८८,०००,००० पाउण्ड हुआ था। भारत का उत्पादन एक प्रतिशत से कुछ अधिक है।

मलाया में ५२ प्रतिशत, डच इण्डीज़ में २३ प्रतिशत रवर पैदा होता है।

भारत में प्रति एकड़ में २६३ पाउण्ड रवर पैदा होता है। अन्य देशों की औसत पैदावार ३०० से ४०० पाउण्ड प्रति एकड़ है। उन्नत खेती और वीज के चुनाव, कलियों के कलम लगाने के कारण पदावार १००० पाउण्ड तक वढ़ी हुई पाई गई है।

भारत से कच्चा रवर वाहर भी जाता है और वाहर से भारत में आता भी है। १६४५-४६ में ५,०६६,००० पाउण्ड रवर वाहर भेजा गया था और १३८,००० पाउण्ड वाहर से आया था। भारत का रवर प्रधानतया इङ्गलैंड, रूस और लंका जाता है। वर्मा, लंका, मलाया और अमेरिका से वाहर से आता है। रवर के आयात और निर्यात पर कोई कर नहीं लगता। पर वाहर से मँगाने और भेजने के लिए इण्डियन-रवर-वोर्ड की आज्ञा लेनी पड़ती है।

इण्डियन-रवर-वोर्ड की स्थापना के लिए १६४७ में कानून वना था। वोर्ड ने सिफारिश की थी कि रवर की खोज और उत्पादन वढ़ाने के प्रयत्न के लिए रवर पर प्रति १०० पाउण्ड पर आठ आना उत्पादन-कर लगाया जाय। यह वोर्ड रवर का मूल्य भी निश्चित करती है। इण्डियन-रवर-वोर्ड में २३ सदस्य होते हैं और उनकी नियुक्ति इस प्रकार होती है—

१ दो सदस्य, सेंट्रल सरकार क, सेंट्रल सरकार द्वारा नियुक्त
२ एक सदस्य कृषि-अनुसन्धान-कौंसिल के प्रतिनिधि
३ एक सदस्य मद्रास-सरकार द्वारा नियुक्त
४ तीन सदस्य त्रावणकोर-सरकार द्वारा नियुक्त
५ दो सदस्य कोचीन-सरकार द्वारा नियुक्त
६ तीन सदस्य दक्खिन भारत के युनाइटेड प्लैंटर्स-एसोशिएशन के प्रतिनिधि
७ तीन सदस्य कोटायाम भारत के रवरग्रोवर-एसोशियेशन के प्रतिनिधि
८ तीन सदय त्रावणकोर के प्लैएटर्स एसोशिएशन के प्रतिनिधि
९ तीन सदस्य बंवई के इण्डियन रवर इण्ड्रस्टीज-एसोशिएशन और कलकत्ता के भारत के रवर मैनुफैक्चरर-एसोशिएशन के प्रतिनिधि
१० एक सदस्य रवर-व्यवसायियों के प्रतिनिधि
११ रवर-उत्पादन-कमिश्नर

भारत में रवर के उद्योग में प्रायः तीन करोड़ रुपये का मूलधन लगा है, १९४३ में ११४ कारखाने थे जिनमें बंवई में ४०, बंगाल में ३०, पंजाब में १६, दक्खिन भारत में १४, दिल्ली में ६, मध्यप्रदेश में २, उत्तरप्रदेश में १ और सिन्ध में २ थे।

१९४७ में समस्त संसार में १,६००,००० टन रवर की खपत हुई थी। इसमें प्रायः २५ प्रतिशत कृत्रिम रवर था। उसी वर्ष भारत में १६,००० टन रवर की खपत हुई। भारत में रवर के टायर, ट्यूव, विजली के तार, जूते और कुछ अन्य यंत्रों के सामान वनते हैं। यंत्रों के सामान में होज़, साँचे में ढले हुए सामान, इवोनाइट, सूत, विछाने की चादरें, सरजरी के सामान, जूते और खिलौने हैं। वाहर से भी पर्याप्त मात्रा में रवर का सामान आता है।

संरक्षण के लिए रवर के सामान तैयार करनेवालों का प्रार्थनापत्र टैरिफ वोर्ड के पास गया था, किन्तु वोर्ड ने संरक्षण देना अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था कि कच्चा माल भारत में मिलता है, मजदूर सस्ते मिलते हैं और सामान उत्कृष्ट कोटि का वनता है, इससे संरक्षण की आवश्यकता नहीं है, पर मशीनों के वाहर से मँगाने में सरकार सहायता करेगी।

कृत्रिम रवर—कृत्रिम रवर का उत्पादन वड़ी मात्रा में १९३३ ई० से शुरू हुआ। १९३९ ई० में रूस में ५०,००० टन, जर्मनी में २०,००० टन और अमेरिका में ३,००० टन कृत्रिम रवर का उत्पादन हुआ। इसके वाद अनेक दूसरे देशों में भी कृत्रिम रवर का उत्पादन शुरू हुआ। रूस से कृत्रिम रवर के उत्पादन के सम्बन्ध में निम्नलिखित आँकड़े प्राप्त होते हैं।

	कृत्रिम रवर टन
१९३३	२,२०४
१९३४	११,१३९
१९३५	२५,५८१
१९३६	४४,२००
१९३७	२५,०००
१९३८	५३,०००

जर्मनी में निम्नलिखित मात्रा में कृत्रिम रवर का उत्पादन हुआ—

१९३४	१० टन
१९३५	१०० ,,
१९३६	१,५०० ,,
१९३७	४,००० ,,
१९३८	१०,००० ,,
१९३९	२५,००० ,,
१९४०	६,०००० ,,

अमेरिका के कृत्रिम रबर के उत्पादन के आँकड़े निम्नलिखित हैं—

	नियोप्रीन	ब्युटाडीन	थायोप्लास्ट
	बड़ा टन		
१९३९	१७'१०	०	५००
१९४०	२५००	६०	७००
१९४१	६३००	४०००	१४००

अमेरिका ने प्रतिवर्ष १, १००, ००० टन कृत्रिम रबर के उत्पादन का लक्ष्य रखा है। इसमें ७० प्रतिशत ब्यूना किस्म का होगा और शेष में थायोकोल, नियोप्रीन और ब्युटिल रबर होगा।

प्राकृतिक रबर का मूल्य कृत्रिम रबर की तुलना में कैसे पड़ता है इसका ज्ञान निम्नलिखित आँकड़ों से प्राप्त होता है। रबर के ये मूल्य १९४१ ई० के हैं। तब से कृत्रिम रबर के निर्माण में पर्याप्त सुधार हुआ है जिससे उत्पादन का मूल्य आज बहुत-कुछ घट गया है और प्राकृतिक रबर का मूल्य उत्पादन खर्च की वृद्धि से बढ़ गया है।

	प्रति पाउण्ड सेण्ट में *
प्राकृतिक रबर	२३
नियोप्रीन जीएन	६५
ब्यूना-एस	६०
परब्यूनान	७०
थायोकोल-एफ	४५
विस्टानेक्स	४५
हाइकर ओआर	७०
कोरोसील	६०

क्रेमर का जिनके मूल्य के आँकड़े ऊपर दिए हैं मत है कि यदि कृत्रिम रबर के निर्माण के कच्चे मालों का मूल्य पर्याप्त गिर जाय तो कृत्रिम रबर भी प्राकृतिक रबर-सा ही सस्ता तैयार हो सकता है।

———

* उस समय १०० सेण्ट के प्राय: चार रुपये होते थे।

तीसरा अध्याय
रबर का इतिहास

रबर का आदि स्थान अमेरिका है। अमेरिका की एक प्राचीन जाति मयान थी। मयान जाति के कुछ स्मारक-पदार्थ और चिह्न प्राप्त हुए हैं जो ११ वीं सदी के बने समझे जाते हैं। उन पदार्थों में रबर के गेंद पाये गये हैं। पत्थर के बने आंगन भी पाये गये हैं जहाँ रबर के गेंदों से खेल खेले जाते थे। ऐसा मालूम होता है कि मयान देवताओं को रबर के गेंद चढ़ाये जाते थे।

मयान जाति की पौराणिक कथाओं में ऐसा लिखा है कि उनके श्वेत देवता और देवता के शत्रुओं के बीच एक समय युद्ध छिड़ा था और उसी समय से गेंदों के खेल प्रारम्भ हुए। पीछे मयान जाति के शिष्ट जनों का यह आमोद का खेल बन गया और उनसे अन्य लोगों ने इस खेल को सीखा।

कोलम्बस पहला यूरोपियन था जिसने अमेरिका की दूसरी यात्रा में १४९३ ई० में देखा था कि हैटि (Haiti) के आदि निवासी किसी पेड़ से निकले गोंद से बने गेंद से खेलते थे। शाहनशाह मौंटेज़ुमे (Montezume) ने १५२० ई० में कार्टेज़ (Cortez) और उनके सैनिकों के साथ रबर के बने गेंद से खेलकर उनका आदर-सत्कार किया था।

ऐसा मालूम होता है कि दक्खिन-पूर्व एशिया के आदि निवासी भी रबर से परिचित थे और उससे टोकरियाँ, घड़े और इसी प्रकार की चीजें तैयार करते थे। पर यूरोपवालों को अमेरिका से ही रबर का ज्ञान प्राप्त हुआ है।

साधारणतः लोगों का मत है कि उत्तर अमेरिका में ही पहले-पहल रबर का पता लगा था और वहाँ वह एक प्रकार की लता गुयायुले श्रव से निकलता था। पीछे मैक्सिको में एक बड़े पेड़ कैस्टिलोआ का पता लगा जिससे रबर प्राप्त हो सकता था। इसी पेड़ के रबर से खेलनेवाले गेंद बनते थे। पीछे उत्तर और मध्य अमेरिका के अन्य वृक्षों से भी रबर के प्राप्त होने का पता लगा; पर इन वृक्षों से प्राप्त रबर निकृष्ट कोटि का होता था।

उच्च कोटि का रबर तो दक्खिन अमेरिका के अमेज़न के जंगलों में प्राप्त एक वृक्ष हिवीया (Hebea) से प्राप्त हुआ था। इस पेड़ का, जिससे रबर प्राप्त होता है और जिसका नाम हिवीया ब्रैसिलियैन्सिस है, वर्णन पहले-पहल एक फ्रांसीसी ला कोडेमिन (La Codamine) ने किया है जिस पेड़ का उन्होंने अमेजन के प्रथम वैज्ञानिक अभियान के समय पता लगाया था जब वे उस अभियान का सदस्य बनकर गये थे। इस वृक्ष का पूर्ण अध्ययन एक दूसरे फ्रांसीसी फ्रेस्नो (Fresnau) ने किया जिसका वर्णन उन्होंने १७३६ ई० में किया था।

ला कोंडेमिन ने यह भी वर्णन किया है कि वहाँ के निवासी उस पेड़ की छाल को काटकर किस प्रकार उससे दूध-सा रस-आचीर निकालते थे और उस आचीर को कैसे जमाकर कड़ा करते और फिर उसे वस्त्रों पर जमाकर ऐसा वस्त्र तैयार करते थे, जिसमें जल प्रविष्ट नहीं कर सकता था। उससे जूते और साँचों में ढाल कर द्रव पदार्थों के रखने की बोतलें या इसी प्रकार के अन्य पात्र बनाते थे। इन फ्रांसीसियों ने रबर को यूरोप में लाने की चेष्टाएँ भी की थीं; पर इसमें वे सफल नहीं हुए।

सन् १७५६ में पारा (Para) की सरकार ने पोर्तुगाल के राजा के पास रबर के बने कपड़े भेजे। इन कपड़ों को देखकर वहाँ के लोगों को बहुत कौतूहल हुआ और वहाँ के वैज्ञानिक बहुत चकित हुए। उस समय एक औंस रबर का मूल्य एक गिन्नी होता था।

रबर का नाम 'इण्डिया-रबर' एक अंग्रेज़ रसायनज्ञ प्रीस्टले (Preistley) का दिया हुआ है। यह नाम उन्होंने १७७० ई० में दिया था। प्रीस्टले वे ही रसायनज्ञ हैं जिन्होंने आक्सिजन का आविष्कार किया था, और जिससे 'रसायन के पिता' कहे जाने लगे। उन्होंने देखा था कि पेंसिल का चिह्न इससे 'रब' करने अर्थात् घिसने से दूर हो जाता है और उससे कागज की कोई क्षति नहीं होती। चिह्न के 'रब' हो जाने या घिसने के कारण ही इसका नाम रबर पड़ा, जिसे हम हिन्दी में रबड़ भी कहते हैं और इसी घर्षण गुण के कारण डा० रघुवीर ने रबर का अनुवाद हिन्दी में घृपि किया है। इसके बाद ही सन् १७७३ से रबर के छोटे-छोटे घन, जिन्हें खुरचनी (Erasers) कहते हैं, पेंसिल के चिह्न मिटाने के लिए लण्डन और पेरिस में बिकने लगे।

१७९१ ई०में पील (Peal) नामक एक व्यक्ति ने देखा कि तारपीन के तेल में रबर घुल जाता है और इस घोल या विलयन को वस्त्र पर लेप कर सुखा देने से उस वस्त्र में जल फिर प्रविष्ट नहीं करता। मैकिण्टोश (Macintosh) पहला व्यक्ति थे जिन्होंने ऐसे बरसाती कपड़े रबर के सहयोग से, व्यवसाय के दृष्टिकोण से, तैयार किया था। इसी कारण बरसाती कपड़े को मैकिण्टोश भी कहते हैं। नफ्था में भी रबर घुल जाता है। नफ्था के योग से बरसाती कपड़ा तैयार करने का कारखाना १८२३ ई० में ग्लासगो में खुला। इङ्गलैण्ड के माईकेल फैरेडे (Mechael Faraday) पहला वैज्ञानिक थे जिन्होंने रबर के संघटन का अध्ययन किया और उससे पता लगाया कि रबर में जो प्रमुख यौगिक रहता है, उसमें कार्बन के दस परमाणु और हाइड्रोजन के सोलह परमाणु विद्यमान हैं अर्थात् जिसका सूत्र $C_{10}H_{16}$ है। पीछे इसका अधिक यथार्थ सूत्र (C_5H_8)n का पता लगा, जहाँ n एक अनिश्चित संख्या है।

टौमस हैंकौक (Thomas Hancock) एक दूसरा व्यक्ति थे जो रबर के उद्योग-धन्धे के पिता कहे जाते हैं। १७८६ ई० से १८६५ ई० तक यह जीवित रहे। १८२४ ई० में यह रबर के धन्धे में लगे। यह रबर से ढका हुआ वस्त्र बनाना चाहते थे। इसके लिए उन्हें रबर के रस-आचीर की आवश्यकता पड़ी। सूखे रबर से उनका काम नहीं चल सकता था। उस समय आचीर इङ्गलैण्ड में प्राप्य नहीं था। उस समय ब्रेजील से रबर के गेंद बनकर इङ्गलैण्ड आते थे। रबर की बोतलें और अन्य पात्र भी बनकर आते थे; पर ये हैंकौक के कामों के लिए उपयुक्त नहीं थे।

हैंकौक ने पहले-पहल देखा कि रवर के टुकड़ों को काटकर तुरन्त जोड़ देने से वे जुट जाते हैं। उन्होंने रवर के काटने के लिए एक मशीन बनवाई। उस मशीन के कक्ष (Chamber) में एक गोलक रखा जिसमें नोकीले काँटे लगे हुए थे, जो घूमते थे। हैंकौक के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब उन्होंने देखा कि गरमी उत्पन्न होने के कारण रवर के टुकड़े गुँथे हुए आटे के ऐसे हो गये थे। अब उन्हें मालूम हो गया कि गरमी और घर्षण की सहायता से वे रवर को जिस आकार में चाहे बना सकते हैं। इस मशीन में उन्होंने पीछे सुधार किया और इसका नाम पीछे चर्वक (मैस्टिकेटर) पड़ा।

चित्र १—टौमस हैंकौक, रबर धन्धे का पिता (१७८६–१८६५)

इसी समय से रवर के उद्योग-धन्धे की नींव पड़ी। हैंकौक ने इस दिशा में पर्याप्त उन्नति की। उनके आविष्कारों के फल-स्वरूप ही आज हम सैकड़ों वस्तुओं के निर्माण में समर्थ हो सके हैं। फैरेडे और साइमंस (Siemens) ने १८४६ ई० में देखा कि रवर का एक दूसरा रूपान्तर गटापरचा विद्युत् का अच्छा अचालक है, और उसका उन्होंने वैद्युत यंत्रों में उपयोग किया। १८७० ई० में स्पष्ट रूप से मालूम हुआ कि विजली के तारों को ढकने के लिए रवर वहुत अच्छा पदार्थ है और आज इस काम के लिए विजली के तारों को ढकने के लिए रवर का उपयोग वहुत अधिक वढ़ गया है।

चित्र २—चार्ल्स गूड इयर वल्कनीकरण का आविष्कर्त्ता (१८००-१८६०)

अवतक रवर के जो सामान वनते थे, उनमें कुछ दुर्गंध रहती थी। ऐसे सामानों पर ठंढ और गरमी का प्रभाव भी अधिक पड़ता था। गरमी से वे कोमल हो जाते थे और ठंड से भंगुर।

१८३१ ई० में गूड इयर (Good Year) ने रवर के गुणों के उन्नत करने की चेष्टाएँ कीं। रवर का महत्त्व भविष्य में वहुत अधिक वढ़ जायगा, इस दृष्टि से उन्होंने अपना सारा समय और पर्याप्त धन इसमें लगाकर अनुसंधान करना शुरू किया। उन्होंने अनेक प्रयोग किये। पहले उन्हें सफलता नहीं मिली, निराशा ही निराशा मिली; पर इससे वे हताश नहीं हुए। प्रयत्न करते ही गये। अनेक पदार्थों से मिलाकर वे रवर को गरम करने लगे। पीछे १८३९ ई० में उन्होंने देखा कि रवर को गन्धक के साथ मिलाकर गरम करने से रवर के गुणों में वहुत कुछ अन्तर पड़ जाता है। इस क्रिया को वल्कनीकरण

कहते हैं। इसका दूसरा नाम अभिसाधन भी है। रवर के उद्योग-धन्धे की सफलता का वहुत कुछ श्रेय वल्कनीकरण पर निर्भर करता है। उन्होंने इसका पेटेंट १८४१ ई० में लिया। प्रायः इसके शीघ्र ही वाद १८४३ ई० में हैंकौक ने भी इसी संवंध में एक पेटेंट लिया। हैंकौक ने रवर को पिघले गंधक में डुवाकर अथवा रवर को गंधक और दूसरे पदार्थों के साथ दाव-तापक में गरम कर वल्कनीकरण किया था। हैंकौक ने देखा कि गंधक के साथ देर तक गरम करने से रवर कचकड़ा (एवोनाइट) में परिणत हो जाता है।

अमेरिका में १८३२ ई० में चैफी और हौस्किन्स (Chafee and Hoskins) ने रवर का पहला कारखाना खोला। इस कारखाने में प्रधानतः वरसाती कपड़े, वूट और जूते वनते थे। उन्होंने एक वड़ी मशीन भी वनाई, जिसे प्ररम्भ या कलेण्डर कहते हैं, जो आज भी प्रायः उसी रूप में उपयुक्त होती आ रही है। धीरे-धीरे अव रवर के उद्योग-धन्धे वढ़ने लगे और रवर के जूते, वोतल और तम्वाकू-दान वनने लगे।

वल्कनीकरण के वाद रवर के सामानों और रवर की माँग क्रमशः वढ़ने लगी। अव रवर के जूते ब्रेजिल से नहीं आते थे। रवर के गेंदों से अव जूते वनने लगे। अन्य पदार्थों से रवर प्राप्त करने की चेष्टाएँ भी होने लगीं।

एक अंग्रेज़ हौविसन (Howison) ने १७९८ ई० में स्ट्रेट्स सैटलमैण्ट में एक लता युर्सियोला इलास्टिका (Urceola elastica) का पता लगाया, जिससे रवर प्राप्त हो सकता था। प्रायः इसी समय में रौक्सवर्ग (Roxburgh) ने आसाम में एक पेड़ फिकस इलास्टिका (ficus elastica) का पता लगाया जिससे भी रवर प्राप्त हो सकता था। १८४२ ई० में ये रवर सिंगापुर से इङ्गलैण्ड आने लगे। माँग की वृद्धि से रवर के मूल्य में भी वृद्धि हुई और रवर प्राप्त करने के अन्य साधनों की खोज होने लगी।

१८६० ई० के वाद से अफ्रिका के वेस्टकोस्ट से भी रवर आने लगा। यह रवर लैण्डोलफिया (Landolphia) लता से प्राप्त होता था; पर ब्रैज़िल से प्राप्त रवर निम्न कोटि का होता था। इस समय कुछ वर्षों में पनामा और कोलम्विया के जंगलों से रवर प्राप्त करने के प्रयत्न में ये वृक्ष वहुत अधिक नष्ट हो गये। अमेज़न जंगलों के वृक्ष भी वहुत कुछ नष्ट हो गये। अव तक इङ्गलैण्ड और अमेरिका में रवर प्रधानतया ब्रेज़िल से आता था। १८३६ ई० में १३१,००० जोड़े जूते और १४२,००० पाउण्ड रवर ब्रेज़िल से वाहर गया था। १८५३ ई० में २, २५० टन रवर ब्रेज़िल से वाहर गया। १८६८ ई० में पारा से ११,०००,००० फ्रांक और १८८२ ई० में ६५,०००,००० फ्रांक का रवर वाहर गया और तव से इसका निर्यात क्रमशः वढ़ता गया।

अव रवर के पेड़ उगाने की चेष्टाएँ इङ्गलैण्ड में हुईं। ब्रज़िल की सरकार ने रवर वृक्ष के वीजों को देश से वाहर ले जाने की निषेधाज्ञा जारी कर दी थी। इससे ये वीज खुले तौर से वाहर नहीं जा सकते थे। गुप्त रूप से ही वीज ब्रेजिल से इङ्गलैण्ड विकहम (Wickham) द्वारा आये और लण्डन के किऊवाग में १८७६ ई० में ७० हजार वीजों से केवल २७०० पेड़ उगे।

इन नवजात पेड़ों में अधिकांश लंका भेज दिये गये और कुछ वर्मा, कुछ जावा और कुछ सिंगापुर भेजे गये। इस प्रकार १६०० पेड़ लंका आये। १८८८ ई० में इन नवजात पेड़ों से उगे वृक्षों को छेवने से रवर के रस निकले और पहले ऐसा प्रतीत हुआ कि इन पेड़ों से व्यवसाय की दृष्टि से रवर प्राप्त करने में सफलता नहीं मिलेगी; पर पीछे यह बात गलत प्रमाणित हुई और इन पेड़ों के रोपक रवर की खेती को तत्परता से करने लगे। १६०१ ई० में साढ़े तीन टन रवर का निर्यात लंका से हुआ। १६०७ में इसकी मात्रा ३५५ टन पहुँच गई। साथ ही मलाया में भी रवर के पेड़ों से आक्षीर प्राप्त होने लगा। पहले रवर की खेती अंग्रेज और डच लोग ही करते थे। पीछे उन देशों के मूल निवासी भी इन पेड़ों को उगाने लगे और उनसे आक्षीर प्राप्त करने लगे। धीरे-धीरे इन पेड़ों की संख्या बहुत बढ़ गई।

उन्नत वैज्ञानिक ढंग से खेती और आक्षीर प्राप्त करने की रीतियों के सुधार से आक्षीर की उपलब्धि बढ़ गई और शुद्धतर और अमिश्रित आक्षीर प्राप्त होने लगा।

यद्यपि भारत में पहले से रवर कुछ अवश्य पैदा होता था; पर उसका व्यवसाय नहीं होता था। आधुनिक ढंग से रवर की खेती बहुत पीछे शुरू हुई। बीसवीं सदी में ही भारत में रवर की खेती शुरू हुई; पर इधर ३०-४० वर्षों से रवर के व्यवसाय का बहुत अधिक विकास हुआ है और आज प्रति वर्ष ३ करोड़ पाउण्ड से ऊपर रवर का उत्पादन होता है। रवर के उत्पादन के लिए भारत की जलवायु और ताप बहुत अनुकूल है। इसके लिए आर्द्र वायु और धूप आवश्यक है, जो भारत के अनेक प्रदेशों में प्रकृतितः प्राप्य है।

विभिन्न देशों में रवर की खेती गत विश्वयुद्ध (१६४३) के पूर्व इस प्रकार होती थी—

ब्रिटिश मलाया	३,४८२,०००	एकड़ भूमि में
लंका	६५२००	”
सरावाक	२२८०००	”
ब्रिटिश उत्तर बोर्नियो	१२६,६००	”
भारत और बर्मा	२३२,४००	”
नेदरलैण्ड इस्ट इण्डीज	३,२८५,०००	”
फ्रेंच इण्डोचायना	३१४२००	”
श्याम	३१२,०००	”
लाइबेरिया	७०,०००	”
ब्रेज़िल	१०,०००	”
अफ्रिका के अन्य प्रदेश	१३०,०००	”

१६४० ई० में विभिन्न देशों में निम्नांकित मात्रा में रवर का उत्पादन हुआ था—

देश	उत्पादन टन में	समस्त उत्पादन का प्रतिशत
मलाया	५४०,४१७	३८·६
नेदरलैण्ड इण्डीज	५३६,७४०	३८·६
लंका	८८,८६४	६·४
फ्रेंचइण्डोचायना	६४,४३७	४·६
थाइलैण्ड	४३,६४०	३ २

देश	उत्पादन टन में	समस्त उत्पादन का प्रतिशत
सरावक	३५,१६६	२ ५
उत्तर वोर्नियो	१७,६२३	१·३
भारत	११,५१०	०·८
वर्मा	६,६६८	०·७
फिलिपाइन	२,२६७	०·२
सुदूर पूर्व एशिया का समस्त उत्पादन	१,३५०,६६२	६७·२
दक्खिन अमेरिका	१७,६०१	१ ३
अफ्रिका	१७,३२६	१·२
मेक्सिको	४,१०६	०·३
संसार का समस्त उत्पादन	१,३८६,६६५ टन	१००·०

भारत का रवर अधिकांश कच्चे रूप में ही वाहर चला जाता था। पर अव भारत में भी रवर के सामान वनने के अनेक कारखाने खुल गये हैं और उनमें रवर के अनेक सामान आज वनते हैं। पर अव भी पर्याप्त मात्रा में रवर के सामान वाहर से आते हैं। भारतीय औद्योगिक कमिशन ने सिफारिश की थी कि रवर के सामानों को भारत में वनने के लिए विशेष प्रयत्नों से उत्साहित करना चाहिए और इसी के फलस्वरूप भारत में अनेक कारखाने खुल गये हैं। आज रवर के जूते, साइकिल के टायर और ट्यूव, रवर के कपड़े इत्यादि भारत में वनने लगे हैं; पर अव भी रवर के सामान पर्याप्त मात्रा में वाहर से आते हैं। यह आवश्यक है कि भारत में सरजरी के रवर के सामान, विजली के तार, मोटर के टायर और ट्यूव, जूते की एड़ियाँ और तलवे, स्नान करने के वस्त्र इत्यादि अधिकाधिक मात्रा में वने।

रवर की माँग वढ़ जाने, उससे उसका मूल्य अधिक चढ़ जाने और प्रथम विश्व-युद्ध १६१४ ई० से १६१६ ई० में जर्मनी के रवर न प्राप्त होने के कारण रसायनज्ञों ने विशेषतः जर्मनी में कृत्रिम रवर प्राप्त करने की चेष्टाएँ कीं। इसके फलस्वरूप कुछ ऐसी विधियों का आविष्कार हुआ जिनसे कृत्रिम रवर वड़ी मात्रा में तैयार हो सकता है। आज अनेक ऐसी विधियाँ हमें मालूम हैं, जिनसे हम अनेक प्रकार के रवर—विशेष-विशेष कामों के लिए उत्कृष्ट कोटि के रवर—को कृत्रिम रीति से तैयार कर सकते हैं।

कृत्रिम रवर के उत्पादन में प्रथम विश्वयुद्ध के वाद कुछ शिथिलता आ गई। रवर का उत्पादन वहुत वढ़ गया और माँग कम हो गई। इस परिस्थिति से वचाव के लिए सर जेम्स स्टेवेन्स ने व्रिटिश कॉलोनियों में रवर के उत्पादनों पर रोक लगाने का प्रस्ताव रखा। इसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि रवर का मूल्य वहुत अधिक वढ़ गया। १६२३ ई० में प्रायः ५ रुपया प्रति पाउण्ड तक रवर की दर वढ़ गई। इससे रवर के उत्पादन में उत्साह मिला और कृत्रिम रवर के उत्पादन में भी वृद्धि हुई। पर रवर के नियंत्रण की योजना १६२८ ई० में छोड़ देनी पड़ी।

इस बीच मोटरकार के ट्यूब की संख्या कम हो गई, जिससे रबर का मूल्य बहुत गिर गया। अब अन्तर्राष्ट्रीय रबर विनियम संविदा १९३४ ई० में प्रारम्भ हुआ। इस संविदा (Agreement) के अनुसार रबर के आयात पर और उससे उत्पादन पर रोक लग गई। इस संविदासमिति के सदस्य अंग्रेज, डच, फ्रांसीसी और स्यामवासी थे। प्राकृत रबर के उपभोक्ताओं की सलाह ली गई और उनका सहयोग प्राप्त किया गया। पर यह संविदा १९४४ ई० में समाप्त हो गई।

१९३६ ई० के बाद से रबर का उत्पादन प्रतिवर्ष १० लाख टन से अधिक हो गया है।

मोटरकारों के उत्पादन में इधर बहुत अधिक वृद्धि हुई है। मोटरकार के उत्पादन के साथ-साथ रबर के उत्पादन में भी उसी प्रकार वृद्धि हुई है।

चौथा अध्याय

प्राकृत रबर के स्रोत

कुछ पेड़ों से निकले रस या दूध या आक्षीर से रबर प्राप्त होता है। जिन पेड़ों से रबर प्राप्त होता है, उनकी संख्या प्रायः पाँच सौ तक पहुँच गई है। पहले ये पेड़ आप-से-आप संसार के अनेक भागों में उपजते थे। पीछे अनेक देशों में इन पेड़ों के उगाने की चेष्टाएँ हुईं। जब रबर के उत्पादन में कमी हो गई और माँग बढ़ गई तब उन सभी वृक्षों के रसों की परीक्षाएँ हुईं, जिनसे रबर या रबर-सा रस प्राप्त हो सकता था।

अमेज़न घाटी में पहले-पहल रबर के पेड़ पाये गये थे। इन पेड़ों की संख्या करोड़ों थी। ये पेड़ ब्रेज़िल, पेरू, बोलिविया, कोलम्बिया, इक्वेडोर और वेनेज़ुएला में पाये गये थे। सन् १६१४ तक इन्हीं पेड़ों से संसार का अधिकांश रबर प्राप्त होता था। पीछे रबर के पेड़ अन्य कई देशों में उगाये गये और उनसे रबर प्राप्त होने लगा। रबर देनेवाले कुछ पेड़ों का ही यहाँ वर्णन किया जा रहा है। उन सारे पेड़ों का जिनसे रबर प्राप्त हो सकता है, वर्णन करना सम्भव नहीं। अपेक्षाकृत कुछ ही पेड़ हैं, जिनसे व्यापार का रबर प्राप्त हो सकता है।

जिन पेड़ों से रबर प्राप्त होता है वे निम्नांकित प्राकृतिक 'कुल' के पेड़ हैं—

(१) एरण्ड कुल, यूफोर्बिएसी (Euphorbiaceae)
(२) दंशरोम-कुल, उर्टिकेसी (Urticaceae)
(३) करवीर-कुल, एपोसाइनेसी (Apocynaceae)
(४) अर्ककुल, ऐस्क्लीपवडेसी (Asclipvadaceae)
(५) संग्रथित-कुल की गुयायुले लता (Compositae) (Guayule plant)

जिन पेड़ों से रबर प्राप्त होता है, उनमें कुछ तो बड़े-बड़े वृक्ष हैं, कुछ लताएँ हैं जो झाड़ियों के रूप में उपजते हैं।

जिस पेड़ से सबसे अधिक रबर प्राप्त होता है, उसे हिवीया ब्रेजिलियेनसिस (Hevea Brasiliensis) कहते हैं। इससे प्राप्त रबर को हिवीया रबर कहते हैं। यही पेड़ दक्खिन अमेरिका के अमेज़न जंगलों में उगता है। दक्खिन भारत में यही पेड़ बोया गया है और उससे रबर निकलता है। त्रावणकोर, कोचीन, मैसूर, मालाबार, कुर्ग और सलेम

जिलों की पहाड़ियों पर यह पेड़ उगाया गया है। रबर के एक बाग का चित्र यहाँ दिया हुआ है। इससे जो रबर प्राप्त होता है वह अधिक मजबूत होता है और टूटने का आयास ऊँचा होता है। ब्रेज़िल और अमेज़न घाटियों के पेड़ों से जो रबर प्राप्त होता है, उसे पारा रबर वृक्ष कहते हैं। लंका में भी यही पेड़ उगाया गया है। उत्तर और पूर्व भारत में भी इस पेड़ के उगाने की चेष्टाएँ हुई हैं, पर उसमें अभीतक सफलता नहीं मिली है। कुर्सियांग, जलपाईगुड़ी और बक्सा में इसके पेड़ बोये गये हैं; पर उसके सम्बन्ध में जंगल विभाग का विवरण सन्तोषप्रद नहीं है।

आर्द्र और उष्ण जलवायु में यह सबसे अच्छा उपजता है। इसके लिए धरती नीची और समुद्रतल से बहुत ऊँची नहीं होनी चाहिए। बीजों से इसके पेड़ अंकुर देकर उगते हैं। बड़े-बड़े और छोटे-छोटे विस्तारवाले—दोनों प्रकार के खेतों में इसकी खेती होती है। बड़े-बड़े

चित्र ३—रबर का बाग
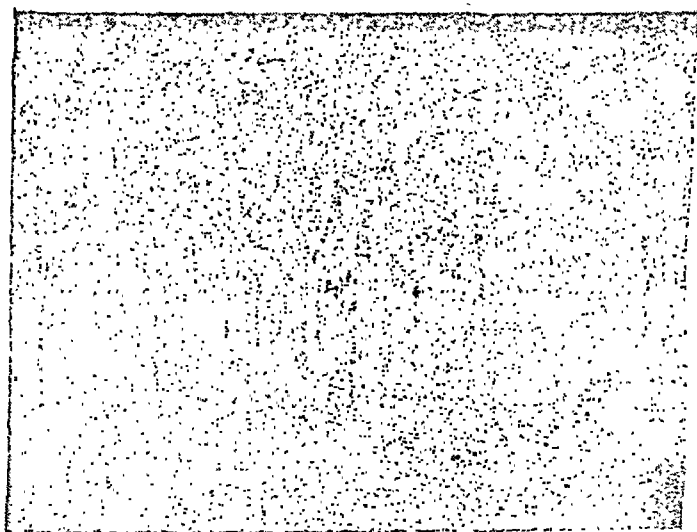
खेतों के वृक्षों से उच्च कोटि के रबर और छोटे-छोटे खेतों से सामान्य कोटि के रबर प्राप्त होते हैं। छोटे-छोटे खेतों से प्रायः उतना ही रबर पैदा होता है, जितना बड़े-बड़े खेतों से पैदा होता है। एक एकड़ में प्रायः १५० से ३०० पेड़ बोये जाते हैं और पीछे धीरे-धीरे कम करके अन्त में आधे पेड़ रह जाते हैं। पाँच वर्षों के बाद पेड़ों से रस निकलना शुरू होता है। प्रायः ४० वर्षों तक पेड़ रस देते रहते हैं। एक एकड़ के पेड़ों से १५० से ५०० पाउण्ड तक रबर प्राप्त होता है। किसी-किसी खेत के पेड़ों से तो १००० पाउण्ड तक रबर प्राप्त हो सकता है। एक अच्छे पेड़ से प्रायः ६ पाउण्ड रबर प्रतिवर्ष प्राप्त हो सकता है। खादों के उपयोग से रबर की पैदावार बढ़ जाती है। अनेक रोग और कीड़े रबर के पेड़ों में लगते हैं। ये पेड़ों को नष्ट कर देते और कभी-कभी खेत के समस्त पेड़ों को आक्रान्त कर देते हैं। दीमकें भी उन्हें आक्रान्त करती हैं। कुछ अन्य कीड़े भी कभी-कभी आक्रान्त करते हैं। इनके आक्रमणों से बचने के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है।

रवर के उत्पादन में एक महत्त्व का सुधार क्लोन रवर का उत्पादन है। ऐसा देखा गया है कि रवर के कुछ पेड़ अन्य पेड़ों की अपेक्षा अधिक आक्षीर देते हैं। ऐसे पेड़ों की कलियों को दूसरे नवजात पेड़ों पर बैठा देने से ऐसे पेड़ों से भी अधिक आक्षीर प्राप्त होता है। ऐसे एक पेड़ से अनेक पेड़ों के उत्पादन को क्लोन कहते हैं और क्लोन का उत्पादन आज बहुत बढ़ गया है।

एक दूसरा रवर वृक्ष फिकस इलास्टिका, रवर वट (Ficus Elastica) है जो पूर्व एशिया में उपजता है। यह आसाम, बर्मा, मलाया और अन्य निकटवर्ती द्वीपों में उपजता हुआ पाया गया है। यह ऐसी धरती पर उपजता है जिसका पानी तो जल्दी बह जाता है, पर जहाँ की जलवायु अधिक आर्द्र रहती है। ऐसी अनुकूल जलवायु खासिया पहाड़ी और बर्मा की पहाड़ियों पर ३००० से ५००० फुट ऊँचे तक पाई गई है। प्रायः २५०० फुट ऊँची पहाड़ियों और बर्मा के २५०० से ३५०० ऊँची पहाड़ियों पर सबसे अच्छा उगता हुआ पाया गया है।

यह वृक्ष बड़ा प्रायः १२० फुट तक ऊँचा होता है। इसके धड़ से पीपल वृक्ष के सदृश जड़ें निकलती और धरती में पहुँचकर मोटी होती हैं। इसकी पत्तियाँ बड़ी-बड़ी हरी और चमकदार होती हैं। आसाम के चारद्वार में इस वृक्ष के दो किस्म के पेड़ पाये गये हैं। एक पेड़ की पत्तियाँ बड़ी-बड़ी होती हैं और दूसरे की कुछ छोटी-छोटी। इसके फल मटर के दाने के से छोटे होते हैं। यह पेड़ आप से आप उगता है। पर इसे उगाने की आसाम, मद्रास, मैसूर, मलाया, जावा और सुमात्रा में चेष्टाएँ हुई हैं। इससे रवर की उपलब्धि अपेक्षाकृत अल्प मात्रा में होती है। इसी कारण इसकी खेती की अधिक वृद्धि न हो सकी है।

मैनिहोट ग्लेजियोभि (Manihot glaziovii) रवर मण्डशिफ, अमेज़न घाटियों और टैंगेनिका में उपजता है। यह पर्याप्त मात्रा में उपजाया भी जाता है। १९१३ ई० में टैंगेनिका में इस पेड़ से १० हजार टन रवर प्राप्त हुआ था। एक एकड़ में प्रायः ३०० पेड़ वोए जाते हैं। प्रति एकड़ में २०० पाउण्ड रवर प्राप्त होता है। कभी-कभी अच्छे पेड़ से प्रति पेड़ १० पाउण्ड तक रवर प्राप्त होता है। इस पेड़ के छेवने से नुकसान होता है। अतः भेदन रीति से रस निकाला जाता है।

केस्टिलो उलिआइ (Castilloa ulei) उत्तर अमेज़न, मेक्सिको और मध्य अमेरिका में उपजता है। इस पेड़ को उगाकर अच्छी दशा में रखने में कठिनता पाई गई है। इसके रवर उत्कृष्ट कोटि के होते हैं।

किकसिया एलास्टिका (Kiksia elastica) अफ्रिका के केमेरून्स में उपजता है। इससे रवर की मात्रा अल्प प्राप्त होती है। इस कारण इसकी खेती नहीं होती।

लैण्डोल्फिया (Landolphia) अफ्रिका के बेल्जियम कोंगो में एक समय बहुत उपजाया जाता था; पर आज इसका उपजाना बन्द हो गया है। यह एक प्रकार की लता है जो झाड़ियों के रूप में उपजता है। इससे जो रवर प्राप्त होता है उसमें ९० प्रतिशत तक हाइड्रोकार्बन रहता है। पर इन लताओं के परिपक्व होने में प्रायः १० वर्ष लग जाता है और काट देने पर ५ वर्ष में यह फिर उगता है। लताओं के काटने से आक्षीर निकलता है। पीछे छिलके को हटाकर पीटने से और रवर प्राप्त होता है। रवर प्राप्त करने का काम

कुछ कष्टप्रद होता है और प्रति एकड़ के आक्षीर में रवर एक पाउण्ड और क्षेप्य रवर ४ पाउण्ड तक प्राप्त होता है।

दूसरे प्रकार के प्राकृतिक रवरों में गाटापरचा और वलाटा हैं। ये दोनों ही अरिष्टकुल सैपेटेसी (Sapataceae) जाति के वृक्षों से प्राप्त होते हैं। गाटापरचा पूर्व देशों से और वलाटा दक्खिन अमेरिका से आता है। ये प्रधानतः मलाया, सुमात्रा, वोर्नियो और दक्खिन अमेरिका के जंगलों के उत्पादन से प्राप्त होते हैं।

गाटापरचा इसोनौड्रागट्टा (Isonaudra gutta) से प्राप्त होता है। इसकी प्राप्ति के लिए पेड़ों को काट देते और १२ से १८ इंच की दूरी पर वल्क को छेव देने से दूध निकलता और शीघ्र ही जम जाता है। अब इसे अकेले अथवा जल के साथ उवालते हैं। इन्हें स्वच्छ करने के लिए उष्णजल में कोमल वनाकर उष्णजल से ही धोते, छानते और वेलन में दवाते और फिर चादरों में वनाते हैं। अधिक शुद्धि के लिए कास्टिक सोडा अथवा ब्लीचिंग पाउडर में डुवाकर धोते हैं। गाटापरचा से गोल्फ के गेंद वनाने के लिए उससे रेज़िन निकाल लेते हैं। पेट्रोलियम स्पिरिट में डुवाकर रेज़िन को घुलाकर निकाल लेते और गाटापरचा अविलेय रह जाता है। गाटापरचा में जो रेज़िन पाया गया है वह दो प्रकार का है। एक पारदर्शी पित रेज़िन जो १४०° फ० पर मुलायम हो जाता है और इसे ऐलवेन कहते हैं। दूसरा सफ़ेद केलासीय रेज़िन है जो ३००° फ० पर पिघलता है। इसे फ्लुएवाइट कहते हैं। पेड़ की पत्तियों से कार्वन डायसल्फाइड और टोल्विन सदृश विलायकों की सहायता से गाटापरचा प्राप्त करने का सुझाव दिया गया है। पेड़-पत्तों और डालों से गाटापरचा प्राप्त करने का जवसे ज्ञान हुआ तवसे पेड़ों का काटना वन्द हो गया है।

गाटापरचा का रासायनिक गुण कुचुक सा होता है। यद्यपि कुचुक की प्रत्यास्थता इसमें नहीं होती। वस्तुतः भौतिक गुणों में गाटापरचा और कुचुक विलकुल भिन्न है; पर गरम करने पर गाटापरचा प्रत्यास्थ होता जाता है। गाटापरचा कठोर होता है, पर भंगुर नहीं। यह उच्च कोटि का विद्युत् अचालक होता है। समुद्री तार में इसका उपयोग वहुत प्रचुरता से होता है। उच्च दाव पर जल की क्रिया का रवर की अपेक्षा यह वहुत अधिक प्रतिरोधक होता है।

वलाटा मधुक-कुल के सपोटा मोलियेरी (Sapota molierii) नामक वृक्ष से प्राप्त होता है, भौतिक गुणों में यह रवर और गाटापरचा के वीच होता है। यह वहुत अधिक मात्रा में टाट पर आवरण चढ़ाकर वेल्ट तैयार करने और वूटों तथा जूतों के तलवों के निर्माण में उपयुक्त होता है। पेड़ के छिलके को हटा देने से रस निकलता है और उद्वाष्पन अथवा एलकोहल से वह जमाया जाता है। गाटापरचा और वलाटा अधिक मात्रा में चिपकाने में उपयुक्त होते हैं। जेलुटंग एक दूसरे प्रकार का रवर है। जेलुटंग सुमात्रा से आता है। मलाया में प्रतिवर्ष प्रायः २,२५०,००० पाउण्ड जेलुटंग उत्पन्न होता है। जेलुटंग के पेड़ प्रायः १५० फुट ऊँचे होते हैं और उनका व्यास १० फुट तक होता है। छेवने से जेलुटंग का रस निकलता है।

चिक्ल सेपोडिला (Sapodilla) वृक्ष से प्राप्त होता है। यह पेड़ प्रायः ८० फुट ऊँचा और ३ फुट व्यास का होता है। इससे भी छेवने से रस निकलता है।

जेलुटंग और चिक्ल दोनों ही वहुत वड़ी मात्रा में च्यूईंग गम (Chewing gum) नामक मिठाई के वनाने में उपयुक्त होते हैं।

एक दूसरी लता क्रिप्टोस्टेगिया ग्रेण्डीफ्लोरा (Cryptostegia grandiflora) है जो वड़ी जल्दी उपजती है। १९४३ ई० में हैटी की ४० हजार एकड़ भूमि में यह वोई गई थी और ऐसा समझा जाता था कि इसकी खेती वहुत वड़े पैमाने पर होगी पर पीछे इसको त्याग देना पड़ा।

प्रायः दस-वारह वर्ष हुए रूस में एक पौधे का पता लगा जिससे रवर प्राप्त हो सकता है। १९४३ ई० में रूस में ६२५,००० एकड़ भूमि में यह लता वोई गई थी और उससे ५० हजार टन रवर पैदा हो सकता था। इस पौधे का नाम कोक्साघीज (Kok-saghyz) है जिससे प्रायः ८ प्रतिशत रवर प्राप्त होता है। यह पौधा लण्डन के किऊवाग में भी वोआ गया था। इसके रवर में प्रायः ७० से ८० प्रतिशत हाइड्रोकार्वन रहता है।

एक दूसरा पौधा गुयायुले (Guayule) है; जो कैलिफोर्निया में उपजता है। यह पौधा छोटा होता है और इसकी खेती सरलता से हो सकती है; पर इसके अंकुरने में कुछ कठिनता होती है। इस रवर में रेज़िन की मात्रा अधिक होती है पर विलायक की सहायता से रेज़िन निकाला जा सकता है। यह पौधा उत्तर मेक्सिको में उपजता है। यह झाड़ीदार भारी लकड़ीवाला पेड़ होता है। इन पेड़ों से ५ हजार टन सूखा रवर प्रतिवर्ष प्राप्त हो सकता है। इस पेड़ के उगाने की अमेरिका में चेष्टाएँ हुई हैं। पेड़ के परिपक्व होने में अनेक वर्ष लगते हैं।

प्राकृतिक रवर में कुछ न कुछ रेज़िन अवश्य रहता है। रेज़िन की मात्रा भिन्न-भिन्न रवर में भिन्न-भिन्न रहती है।

	रेज़िन की मात्रा प्रतिशत
वोए हलके क्रेप में	१·८ से ३·०
वोए चादर में	२·५ से ३·०
वोए धुएँ स्तार में	२·५ से ३·५
उद्वाष्पित आत्तीर में	५·० से ६·०
कठोर महीन पारा में	३ से ३·५
सियारा लोण्य में	३ से ५·०
कैमेरून गेंदो में	७ से १०
गुयायुले में	१०
जेलोटोंग में	७० से ८०
आक्सीकृत रवर में	६०·५
वलाटा में	३७·२ से ४९·०
गाटापरचा में	३७·७

पाँचवाँ अध्याय

रबर का आक्षीर

रबर के पेड़ों से निकले द्रव पदार्थ को 'रस', 'दूध' या 'आक्षीर' कहते हैं। अँग्रेजी में इस पदार्थ के लिए 'लैटेक्स' (latex) शब्द उपयुक्त होता है। लैटेक्स शब्द लैटिन भाषा से निकला है, जिसका अर्थ होता है पेड़ से निकला दूध का रस। इस शब्द का प्रयोग पहले-पहल सम्भवतः १६६२ ई० में हुआ था। अनेक पेड़ों से जब वे पुराने हो जाते हैं दूध-सा रस निकलता है; पर सब ऐसे रसों में रबर नहीं होता। रबर के पुराने ग्रंथों में लैटेक्स के लिए 'रस', 'दूध', 'द्रव रबर', 'सार' शब्द ही प्रयुक्त होते थे। गूड इयर के ग्रन्थ 'गम एलास्टिक' और हैंकौक के ग्रन्थ 'रबर व्यवसाय के उद्गम और प्रगति' में, (Origin and Progress of Rubber Industry) जो क्रमशः १८५५ और १८५७ में प्रकाशित हुए थे, 'लैटेक्स' शब्द का कहीं उपयोग नहीं है। उन्होंने इसके लिए दूध या रस शब्द का ही उपयोग किया है। आक्षीर शब्द क्षीर शब्द से निकला है। क्षीर का अर्थ होता है दूध या रस। जिस प्रकार अँग्रेजी में रबर से निकले रस के लिए ही लैटेक्स शब्द का उपयोग होता है उसी प्रकार हम रबर के रस के लिए ही आक्षीर शब्द का उपयोग करेंगे। लैटेक्स वनस्पति विज्ञान का शब्द है और इस विशेष प्रकार के दूध से रस के लिए उपयुक्त होता है। आक्षीर भी ठीक इसी अर्थ में उपयुक्त हुआ है।

आक्षीर रबर के पेड़ों से निकलता है। भिन्न-भिन्न पेड़ों से भिन्न-भिन्न रीतियों से आक्षीर निकाला जाता है। आक्षीर निकालने की सबसे सामान्य रीति है—रबर के पेड़ों के छाल को काटना। छाल में उर्ध्वाधार नलियाँ या नाड़ियाँ होती हैं जिनमें होकर आक्षीर बहता है। जब छाल को काट दिया जाता है तब आक्षीर बाहर निकल आता है; पर कुछ समय के बाद निकलना बन्द हो जाता है। साधारणतया छाल के टुकड़ों को काटकर निकाल देते हैं, जिससे नाड़ियों से आक्षीर चू कर पात्र में इकट्ठा हो सकता है। इस क्रिया को साधारण बोली में 'छेवना' कहते हैं और अँग्रेजी में इसे टैपिंग (tapping) कहते हैं। पाँच या सात वर्ष के बाद रबर के पेड़ छेवने को सहन कर सकते हैं, और वे प्रायः ४० वर्ष तक छेवे जा सकते हैं। साधारण बोली में जिसे हम छाल कहते हैं उसके लिए हम 'वल्क' शब्द का उपयोग करेंगे और छेवने के लिए 'च्यावन' शब्द।

आक्षीर-प्राप्ति की मात्रा बहुत कुछ छेवने के ढंग पर निर्भर करती है। पेड़ों का छेवना रोज-रोज नहीं होता। कहीं-कहीं एक दिन के अन्तर पर, कहीं-कहीं दो दिन के अन्तर पर और कहीं-कहीं तीन दिन के अन्तर पर होता है। कहीं-कहीं यह एक-एक मास पर अथवा

एक मास के अन्तर पर होता है। पेड़ के किस भाग पर च्यावन होता है यह चित्र ४ से मालूम होता है।

रबर पेड़ों के वल्क के दो स्तर होते हैं—एक वाह्य स्तर या वाह्यक और दूसरा अभ्यन्तर स्तर जिसे त्वच्च (cortex) कहते हैं। त्वच्च के भी दो स्तर होते हैं—एक वाह्य त्वच्च जिसमें त्वच्चा (cork) रहती है। इस अंश को हम त्वच्चा कहेंगे। दूसरा अभ्यन्तर त्वच्च जिसमें आचीर-वाहक नलियाँ रहती हैं। धड़ के काष्ठ भाग और अभ्यन्तर त्वच्च के वीच में वहुत पतला एक स्तर होता है जिसे वनस्पति विज्ञान में 'एधा' (cambium) कहते हैं। इसीमें रस वहता है।
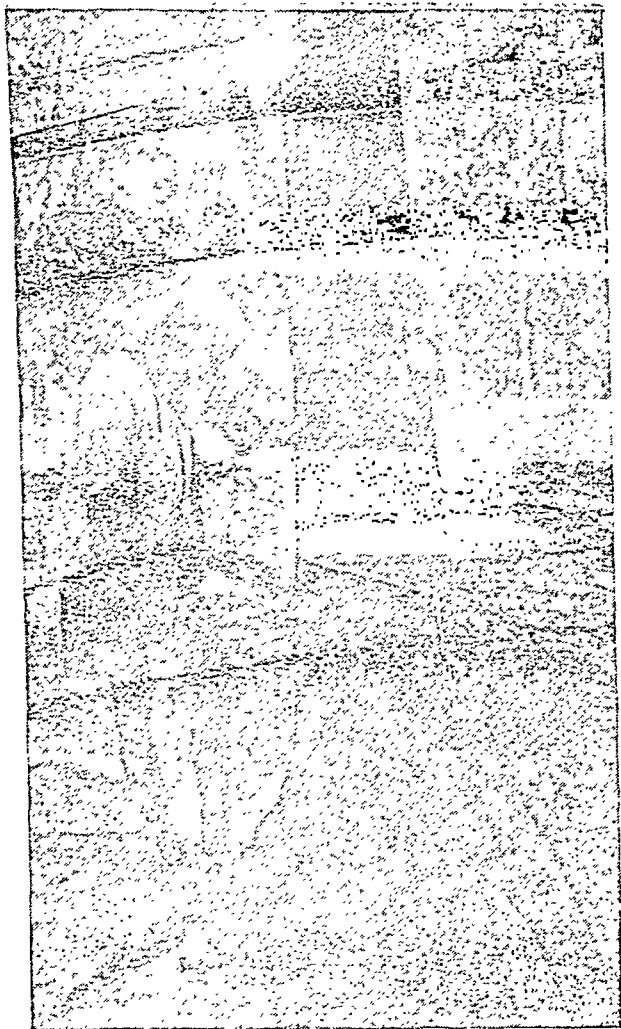
आचीर की नलियाँ वहुत ही छोटी, 'अणवीक्ष्य' होती हैं। नलियाँ पेड़ों के अन्य भागों, पत्तियों, फूलों आदि में भी होती हैं पर काष्ठ में नहीं होती। ये ऊर्ध्वाधार एधा के समानान्तर में होती हैं। आचीर का वहाव भी ऊर्ध्वाधार होता है। पेड़ों के वल्क को कुछ तिरछा काटते हैं, जिससे आचीर वहकर नीचे आकर छोटे-छोटे पात्रों में इकट्ठा हो सके। लंका में ऐसे पात्र नारियल के कड़े आधेखोल होते हैं।

चित्र ४. रबर पेड़ का छेवना

चित्र ५. रबर छेवने की रीति

वल्क की मोटाई प्रायः आधा इंच होती है। वड़ी सावधानी से वल्क के चौथाई अंश को तिरछा पेड़ के व्यास के दो-तिहाई अंश को काट
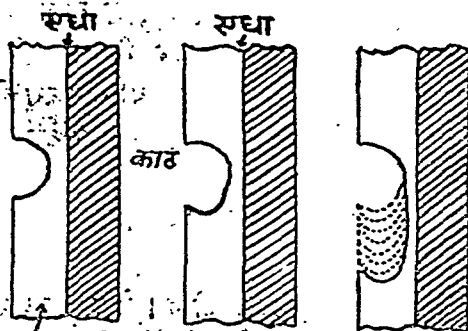
डालते हैं। धरती से प्रायः ३ फुट की ऊँचाई पर यह छेवाई होती है। एधा को काटने में सावधानी रखनी चाहिए। एधा के कट जाने से पेड़ को बहुत क्षति पहुँचती है। कटाई के निचले भाग में प्रसीता बनाकर उसमें पात्र लगा देते हैं। पात्र कहीं मिट्टी के, कहीं नारियल के छिलके के और कहीं बाँस के होते हैं। प्रत्येक च्यावक प्रायः ३०० से ४०० पेड़ों को छेव सकता है। प्रातःकाल इसके लिए अच्छा समय है और ९ बजे तक उससे आक्षीर निकलता है। ९ बजे के बाद आक्षीर का बहना बन्द हो जाता है। अब आक्षीर को घड़े या बाल्टी में रखकर कारखाने में ले जाते हैं।

दूसरी बार के च्यावन में पहली प्रसीता के निचले भाग में केवल १।३० इंच ही काटते हैं (चित्र ५ देखें)। इस प्रकार काटने से मास में प्रायः आधे इंच नीचे प्रसीता चली जाती है। साल में प्रायः ६ इंच ही वल्क कटता है।

अच्छे पेड़ों से प्रत्येक च्यावन से प्रायः २ औंस आक्षीर प्राप्त होता है। साल भर में १४० च्यावनों से प्रायः ६ पाउण्ड रबर प्राप्त होता है। आक्षीर में ३० से ४० प्रतिशत रबर रहता है। फरवरी, मार्च, जुलाई और अगस्त में सबसे अधिक और अप्रिल, मई आदि अन्य मासों में सबसे कम आक्षीर प्राप्त होता है।

रबर के पेड़ की परिधि धरती से एक गज के ऊपर जब २० इंच की हो जाय, साधारणतः यह छठे वर्ष में होता है, तब पेड़ का छेवना शुरू होता है। जैसे-जैसे पेड़ की उम्र बढ़ती है वल्क भी बढ़ता जाता है और आक्षीर की मात्रा भी बढ़ती जाती है। पेड़ों के छेवने के अनेक औजार बने हैं, जिनसे छेवना सरल हो जाता है। हिवीया रबर में पेड़ के वल्क को पहले साफ कर लेते और V- आकार में काट लेते और पूर्ण रूप से धोकर साफ कर लेते हैं। फिकस इलास्टिका (Ficus Elastica) से शुष्क मासों में ही आक्षीर इकट्ठा करते और स्तम्भ पर केवल आठ तिरछे कटाव करते हैं। यह कटाव गहरा नहीं होता और आक्षीर इकठ्ठा करने के पात्र कटाव की चारो ओर रखे होते हैं।

च्यावन विधि के सुधार से अच्छी कोटि का रबर प्राप्त होता है। च्यावन और आक्षीर इकठ्ठा करने की विधियाँ एक-सी नहीं हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों की रीतियों में कुछ-कुछ विभिन्नताएँ रहती हैं।

आक्षीर केवल दूध-सा दीख ही नहीं पड़ता, बल्कि दूध-सा आचरण भी करता है, कुछ समय तक रखे रहने से इसमें भी दूध-सी मलाई (cream) पड़कर ऊपर एक स्तर बन जाता है। कुछ समय के बाद दूध-सा इसमें भी किण्वन या पूयव होता है और यह स्कंधित हो जाता है। इस कारण आक्षीर को दूध-सा ही परिरक्षण की आवश्यकता पड़ती है।

जिस प्रकार दूध वसा के छोटे-छोटे कणों का जल में इमलशन या पायस होता है उसी प्रकार आक्षीर में रबर के कणों का लसी में प्रक्षेपण होता है। जिस प्रकार दूध में अम्ल डालने से दूध जम जाता है, पानी अलग हो जाता है, उसी प्रकार आक्षीर पर भी अम्ल की क्रिया से रबर का पिण्ड बन जाता और मठ्ठा-सी स्वच्छ लसी अलग हो जाती है।

आक्षीर का रंग एक-सा नहीं होता। कुछ आक्षीर सफ़ेद होता है और कुछ में भूरा और पीला रंग होता है। आक्षीर के रंग का रवर के गुणों से संबंध स्थापित करने की चेष्टाएँ हुई हैं। रंगमापक इसके लिए उपयुक्त हो सकते हैं। सामान्य रीति है—किसी परखनली में शुद्ध आक्षीर रखकर उसके साथ अन्य आक्षीरों को परखनली में रखकर तुलनात्मक परीक्षण करना। दोनों के अन्तर को सरलता से जाना जा सकता है।

आक्षीर प्राकृतिक उत्पादन है। इस कथन का आशय यह है कि आक्षीर के दो नमूने कभी भी सब प्रकार से एक-से नहीं हो सकते। आक्षीर में रवर की मात्रा भी एक-सी नहीं होती। रवर की मात्रा अनेक परिस्थितियों, च्यावन की रीति, वृक्ष के उगने के स्थान, च्यावन की आवृत्ति पर निर्भर करती है। आक्षीर में रवर की औसत मात्रा प्रायः ३८ प्रतिशत रहती है। ताजे आक्षीर का विशिष्ट घनत्व ०.९७८ और ०.९८७ के बीच रहता है। रवर पानी से हलका होता है। इस कारण आक्षीर भी पानी से हलका होता है।

आक्षीर में रवर और विशिष्ट घनत्व का सम्बन्ध निम्नलिखित अंकों से सूचित होता है—

शुष्क रवर की मात्रा	विशिष्ट घनत्व
३०% से ऊपर और ३२% तक	०.९८१
३२% से ऊपर और ३४% ,,	०.९७८
३४% ,, ३६% ,,	०.९७७
३६% ,, ३८% ,,	०.९७५
३८% ,, ४० ,,	०.९७३
४०% ,, ४२% ,,	०.९७१
४२% ,, ४४% ,,	०.९६९
४४% ,, ४६% ,,	०.९६७
४६% ,, ४८% ,,	०.९६५
४८% ,, ५०% ,,	०.९६२
५०% ,, ५२% ,,	०.९६०
५२% ,, ५४% ,,	०.९५७
५४% ,, ५६% ,,	०.९५५
५६% ,, ५८% ,,	०.९५२
५८% ,, ६०% ,,	०.९५०

आक्षीर का संघटन

रवर के सिवा आक्षीर में रेजिन, शर्करा, प्रोटीन, खनिज लवण और विकर (enzymes) रहते हैं। इनके क्या-क्या कार्य होते हैं यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है। रवर के कणों के तल पर ऐसा समझा जाता है कि प्रोटीन का अधिशोषित स्तर बना होता है। यह रवर को स्थायी बनाता और आक्सीकरण से बचाता है।

४ वर्ष और १० वर्ष पुराने हिवीया वृक्ष के आक्षीर का संघटन—

	४ वर्ष पुराना	१० वर्ष पुराना
ऐसिटोन में विलेय पदार्थ (रेज़िन, वसा, अम्ल इत्यादि)	१·२२	१·६५
प्रोटीन	१·४७	२·०३
राख	०·२४	०·७०
रबर	२७·०७	३५·६२
जल	७०·००	६०·००

ये आँकड़े वीडले और स्टेवेंस द्वारा किये गये विश्लेषण से प्राप्त आँकड़े हैं।

आक्षीर के ३ नमूनों—क, ख और ग—का संघटन—

	क	ख	ग
आमोनियम लवण	·०२	·०३	·०२
एस्टर	·०६	·०६	·०२
वसा अम्ल मिश्रण	·४१	·३३	·४७
गन्धक मिश्रण	·६२	·६४	१·१६
प्रोटीन	२·५६	१·४५	२·०५
रबर	३२·६२	२७·१७	३२·६८
जल	६२·७५	६६·७८	६३·६८

यह विश्लेषण रौबर्टस (Roberts) द्वारा किया गया है।

रेज़िन-सा पदार्थों में प्रधानतया वसा-अम्ल (स्टियरिक, ओलियिक, लिनियोलिक अम्ल) रहते हैं। इनके हटा लेने से रबर का ऑक्सीकरण शीघ्रता से होता है। आक्षीर के उद्वाष्पन से जो रबर प्राप्त होता है वह शीघ्र ऑक्सीकृत नहीं होता। स्कंधन से प्राप्त रबर अपेक्षाकृत शीघ्र ऑक्सीकृत होता है। कुछ लोगों ने आक्षीर में ०·५ प्रतिशत तक क्वेब्रैकिटल और कुछ लोगों ने ०·२ प्रतिशत तक लेसिथिन-सा पदार्थ लिपिन भी पाया है।

छठा अध्याय

आक्षीर का परिरक्षण

पेड़ से निकले आक्षीर के रख देने से वैक्टीरियों की क्रियाएँ आरम्भ होती हैं और आक्षीर धीरे-धीरे आम्लिक वनकर आक्षीर का स्कंधन हो जाता है। इस कारण आक्षीर के परिरक्षण के लिए किसी परिरक्षी (preservative) के डालने की आवश्यकता होती है। साधारणतया परिरक्षण के लिए ०·५ से १·० प्रतिशत तक अमोनिया उपयुक्त होती है। इससे वैक्टीरिया की वृद्धि रुक जाती और आक्षीर क्षारीय वना रहता है। अमोनिया के स्थान में फार्मेलिन का भी उपयोग हुआ है। इससे भी बैक्टीरिया की वृद्धि अवश्य रुक जाती है; पर कुछ दिनों के वाद फार्मेलिन से आक्षीर जम जाता है। सोडियम और पोटैसियम के हाइड्रॉक्साइड भी परिरक्षण के लिए उपयुक्त होते हैं पर इनसे रवर कुछ चिपचिपा हो जाता है। इससे इनका उपयोग सन्तोषप्रद नहीं समझा जाता।

अमोनिया से परिरक्षित आक्षीर में अमोनिया और वड़ी अल्प मात्रा में मैगनीसियम और सोडियम फ़ास्फ़ेटों के वीच क्रियाएँ होकर कुछ तलछट बैठ जाता है। ऐसे तलछट के परीक्षण से डा० व्रीज और वौमेन्यूलैएड ने निम्नलिखित विश्लेषण अंक प्राप्त किये—

	प्रतिशत
रवर	२२·८
मैगनीसियम अमोनियम फ़ास्फ़ेट	३०·०
प्रोटीन अशुद्धियाँ	१·०
राख (मैगनीसियम अमोनियम फ़ास्फ़ेट के अतिरिक्त)	४·५
जल, अमोनिया और अन्य द्रव अवयव	३७·०

आक्षीर का व्यवहार वहुत कुछ कोलायड सा होता है। पदार्थों को कोलायड तव कहते हैं जव वे किसी माध्यम में वहुत वारीक विभाजित दशा में हों। साधारणतया पदार्थ विभाजन की तीन अवस्थाओं में रहते हैं। वे या तो पिण्ड के रूप में रहते हैं जिन्हें हम आँखों से अथवा सूक्ष्मदर्शक यंत्र से सरलता से देख सकते हैं। इनके कण ०·५ म्यू तक के छोटे हो सकते हैं। (१ म्यू = मिलिमीटर का सहस्रवाँ भाग)। दूसरे पदार्थ कोलायड अवस्था में रहते हैं। इनके कण एक मिलिमाइक्रोन के होते हैं (एक मिलिमाइक्रोन = म्यू का सहस्रवाँ भाग अथवा मिलिमीटर का करोड़वाँ भाग)। इन्हें हम अतिसूक्ष्मदर्शक यंत्र से ही देख सकते हैं।

तीसरे पदार्थ परमाणु अथवा अणु और इसी प्रकार के अन्य छोटे कणों में रह सकते हैं, जिन्हें हम सूक्ष्मदर्शक अथवा अतिसूक्ष्मदर्शक यंत्र से भी नहीं देख सकते।

आक्षीर में जो कण रहते हैं उनके व्यास ०.५ म्यू से ३ म्यू तक के होते हैं।

आक्षीर में छोटे कणों के अभ्यन्तर भाग में तरल रहता है और तरल की चारो ओर चीमड़े प्रत्यास्थ पदार्थ रहते हैं। इनके वाह्य आवरण सम्भवतः प्रोटीन के होते हैं। ऐसा समझा जाता है कि आक्षीर का रवर सामान्य कच्चा रवर से भिन्न होता है।

आक्षीर के छोटे-छोटे कण स्थिर नहीं रहते। वे सदा गति में या चलते रहते हैं। कोलायड कण सदा चलते ही रहते हैं। ऐसी गति को 'ब्राऊनीय गति' कहते हैं। कुछ कण वर्तुलाकार होते हैं; पर अधिकांश नासपाती के आकार के होते हैं और कुछ में तो स्पष्ट रूप से पुच्छ होते हैं। इन कणों का विस्तार ०.५ म्यू से ३ म्यू तक व्यास का होता है और इनके पुच्छ ५ म्यू तक बढ़े रह सकते हैं। इनके सबसे बड़े और सबसे छोटे कणों में वही अन्तर होता है जो फुटवाल के गेंद और टेनिस के गेंदों में होता है। वृक्ष की उम्र से कणों के विस्तार में अन्तर होता है। सामान्य आक्षीर के जिसमें ३५ प्रतिशत रवर है एक सी० सी० में प्रायः २०० करोड़ कण होते हैं। लाङ्गलाण्ड (Langeland) के अनुसार एक सी० सी० में प्रायः ६४० करोड़ कण रहते हैं। इन कणों में ऋण विद्युत् रहता है। इस कारण विद्युत प्रवाह से ये धनाग्र (एनौड) की ओर गमन करते हैं।

रवर के हाइड्रोकार्बन का जल से कोई सम्बन्ध नहीं है। पर रवर के ऊपर जो प्रोटीन का आवरण रहता है उसका जल से कुछ सम्बन्ध अवश्य है। इस कारण वह जल में परिक्षिप्त होकर जेली बनता है। रवर के हाइड्रोकार्बन पर प्रोटीन की परिरक्षण क्रियाएँ होती हैं। इसी प्रकार की परिरक्षण क्रियाएँ केसीन की भी दूध के वसा के कणों पर होती है।

कोलायड (कलिल) दो प्रकार के होते हैं। एक कोलायड ऐसे होते हैं जिनका परिक्षेपण माध्यम से पर्याप्त बन्धुता होती है जैसे जिलेटिन का जल से। ऐसे कोलायड को उदस्नेही कहते हैं। रवर बेंजीन में घुलता है। इस कारण बेंजीन के प्रति रवर उदस्नेही होता है। दूसरे प्रकार के कोलायड ऐसे होते हैं जिनका परिक्षेपण माध्यम से कोई बन्धता या आकर्षण नहीं होता। ऐसे कोलायड को उदविरोधी कहते हैं। अधिकांश असस्त उदविरोधी ही होते हैं। तेल जल के प्रति उदविरोधी है। वैसे ही रवर भी।

कोलायड के कणों पर ऋण विद्युत् के आवेश रहते हैं। अम्लों और लवणों से वे स्कंधित हो जाते हैं। इससे ऐसा मालूम होता है कि स्कंधन वैद्युत् कारणों से ही होता है। वैद्युत आवेश बहुत दुर्बल होता है। इस कारण यदि धनात्मक आयनों से वैद्युत आवेश का निराकरण हो जाय तो कण उर्णित और स्कंधित हो जाते हैं।

फ्रायण्डलिश और हौजेर (Freundlich and Hauser) का मत है कि कणों के सबसे भीतर का भाग तरल होता है। उसके ऊपर एक ठोस चर्म आवरण होता है और उस आवरण के ऊपर एक अधिशोपण का स्तर होता है। इसे एक ठोस कण समझना चाहिए। अतः आक्षीर एक आलम्बन होता है और इसी कारण उदविरोधी होता है; पर अधिशोपित प्रोटीन स्तर इतना प्रबल होता है कि यह कण को उदस्नेही बना देता है।

रवर कोलायड का गुण देता है। हौजर के मत से आक्षीर के कण परिरक्षित उदविरोधी कोलायड है।
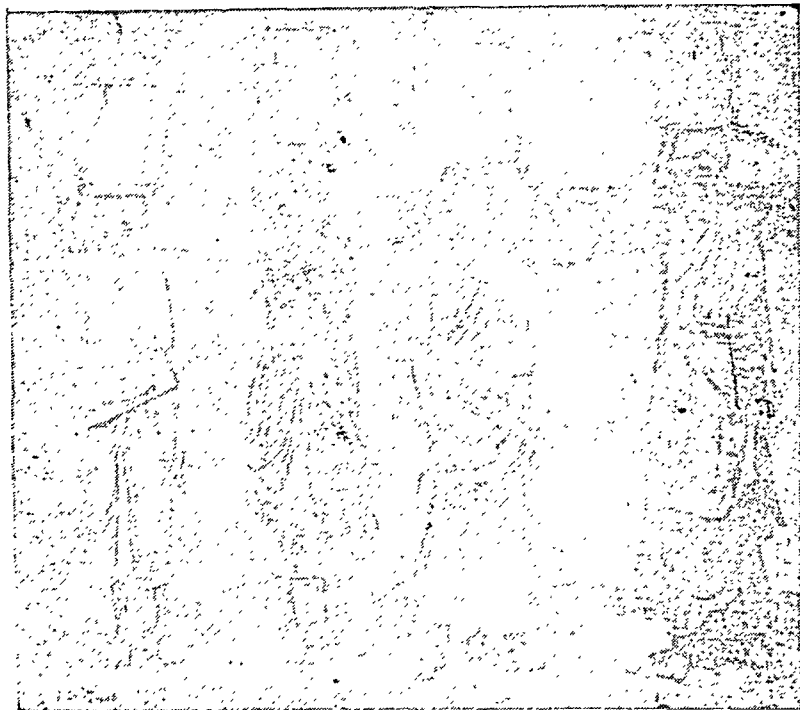
चित्र ५ (क)—आत्तीर कारखाने में जा रहा है

चित्र ५ (ख)—आत्तीर को टंकी में डाला जा रहा है

शोल्टज़ के मत से प्रोटीन रहित आन्नीर में उद्विरोधी गुण होते हैं क्योंकि ऐसे श्लेषाभ के गुण इसमें विद्यमान हैं। इनके स्कंधन में एक-द्वि,-और त्रि-संयोजक आयनों के अनुपात वैसे ही हैं जैसे उद्विरोधी श्लेषाभ में होते हैं।

आयनों से आन्नीर का स्कंधन

स्कंधक	प्रतिकारक	तनुता	१:१	१:६	१:५
हाइड्रोक्लोरिक अम्ल	हाइड्रोजन-आयन	१२	११	३½	०·७
ऐसिटिक अम्ल	„ „	१७	३०	६	१
ऐलम (फिटकिरी)	त्रि-संयोजक	६–८½	५–६	१½–२	०·८
कैलसियम क्लोराइड	द्वि-संयोजक	६	—	—	—
निकेल सलफेट	द्वि-संयोजक	१४	१२	८	८
नमक (सोडियम क्लोराइड)	एक-संयोजक	१३५–२००	१०००	आतंचन होता	स्कंधन नहीं होता
				स्कंधन नहीं	

ऐसे पदार्थ जो कोलायडल कणों को कोलायड अवस्था में रखने में सहायता करते हैं उदविरोधी होते हैं। ऐसे पदार्थ कुछ कोलायडल धातुएं, धातुओं के सल्फ़ाइड, और हाइड्रोक्साइड हैं। ये पदार्थ स्वयं श्यान नहीं है और जिलेटिन नहीं वनते और विद्युत् विश्लेष्य से शीघ्र अवक्षिप्त हो जाते हैं। जल में रवर स्वयं श्यान नहीं है पर यह उदविरोधी है। उदस्नेही पदार्थों में जिलेटिन, एगर और प्रोटीन हैं।

ऊपर कहा गया है कि आन्नीर में रवर के कण गतिशील हैं। गमन करते हुए वे एक दूसरे से टकराते हैं। यदि उनपर प्रोटीन का आवरण न हो तो वे टकरा कर एक दूसरे से मिलकर वड़े कण वनकर स्कंधित हो जायंगे। जव घर्षण से, उष्मा से अथवा विद्युत विश्लेष्य से प्रोटीन का आवरण टूट जाता अथवा दुर्वल हो जाता है तव रवर के हाइड्रोकार्वन मुक्त हो एक दूसरे से टकराने पर संयुक्त होकर स्कंधित पिंड वन जाते हैं।

यदि आन्नीर को द्रवावस्था में रखने का उद्देश्य है तो इसके लिए विशेष यत्न की आवश्यकता होती है। जिन पदार्थों की प्रोटीन पर क्रियाएँ होती हैं उन्हें आन्नीर के संसर्ग में नहीं लाना चाहिए। फिटकिरी, फेरिक क्लोराइड इत्यादि पदार्थ प्रोटीन को स्कंधित करते हैं। इस कारण प्रोटीन के आवरण को हटाकर आन्नीर को भी स्कंधित करेंगे।

इस कारण आन्नीर को स्कंधन से सुरक्षित रखने के लिए हमें उन पदार्थों का उपयोग करना चाहिए, जो प्रोटीन को सुरक्षित रखने में समर्थ हों। यही कारण है कि अमोनिया आन्नीर को इस कारण स्कंधन से वचाता है कि अमोनिया प्रोटीन को अम्लों की क्रिया से वचाकर स्कंधन से सुरक्षित रखता है। अन्य परिरक्षी केवल वैक्टीरिया और विकर की क्रिया से प्रोटीन को वचाते हैं।

परिरक्षी पदार्थ वस्तुतः आन्नीर के रवर कणों को जल के साथ जेली वनकर एक स्तर [illegible] लेते हैं जिससे रवर कणों का स्कंधन रुक जाता है। ऐसे पदार्थों को परिरक्षित पदार्थ

अथवा यदि वे कोलायड हैं तो 'संरक्षित कोलायड' कहते हैं। ऐसे कोलायडों का जल के प्रति पर्याप्त आकर्षण होता है और फैलने की क्षमता होती है। संरक्षित कोलायड जो आक्षीर के साथ उपयुक्त होते हैं वे निम्नवर्ग के हैं।

प्रोटीन—अगर, एलब्यूमिन, केसीन, जिलेटिन, ग्लू, हीमोग्लोबिन आदि।

शर्कराएँ—स्टार्च, डेक्सस्ट्रिन, सैपोनिन, गोंद ट्रैगैन्थ, गोंद बबूल, पेक्टिन आदि।

साबुन—पोटैसियम् सोडियम और अमोनियम के वसाअम्लों और गड़ी तेल के अम्लों के साबुन आदि।

संरक्षित कोलायडों की मात्रा अल्पतम रहनी चाहिए नहीं तो उनसे कुछ अहितकर गुण आ जाते हैं। साधारणतया रबर की मात्रा का ५ प्रतिशत से अधिक संरक्षित कोलायड नहीं रहना चाहिए।

आक्षीर का एक लाक्षणिक गुण उसकी श्यानता है। कुछ आक्षीर सरलता से बहनेवाले होते हैं और कुछ बहुत ही श्यान और मोटे। आक्षीर की श्यानता रबर की मात्रा पर निर्भर करती है, यद्यपि यह भी सम्भव है कि अन्य पदार्थों की अल्प मात्रा की उपस्थिति से भी श्यानता में बहुत कुछ अन्तर हो जाय।

श्यानता मापन के अनेक यंत्र (मापक) बने हैं। इन यंत्रों के सिद्धान्त वही हैं जो ओस्टवल्ड के विस्कोमीटर के हैं। इनमें दो बल्ब होते हैं जो केशिका नली से जुड़े होते हैं। पहले बल्ब के ऊपर और नीचे चिह्न बने होते हैं। दूसरा बल्ब उस पदार्थ से भरा होता है जिसकी श्यानता नापनी है। इस पदार्थ को दूसरे बल्ब में तबतक बहा लेते हैं जबतक द्रव का तल ऊपर के चिह्न के ऊपर न चला जाय। अब कितने समय में तरल नीचे के चिह्न तक आ जाता है इसे लिख लेते हैं। भिन्न-भिन्न द्रवों का जो समय प्राप्त होता है वह उनकी आपेक्षिक श्यानता का द्योतक है। इन आंकड़ों को किसी ऐसे तरल के समय से तुलना करते हैं जिसकी श्यानता ज्ञात है। श्यानता निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त होती है—

$\frac{\text{श्य}}{\text{श्य}_0} = \frac{\text{स. घ.}}{\text{स}_0\text{. घ}_0\text{.}}$ जहाँ श्य तरल की श्यानता, श्य० प्रामाणिक पदार्थ की श्यानता, स और स० बहाव का समय और घ, घ० पदार्थों का घनत्व है। सब प्रयोग प्रामाणिक ताप पर करना चाहिए, क्योंकि ताप का श्यानता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

आक्षीर की श्यानता के लिए साधारणतया रेडवूड विस्कोमीटर उपयुक्त होता है। यह विस्कोमीटर तांबा-चांदी का बेलन होता है जिसमें द्रव रखा जाता है। बेलन के पेंदे में एगेट पत्थर का सूराख होता है। जिसको छड़के बुल्के से बन्द कर सकते हैं। सारे विस्कोमीटर को ऐसे पात्र में रखते हैं जिसके ताप का नियंत्रण किया जा सकता है। सूराख के नीचे संकीर्ण गरदन का एक फ्लास्क रखा रहता है जिसपर ५० सी. सी. का चिह्न बना होता है। जब श्यानता निकालनी होती है तब वाल्व को खोल देते और ५० सी. सी. तरल के बहने के समय को सेकंड में लिख लेते हैं। द्रव के बहाव के सूराख वाले चंचु $\frac{3}{16}$ इंच, $\frac{1}{8}$ इंच, $\frac{1}{16}$ इंच और $\frac{1}{4}$ इंच के होते हैं।

२०० श० पर रेडवूड विस्कोमीटर के $\frac{१}{२}$ इंच सूराख से निम्न श्यानता प्राप्त हुई है—

अमोनियम मात्रा %	समस्त ठोस %	सेकंड में श्यानता
०·२६	६३·५	२६·०
०·२६	६२·६	२२·०
०·२६	६१·८१	२०·५
०·२६	६०·४४	१७·०
०·१६५	७०·६३	३१७·०
०·१६५	६८·५६	११३·०
०·१६५	६६·१	४८·०
०·१६५	६४·५६	३४·०
०·१६५	६२·३१	२१·०

आक्षीर के हाइड्रोजन आयन सान्द्रण

आक्षीर में हाइड्रोजन का सान्द्रण पी एच (पी एच मान) से सूचित होता है। प्राकृतिक रबर का पी एच ७ होता है। अमोनिया से रक्षित आक्षीर का पी एच ८ से ११ होता है। यदि पी एच ७ से कम है तो उससे ज्ञात होता है कि आक्षीर आम्लिक है और ७ से ऊपर पी एच क्षारीयता को सूचित करता है।

पेड़ से निकलने के वाद आक्षीर का पी एच क्रमशः कम होता जाता है क्योंकि बैक्टीरियों की क्रिया से अम्लता वढ़ती जाती है। पी एच का निर्धारण वैद्युत चुम्वकीय रीति से होता है और इससे अधिक यथार्थ फल प्राप्त होते हैं। अनेक प्रकार के यंत्र इस काम के लिए वने हैं।

आक्षीर के स्कंधन के सम्वन्ध में जो अन्वेषण हुए हैं उनसे पता लगता है कि यह क्रिया सरल नहीं, वल्कि वड़ी जटिल है। सूक्ष्मदर्शक से देखने से ऐसा मालूम होता है कि रवर के कणों की गति धीमी होती जाती है और उनमें कुछ कण जुटते जाते है। इन जुटे कणों से ही स्कंध वनता है और उनके वीच के स्थानों में अव भी लसी भरी रहती है। उनसे धीरे-धीरे पानी का निकलना जारी रहता है। आक्षीर के रवर के कणों के जुट जाने से ही कच्चा रवर प्राप्त होता है।

आक्षीर के स्कंधन के सम्वन्ध में जो वातें मालूम हुई हैं, उनसे पता लगता है कि स्कंधन की तीन अवस्थाएँ होती हैं। जव आक्षीर में कोई वहुत दुर्वल स्कंधक डाला जाता है तव पहले उसका ऊर्णन होता है। इसमें रवर के कण के १२ से १०० कण मिलकर गुच्छे वनते हैं; पर ये इतने वड़े नहीं होते कि निरन्तर स्कंध वन सकें। इसके वाद एक दूसरी अवस्था आती है, जिसमें कण संरोहण करते हैं। इसमें ऊर्णित पदार्थ शनैः-शनैः मिलकर संसक्त कठोर पिंड वनते हैं और अन्त में फिर स्कंधित होते हैं।

सातवाँ अध्याय

आक्षीर का स्कंधन

आक्षीर दूध-सा होता है। इसमें रबर बहुत छोटे-छोटे कणों में आलम्बित बूंद के रूप में रहता है। इसमें ५० से ६० प्रतिशत तक जल रहता है। आक्षीर से रबर प्राप्त करने की पुरानी रीति है पानी को सुखा लेना। आजकल जिस विधि से आक्षीर से रबर प्राप्त होता है उसे स्कंधन कहते हैं। स्कंधन के लिए आक्षीर में कुछ पदार्थों को बाहर से डालना पड़ता है। ये पदार्थ जो आक्षीर में स्कंधन उत्पन्न करते हैं उन्हें स्कंधक कहते हैं। स्कंधक के डालने से रबर सफेद शिलषी (जेली) के रूप में निकल आता और पानी का अंश लसी में रह जाता है। सफेद जेली के दबाने और सुखाने से कच्चा रबर प्राप्त होता है।

अनेक रीतियों से आक्षीर का स्कंधन हो सकता है। एक पुरानी और नष्टकारी रीति है आक्षीर को मिट्टी के गड्ढे में गाड़ कर कुछ समय के लिए छोड़ देना। इससे पानी बहकर मिट्टी में चला जाता है और रबर गड्ढे में रह जाता है। एक दूसरी रीति है आक्षीर को पेड़ के स्तम्भ पर ही जैसे वह चूता है वैसे ही सूखने के लिए छोड़ देना।

एक दूसरी पुरानी रीति है धुआँ देकर रबर का स्कंधन करना। आक्षीर को हलके काठ के पात्र में रखकर धुएँ के घर में रख देते हैं। आक्षीर पीला और दृढ़ हो जाता है। उस पर

चित्र ६, धुएँ का घर

फिर और आक्षीर डालकर दूसरा स्तर बना लेते हैं। इस प्रकार अनेक स्तरों से मोटा रबर की चादर बनाकर उसे छोटे-छोटे आकार में काटकर धूप में सुखाने के लिए छोड़ देते हैं।
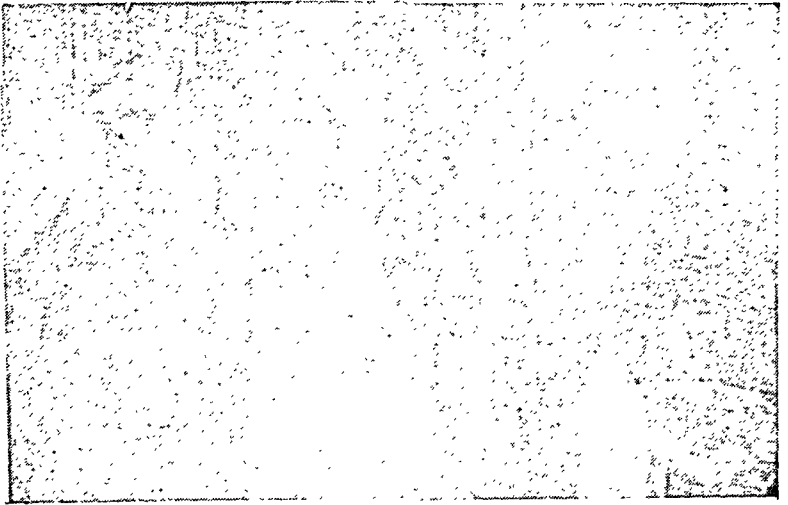
चित्र ५ (ग)—रबर का धोना और पीसना

इस प्रकार से जो रबर प्राप्त होता है उसे 'पारा रबर' कहते हैं। इसमें कोई श्वेतन प्रतिकारक नहीं उपयुक्त होता। आजकल ऐसा रबर ऐसे धुएँ के घर में सुखाया जाता है जिसका ताप ५०° श० हो। लकड़ी अथवा नारियल का कठोर छिलका जलाकर धुआँ उत्पन्न करते हैं। धुएँ के घर में कैसे लटकाया जाता है इसका चित्र यहाँ दिया है।

चित्र ७

धूम्रकक्ष में सूखने के लिए रबर टँगा हुआ

रासायनिक रीतियाँ

आक्षीर का स्कंधन अम्लों, आम्लिक लवणों, सामान्य लवणों और एलकोहल के द्वारा भी हो सकता है। साधारणतया ऐसिटिक अम्ल इसके लिए उपयुक्त होता है। फार्मिक अम्ल की मात्रा ऐसिटिक अम्ल से कम लगती है और रबर का रंग भी इससे सुधर जाता है। हाइड्रोफ्लूयोरिक-अम्ल भी अच्छा स्कंधक प्रमाणित हुआ है। इससे केवल स्कंधन ही नहीं होता, वल्कि रबर के परिरक्षण में भी इससे मदद मिलती है। कभी-कभी एक से अधिक स्कंधकों का मिलाकर उपयुक्त करने से अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है। लवणों में सोडियम बाइसल्फाइट, कैलसियम क्लोराइड, बेरियम क्लोराइड, स्ट्रौंशियम क्लोराइड और मैगनीसियम क्लोराइड उपयुक्त हुए हैं। सलफ्यूरिक अम्ल भी स्कंधन के लिये उपयुक्त हो सकता है। फ्लुयोसिलिसिक अम्ल भी कभी-कभी उपयुक्त होता है।
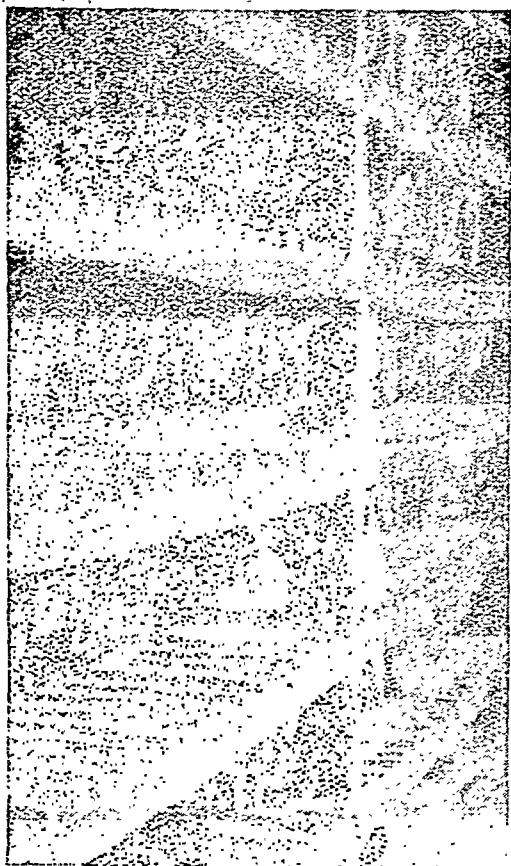
ऐसा कहा जाता है कि एक स्कंधक के स्थान में दो या दो से अधिक स्कंधकों के मिश्रण अच्छे होते हैं। ऐसिटिक अम्ल ३० भाग और स्पिरिट २० भाग का विलयन अच्छा स्कंधक कहा गया है। कैलसियम क्लोराइड ५ भाग, स्पिरिट ४५ भाग, ऐसिटिक अम्ल ३ भाग और जल ४७ भाग का विलयन भी अच्छा कहा गया है।

केन्द्रापसारक में आक्षीर को रखकर उसे चलाने से रबर के छोटे-छोटे कण जो आक्षीर में आलम्बित हैं जमकर कोमल पिंड के रूप में किनारे में इकट्ठे हो जाते और स्वच्छ रबर-रहित लसी केन्द्र में रह जाती है। पिंड में प्रायः ६० प्रतिशत रबर और बहुत कम लसी रहती है और लसी में केवल ६ प्रतिशत रबर। इससे जो रबर प्राप्त होता है वह हलके रंग का और अ-रबर पदार्थ से प्रायः मुक्त रहता है।

विद्युत विच्छेदन रीति से भी रबर को आक्षीर से अलग करने की चेष्टाएँ हुई हैं। रबर के ऋणाविष्ट महीन कण धनाग्र पर इकट्ठे होते हैं और वहाँ से हटा लिये जाते हैं।

क्रेप रबर

क्रेप रबर के बनाने के लिए आक्षीर को छानकर उसे इतना तनु कर लेते हैं कि रबर की मात्रा १५ प्रतिशत हो जाय। ऐसे तनु आक्षीर में प्रति लिटर आधा से एक ग्राम सोडियम बाइ-सल्फ़ाइट डालते हैं। इससे रबर का रंग गाढ़ा नहीं होता वरन् हल्का होता है। अब उसमें ऐसेटिक अम्ल का ५ प्रतिशत विलयन डालते और हिलाते रहते हैं। प्रबल ऐसिटिक अम्ल की मात्रा आक्षीर के प्रतिलिटर में ०·६ से १ सी० सी० रहनी चाहिए। स्कंध को अब दो बेलनों के बीच दबाते हैं। ये दोनों बेलन विभिन्न गति से घूमते हैं। ये स्कंध को फाँड़ देते हैं। अब इसमें पानी के फौव्वारे से धोकर अम्ल को निकाल लेते और लपेटकर प्रायः एक मिलिमीटर की मोटाई की चादर बना लेते हैं। इसमें १० से २० प्रतिशत जो जल बच जाता है उसे प्रायः ५०° श० पर लटकाकर सुखा लेते हैं। ऐसे क्रेप रबर का संघटन निम्नलिखित रूप में होता है—

जल	०·३ से १·२ प्रतिशत
ऐसीटोन में निष्कर्ष	२·५ से ३·२ ,,
प्रोटीन आदि नाइट्रोजन पदार्थ	२·५ से ३·५ ,,
राख	०·१५ से ०·५ ,,
रबर हाइड्रोकार्बन (अन्तर से)	९२–९४ ,,

प्रथम श्रेणी के क्रेप रबर में लोहे की मात्रा ०·००३ से ०·००४ प्रतिशत, तांबे की मात्रा ०·०००२ से ०·०००३ प्रतिशत और मैंगनीज की मात्रा ०·०००३ प्रतिशत रहती है।

रबर के नमूने एक से नहीं होते। उनमें कुछ-न-कुछ विभिन्नता अवश्य रहती है। विभिन्नता के दो प्रमुख कारण हैं। रबर के गुण बहुत कुछ आक्षीर के गुणों पर निर्भर करते हैं। आक्षीर के गुण रबर पेड़ की उम्र, जाति, उसकी बाह्य परिस्थिति और च्यावन विधि पर निर्भर करते हैं।

आक्षीर से रबर प्राप्त करने की विधि का भी रबर के गुणों पर प्रभाव पड़ता है। इन कारणों से कच्चे रबर के गुण एक से नहीं होते। इस विभिन्नता का परिणाम यह होता है कि अन्य उपचारों के लिए सब कच्चे रबरों के साथ एक सा व्यवहार नहीं कर सकते। क्रेप रबर और धुएँदार रबर दोनों में विभिन्नता होती है।

पारा रबर साधारणतया ऐसा है जिसके गुणों में कम विभिन्नता रहती है। क्रेप रबर अन्य रबरों से अधिक एक सा गुणवाला समझा जाता है, क्योंकि क्रेप को अन्य रबर से अधिक धोआ जाता है।

कुछ लोगों का सुझाव है कि आक्षीर के फार्मल्डीहाइड के परिरक्षण से अधिक एक से गुण का रबर प्राप्त होता है। च्यावन के बाद शीघ्र ही फार्मेलिन के डालने से आक्षीर में बैक्टीरियस और विकर की क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। इससे रबर के विभिन्न होने का प्रमुख कारण हट जाता है। ऐसे संरक्षित आक्षीर को ४८ घंटे तक रख छोड़ते हैं। इससे [illegible]

और प्राकृतिक मैल बैठकर जम जाते हैं। ऊपर से स्वच्छ द्रव को निकालकर मिश्रण टंकी में छोड़ देते हैं। ऐसा उपक्रम तवतक करते हैं जवतक टंकी भर न जाय। इस भरी टंकी के आक्षीर को पूर्णतया मिलाकर कुछ निकालकर उसको तनु वनाकर उसमें अम्ल डालकर हिलाते हैं। ऊपर महीन ऊर्णा उठकर तल पर इकट्ठी हो जाती है और स्वच्छ पीली लसी अलग नीचे वह जाती है। उर्ण को निकालकर पानी से धो लेते हैं। फिर धोयी ऊर्णा को अन्य स्कंधन टंकियों में हस्तान्तरित करते हैं। अब ऊर्णा एक दूसरे से मिलकर केवल वायु में रखे रहने से स्कंध का तख्ता वन जाता है। यदि तख्ता वनाने की शीघ्र आवश्यकता है तो भाप के अल्प समय के मन्द उपचार से ऐसा हो जाता है। अब तख्ते को निकालकर वेलन में दवाकर क्रेप या चादर वनाते हैं। इसे अब शुष्क-कारक कमरे में रखकर और तब अधिक दवाव में दवाकर रवर में लपेटी गांठे वनाकर वाहर भेजते हैं।

फार्मेलिन द्वारा वैक्टीरिया का कैसे विनाश होता है वह निम्न लिखित आँकड़ों से पता लगता है—

ताजा आक्षीर में	२१,०००,०००	वैक्टीरिया
फार्मेलिन डालने के एक घण्टे के वाद आक्षीर में	१०००	"
" " तीन " "	०	"
" " १० " "	०	"

आक्षीर के परिरक्षण के लिए फार्मेलिन के उपयोग के निम्नलिखित लाभ हैं—

१. फार्मेलिन से वैक्टीरिया और विकर की सारी क्रियाएँ शीघ्र वन्द हो जाती हैं और आक्षीर से ठोस रवर प्राप्त करने में फिर इनकी कोई क्रियाएँ नहीं होतीं।

२. फार्मेलिन से परिरक्षित आक्षीर पर्याप्त स्थायी होता है।

३. फार्मेलिन से परिरक्षित आक्षीर में कोई आक्सी-करण नहीं होता।

४. आक्षीर और फार्मेलिन के वीच क्रियाएँ होती हैं और इनके कारण अम्लों की क्रिया से स्थायी उर्णा प्राप्त होते हैं।

५. रवर की फार्मेलिन के साथ रासायनिक क्रियाएँ होती हैं और रवर में फार्मेलिन की उपस्थिति पाई गई है।

६. फार्मेलिन के उपयोग से खर्च अधिक नहीं पड़ता।

रवर के सामानों के तैयार करने में आक्षीर के उपयोग से अनेक असुविधाएँ हैं। आक्षीर अपेक्षाकृत अस्थायी होता है, परिरक्षण के लिए परिरक्षी की आवश्यकता पड़ती है और इसमें निरर्थक पानी की मात्रा वहत अधिक रहती है। द्रव होने के कारण यातायात भी कुछ असुविधाजनक होता है। इस कारण गाढ़ा आक्षीर प्राप्त करने की अनेक चेष्टाएँ हुई हैं।

आक्षीर की मलाई (शर)

आक्षीर के रखे रहने से वह दो स्तरों में वट जाता है। ऊपर के स्तर में रवर की मात्रा अधिक होती है। इसे आक्षीर की मलाई या शर कहते हैं पर शर वनने की यह क्रिया वड़ी मन्द होती है और व्यापार में उपयुक्त नहीं हो सकती। ट्रैवेने (१६२५ ई०) आक्षीर में एक प्रकार की काई डाल कर ५०° श० तक गरम करनेसे शर के वननेकी गतिमें त्वरण लाया जाता है। और इससे रवर मोटे शर के स्तर में निकल आता है और रवर-रहित लसी नीचे वैठ जाती है। ऊपरके स्तर

को फिर हटा लेते हैं। शीघ्रता से शर बनाने में अन्य अनेक पदार्थों का आज उपयोग हुआ है। ऐसे पदार्थों में ग्लू, जिलेटिन, एलब्यूमिन, पेक्टिन, गोंद बबूल, गोंद कराया (karaya), गोंद ट्रैगेकान्थ और कुछ काई हैं। ट्रैगनसीड गोंद से विशेष अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ है।

शर कैसे बनता है इसकी व्याख्या दी गई है। आक्षीर में रबर के कण प्रक्षिप्त (dispersed) रहते हैं। इन कणों को मिलाकर अभिपिण्डन (agglomerates) बनाने में शरकारक सहयोग देते हैं। इससे शर अभिपिण्डन से स्तर के रूप में इकट्ठा हो जाता है क्योंकि अभिपिण्डन में ब्राउनीयन गति नहीं होती। ये कण निलम्बन माध्यम से हलके होने के कारण लसी के ऊपर उठ कर ठोस शर के स्तर में इकट्ठे हो जाते हैं। स्थायी ऋणाविष्ट और जलीयित प्रोटीन-संरक्षित रबर के कण शर-कारक द्वारा क्यों अभिपिण्डन बनते हैं, इसकी संतोषजनक व्याख्या नहीं दी गई है।

आक्षीर का स्थायीकरण अत्यावश्यक है। यदि आक्षीर का उद्वाष्पन हो तो उसके ऊपर एक बहुत पतला चर्म पड़ जाता है जिससे फिर और उद्वाष्पन रुक जाता है। यदि इसके बनने को किसी प्रकार रोका जा सके तो आक्षीर के उद्वाष्पन से ऐसी लेपी प्राप्त हो सकती है जिसमें रबर की मात्रा अधिक रहती है।

हांसर (Hanser) ने एक ऐसा उद्वाष्पक बनाया है जिसमें उद्वाष्पन शीघ्रता से होता है। ऐसे उद्वाष्पक में दो रम्भ एक के भीतर दूसरे होते हैं। भीतरवाला रम्भ अपने अक्ष पर घूमता है। दो रम्भों के बीच के स्थान को उष्ण जल से गरम किया जाता है। भीतर के रम्भ में आक्षीर अंशतः भरा रहता है। आक्षीर के एक पतले फिल्म पर अक्षीर का उद्वाष्पन घूमते हुए रम्भ पर होता है, पर उद्वाष्पन ऐसा धीरे-धीरे होता है कि उससे चर्म न बन सके। पानी का उद्वाष्पन होते हुए आक्षीर गाढ़ा होता जाता है। रम्भ के अन्दर एक बेलन घूमता रहता है, जिससे झाग बनना रुक जाता है। वायु के प्रवाह से भाप निकल जाता है। इस रीति से रबर की मोटी लेपी बनती है जिसमें रबर की मात्रा ७० प्रतिशत तक और अ-रबर अवयव की मात्रा प्रायः १० प्रतिशत तक रहती है।

आक्षीर के यातायात में कठिनता होती है। इस कारण रबर के चूर्णरूप में प्राप्त करने की चेष्टाएँ हुई हैं। रबर का चूर्ण इस कारण भी सुविधाजनक है कि इसे ढाँचे में सरलता से रखकर जिस प्रकार का चाहे चीजें तैयार कर सकते हैं। चूर्ण रबर को अन्य पदार्थों—जैसे सीमेंट, एस्फाल्ट, तेल, गन्धक इत्यादि—के साथ भी सरलता से मिलाकर चर्वण क्रिया का सम्पादन कर सकते हैं।

रबर स्वयं चूर्ण नहीं बन सकता। किसी पदार्थ के साथ मिलाकर ही चूर्णरूप में प्राप्त किया जा सकता है। एक ऐसी रीति जिंक स्टियरेट की अल्प मात्रा के साथ मिलाकर चूर्ण प्राप्त करना है। यहाँ गतिशील (चलती) पट्ट पर आक्षीर की बौछार डाली जाती है। पट्ट एक उष्ण कक्ष में रहता है। इस प्रकार रबर के कण बनते हैं। इन कणों को चिपकने से बचाने के लिए जिंक स्टियरेट डाला जाता है। जिंक स्टियरेट की अल्प मात्रा से रबर के गुणों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। इसका रंग हलका होता है। बौछार के पहले आक्षीर में डेक्स्ट्रिन, आलू स्टार्च, रेज़िन आदि मिला देने से भी रबर चूर्ण के रूप में प्राप्त होता है। डाइअमोनियम फास्फेट, सोडियम नाइट्राइट और कृत्रिम रेज़िन के सहयोग से भी रबर-चूर्ण

प्राप्त हुआ है। ७५ म्यू० विस्तार के बहुत महीन चूर्ण, जो चिपकते नहीं, प्राप्त हुए हैं। चूर्ण बनाने में जो पदार्थ डाले जाते हैं उनमें कुछ तो रबर के लिए लाभदायक हैं; पर कुछ ऐसे भी हैं जो लाभदायक नहीं हैं।

ऐसे रबर-चूर्ण के बने पदार्थों की वितान-क्षमता अच्छी नहीं होती। कभी-कभी गोली के रूप में रबर का प्राप्त करना अधिक सुविधाजनक होता है। ऐसी गोलियाँ आधे से तीन चतुर्थांश इञ्च की और कभी-कभी डेढ़ इञ्च तक की लम्बी होती हैं। यह रम्भाकार होती हैं और इनके किनारे गोल होते हैं। ऐसी गोलियाँ प्रति घन फुट में प्रायः ४० पाउण्ड भार तक की होती हैं। वलकनीकरण से पहले रबर-कण चिपचिपे रहते हैं। वे सट न जायँ, इसके लिए उन पर धूलन चूर्ण छिड़कने की आवश्यकता पड़ती है। यदि गोलियाँ बहुत छोटी-छोटी हों तो धूलन चूर्ण की मात्रा अधिक लगेगी और उसका मूल्य बढ़ता जायगा तथा रबर का व्यामिश्रण भी हो जायगा। धूलन चूर्ण के लिए साबुन-पत्थर या तालक उपयुक्त होता है। चूर्ण की मात्रा शुष्क रबर की मात्रा का आधे से एक प्रतिशत तक से कम ही रहनी चाहिए। इतनी मात्रा से रबर का व्यामिश्रण नहीं कहा जा सकता।

रबर बहुत पतली झिल्ली के रूप में भी प्राप्त हो सकता है। यदि किसी घूमते चक्र पर आक्षीर का प्रक्षेपन करें तो पानी उड़ जाता है और रबर रह जाता है। ऐसा रबर चिपकता नहीं और सरलता से चक्र में लपेटा जा सकता है। इस प्रकार से प्राप्त रबर स्वच्छ होता है और इसका आगे का उपचार या संपरिवर्तन सरलता से हो सकता है।

———

आठवाँ अध्याय

रबर के भौतिक गुण

पूर्णतया शुद्ध रबर में कोई रंग और गंध नहीं होती। वह प्रत्यास्थ और पारदर्श होता है। इसका घनत्व ०.९१५ और ०.९३० के बीच होता है। रखे रहने से रबर पर संचक की वृद्धि होती है। साधारणतया पेनिसिलियम ग्लौकम (Penicillium glaucum) नामक सूक्ष्माणुओं से इसका रंग पीला हो जाता है और उस पर नीले धब्बे पड़ते हैं।

शुद्ध रबर का प्राप्त करना सरल नहीं है। रबर हाइड्रोकार्बन को प्रोटीन, रेजिन तथा अन्य अपद्रव्यों से बिलकुल मुक्त करना सरल नहीं है। रबर अपद्रव्यों में स्टेरोल भी रहता है। यह स्टेरोल रबर को आक्सीकरण से बचाता है। यदि रबर को पूर्णतया शुद्ध कर लिया जाय तो रबर का आक्सीकरण शीघ्रता से होता है।

प्यूमेरर और कोच (Pummerer and Koch) ने शुद्ध रबर इस प्रकार प्राप्त किया था—

"४० प्रतिशत रबरवाले आक्षीर को सोडियम हाइड्राक्साइड के ८ प्रतिशत विलयन के उतने ही भार के साथ मिलाकर प्रक्षुब्ध करते हैं। फिर उसमें पानी डालकर ऐसा तनु बना लेते हैं कि उसमें क्षार की मात्रा २ प्रतिशत हो जाय। इसे अब ५०° श० पर प्रायः २० घंटा प्रक्षुब्ध कर शर बनने के लिए छोड़ देते हैं। नीचे के क्षारीय स्तर को निकाल लेते हैं। अब शर को फिर क्षार के साथ साधते हैं। यह साधन कई बार करते हैं। तब क्षार को धोकर निकाल लेते हैं। शर को फिर छः गुना पानी के साथ मिलाकर आठ घण्टे ५०° श० पर प्रक्षुब्ध करते हैं। अब शर को पृथक् कर लेते हैं और उसका पारपृथक्करण करते हैं। पारपृथक्करण के समय उसे अनेक बार धोते हैं।

पारपृथकरण के बाद आक्षीर को ऐसिटोन या ऐसिटिक अम्ल के द्वारा स्कंधित कर लेते हैं। स्कंधित रबर को काटकर ऐसिटोन से निष्कर्षित कर लेते हैं। ऐसे रबर में प्रायः ०.१ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। कुछ लोगों ने ट्रिप्सिन नामक विकर के द्वारा प्रोटीन को हटाकर शर बनाया और पारपृथक्करण किया था। इस प्रकार से प्राप्त रबर में नाइट्रोजन की मात्रा ०.०२ प्रतिशत से कम थी।

रबर अनेक विलायकों में घुलता है। साधारणतया नफथा, बेंजीन, टोलिन, बेंजाइन, कार्बन बाइ-सलफ़ाइड, कार्बन टेट्राक्लोराइड, क्लोरोफार्म, पेट्रोलियम ईथर, बेल्जडीहाइड, ... और तारपीन के तेल में रबर घुलता है।

इन विलायकों में रबर के घुलने के दो क्रम होते हैं। पहले क्रम में रबर धीरे-धीरे फूलता है। यह क्रिया ठीक वैसे ही होती है जैसे जल की क्रिया जिलेटिन पर होती है। यदि और

विलायक विद्यमान है तो यह फूलाहुआ रवर—शिलपी—विलयन वनकर परिद्रित हो जाता है। रवर के फूलने का समय वहुत कुछ विलायक की प्रकृति पर निर्भर करता है। किसी विलायक से शीघ्र फूल जाता है और किसी से देर से। क्लोरोफार्म से फूलना जल्दो होता है और ईथर से देर से। फूला हुआ रवर मणिभ-सा व्यवहार करता है। रवर का विलयन कमसेकम समय में प्राप्त करने के लिए शिलपी के तोड़ने के लिए यांत्रिक प्रक्षोभन आवश्यक है। कच्चा रवर फूलने में १० से ४० गुना विलायक (भार में) ग्रहण कर सकता है।

रवर के विलयन के रखने से कुछ समय में प्रोटीन और अन्य अपद्रव्य निकल जाते हैं और उनके साथ कुछ रवर भी तल में वैठ जाता है।

रवर के विलयन के व्यवहार से पता लगता है कि रवर समावयवी पदार्थ नहीं है। स्वच्छ वेंजीन विलयन में कुछ अविलेय पदार्थ भी रहता है जो रवर का रूपान्तर समझा जाता है। वेंजीन में पेट्रोलियम ईथर के डालने से विलयन गँदला हो जाता है। रवर को ईथर और पेट्रोलियम ईथर में घुलाने से रवर का कुछ अंश वचा रह जाता है। इसमें भी रवर के सव गुण होते हैं। शुद्धतम रवर प्राप्त कर ईथर में घुलाने से २० से ४५ प्रतिशत जिलेटिनसा पदार्थ रह जाता है। इसका 'जेल-रवर' नाम दिया गया है। विलेय रवर शुद्ध, सफेद, वहुत प्रत्यास्थ और १३०° श० से नीचे ही मृदु हो जाता है जव कि 'ज़ेल-रवर, कपिल वर्ण का, चीमड़ और १४५° से ऊपर ताप पर मृदु होता है।

रवर-विलयन की श्यानता

रवर का विलयन सदा ही श्यान होता है। इसकी श्यानता वहुत कुछ अपद्रव्यों की उपस्थिति पर निर्भर करती है। सान्द्रण का भी प्रभाव श्यानता पर होता है।

विलयन की श्यानता पर चर्वन का ही प्रभाव नहीं पड़ता वरन् प्रकाश, ताप, सान्द्रण, यांत्रिक उपचार के भी प्रभाव पड़ते हैं। श्यानता से रवर के गुण का पता नहीं लगता। उससे केवल रवर कण के समूहीकरण का ही कुछ पता लगता है।

साधारणतः पदार्थों के खींचने से वे वढ़ते और ठंढे हो जाते हैं; पर रवर के साथ ठीक इसका प्रतिकूल असर होता है। रवर के खींचने से वह गरम हो जाता है और उसका घनत्व भी वढ़ जाता है। ऐसा क्यों होता है—इसका कारण मालूम नहीं है।

२०° श० पर रवर का घनत्व ०·९२३७ का और वर्तनांक १·५२१९ पाया गया है।

रवर के दहन की ऊष्मा प्रति ग्राम १०,७०० कलारी है। कच्चे रवर की तापीय चालकता ०·०००३२ है।

शुद्ध रवर में वैद्युत् गुण उत्तम कोटि के होते हैं। वलकनीकरण और जीर्णन से यह गुण घट जावा है। ताप की वृद्धि और ओज़ोन की क्रिया से रवर का जीवन कम हो जाताहै। पूरकों से रवर के गुणों में वहुत अन्तर आ जाता है।

कच्चे और वलकनीकृत रवर दोनों ही पानी को ग्रहण करते हैं। वलकनीकृत रवर अपेक्षाकृत कम पानी ग्रहण करता है। रवर में प्रोटीन न रहने के कारण ऐसा होता है। रवर में प्रायः २ प्रतिशत प्रोटीन रहता है।

यदि प्रोटीन को रवर से निकाल डालें तो रवर के गुणों में वहुत अन्तर आ जाता है।

पानी के अवशोषण की मात्रा बहुत कम हो जाती है। रबर और गाटापरचा के वैद्युत गुण बड़े महत्व के हैं। समुद्री तारों के निर्माण में इनका महत्व बहुत अधिक है।

रबर के एक्स-किरण फोटोग्राफ़ी से बहुत मनोरंजक फल प्राप्त हुए हैं। इनमें वलय के पट्ट प्राप्त होते हैं। ज्योंही इनके अभ्यन्तर भाग में कोई परिवर्तन होता है, पट्ट पर धब्बे पड़ जाते हैं। ये सब गुण मणिभीय पदार्थों के ऐसे हैं। ऐसा मालूम होता है कि रबर में मणिम बनते रहते हैं। रबर को ठंढाकर एक्सकिरण परीक्षण से मणिम का होना स्पष्टतया सिद्ध होता है। यहाँ एक्स-किरण परीक्षण के दो चित्र (चित्र सं० ८ और चित्र सं० ६) दिये हुए हैं। एक चित्र बिना खींचे रबर का और दूसरा खींचे हुए रबर का है। खींचने से रबर की बनावट में पर्याप्त अन्तर होता है, यह इन चित्रों से स्पष्टतया मालूम होता है।

बलाटा बहुत चीमड़ा और जल का प्रतिरोधक होता है। इसके पैण्ट की पेटियाँ, समुद्री तार और गोल्फ गेंद के खोल बनते हैं।

बलाटा और गाटापरचा ताप-सुनम्य होते हैं। वे गरम जल से कोमल हो जाते और तब जिस आकार में चाहें, ढाले जा सकते हैं। ठंढे होने पर वे बहुत कठोर और दृढ़ हो जाते हैं। रबर की श्यानता उनमें बिलकुल नहीं होती।

नवाँ अध्याय

रबर के रासायनिक गुण

रबर पर उष्णता का प्रभाव

गरम करने से रबर प्रायः १२०° श० पर कोमल होना शुरू होता है और फिर गाढ़े कपिल वर्ण के तेल के रूप में पिघल जाता है। ताप की वृद्धि से यह पतला हो जाता है। ठंढ़ा करने से यह फिर पूर्वरूप में नहीं आता। रबर के बहुत कुछ गुण गरम करने से नष्ट हो जाते हैं। प्राय ३००°श० के ऊपर गरम करने से कपिल वर्ण का तेल-विच्छेदितहो अनेक प्रकार का उत्पाद बनता है।

रबर के शुष्क आसवन से जो पदार्थ बनते हैं उनमें आइसोप्रीन का बनना विलियम् द्वारा १८६२ ई० में देखा गया था। बुकार्डट (Bouchardat) ने १००°श० तक गरम करने से आइसोप्रीन, २००°श० तक गरम करने से डाइपेण्टीन और २००° से ऊपर गरम करने से हेवीन प्राप्त किया था। टिल्डेन ने आइसोप्रीन को निम्न-लिखित संघटन दिया था—

$$CH_2{=}\overset{\overset{H}{|}}{C}-\overset{\overset{CH_3}{|}}{C}{=}CH_2 \quad \text{या} \quad \text{प्र उ}_2{=}\overset{\overset{\text{उ}}{|}}{\text{प्र}}-\overset{\overset{\text{प्र उ}_3}{|}}{\text{प्र}}{=}\text{प्र उ}_2$$
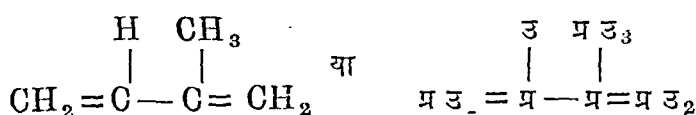
इस यौगिक का पीछे संश्लेषण हुआ और तब इसका यह संघटन निश्चित रूपसे प्रमाणित होगया। पीछे मालूम हुआ कि आइसोप्रीन के दो अणुओं से डाइपेन्टीन बनता है। पीछे रबर के आसवन के उत्पाद में और भी अनेक हाइड्रोकार्बन और टरपीन पाये गये।

फिर पता लगा कि रबर वस्तुतः आइसोप्रीन के अणुओं के पुरुभाजन से बना है और तब रबर का संघटन निम्नलिखित दिया गया—

$$\left(CH_2{=}\overset{\overset{CH_3}{|}}{C}-\overset{\overset{H}{|}}{C}{=}CH_2\right)_n \quad \text{या} \quad \left(-CH_2-\underset{\underset{CH_3}{|}}{C}{=}\underset{\underset{H}{|}}{C}-CH_2-\right)_x$$

$$\left(\text{प्र उ}_2{=}\overset{\overset{\text{प्र उ}_3}{|}}{\text{प्र}}-\overset{\overset{\text{उ}}{|}}{\text{प्र}}{=}\text{प्र उ}_2\right)_{\text{प}} \quad \text{या} \quad \left(-\text{प्र उ}_2-\underset{\underset{\text{प्र उ}_3}{|}}{\text{प्र}}{=}\underset{\underset{\text{उ}}{|}}{\text{प्र}}-\text{प्र उ}_2-\right)_{\text{फ}}$$
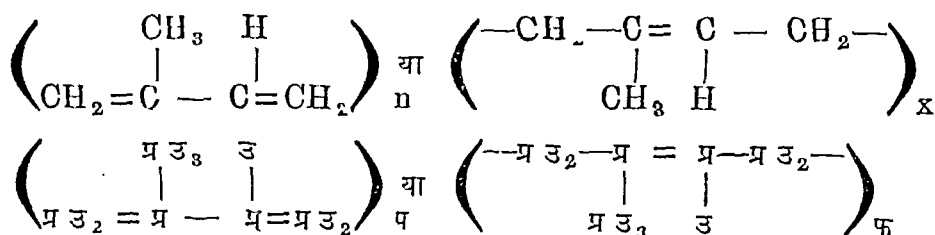
यह लम्बा अणु टूटकर आइसोप्रीन अथवा इसका पुरुभाज डाइपेण्टीन बनता है। रबर में २३ प्रतिशत तक आइसोप्रीन पाया गया है। रबर के आसवन का इधर अधिक विस्तार से अध्ययन हुआ है और उससे प्रायः २३ विभिन्न हाइड्रोकार्बन जिनका क्थनांक ५०° से १७०° श० के बीच है, पाये गये हैं। रबर का आसवन एल्युमिनियम क्लोराइड की उपस्थिति में भी

किया गया है। यहाँ आसवन निम्न ताप पर ही हो जाता है और उससे पेट्रोलियम सदृश तेल-सामान्य आसवन से बिलकुल विभिन्न उत्पाद प्राप्त हुए हैं।

लवणजनों (फ्लोरीन, क्लोरीन, ब्रोमीन और आयोडीन) और लवणजन अम्लों (हाइड्रो फ्लोरिक, हाइड्रोक्लोरिक, हाइड्रोब्रोमिक और हाइड्रियोडिक अम्लों) की क्रियाएँ बड़ी शीघ्रता से रबर पर होती हैं। क्लोरीन और रबर के संयोग से जो उत्पाद प्राप्त होते हैं वे तो आज वाणिज्य की दृष्टि से बड़े महत्त्व के पाये गये हैं। महीन रबर में या रबर के विलयन या आक्षीर में क्लोरीन के प्रवाह से क्लोरीनयुक्त रबर प्राप्त होता है। ऐसे उत्पाद में ६१ प्रतिशत तक क्लोरीन रह सकता है।

१९१५ ई० में पिची (Peachey) ने क्लोरीन युक्त रबर का एक पेटेंट लिया जिससे ऐसा वार्निश बन सकता था जिस पर रासायनिक क्रियाएँ बहुत कम होती थीं। ऐसे रबर में क्लोरीन की मात्रा ६५ प्रतिशत तक थी। इसके बाद क्लोरीनयुक्त रबर के और अनेक पेटेंट लिये गये। १९३० ई० में पहले-पहल क्लोरीनयुक्त रबर के शुष्क चूर्ण का बाजारों में आगमन हुआ। इसका रंग मलाई-सा था। इसका नाम टौरनेसिट (Tornesit) दिया गया। इसकी श्यानता तीन प्रकार की थी। १९३३ ई० में परगुट (Pergut) और टेफोगन (Tefogan) बाजारों में आये। १९३४ ई० में एलोप्रीन (Allopren), फ़िर डेटेल (Detel) और १९४० में पारलन (Parlon) आया। ये सब वाणिज्य के विभिन्न नाम क्लोरीनयुक्त रबर के हैं।

क्लोरीन-युक्त रबर का उत्पाद ऐसा स्थायी बने कि उससे क्लोरीन अथवा हाइड्रोजन क्लोराइड न निकल सके। इसके लिए आवश्यक है कि रबर के उष्ण विलयन में क्लोरीन प्रविष्ट कराया जाय। एक पेटेंट में इसके निर्माण का वर्णन इस प्रकार दिया है—

"रबर को कार्बन टेट्राक्लोराइड अथवा कार्बन टेट्राक्लोराइड और हेक्या क्लोरोइथेन के मिश्रण में घुलाकर विलयन को प्रतिक्रिया पात्र में रखकर उसमें प्रत्यावर्त (reflex) संघनक जोड़कर ८०° से ११०° श० तक गरम कर उसमें क्लोरीन प्रवाहित करे। जब उसमें प्रायः ६५ प्रतिशत क्लोरीन अवशोषित हो जाय तब क्लोरीन का प्रवाह बन्द कर दे। अब उसे तब तक गरम करता रहे जब तक उसका हाइड्रोजन क्लोराइड पूर्णतया निकल न जाय।"

ऐसे क्लोरीनयुक्त रबर की श्यानता महत्त्व की है। वार्निश या लक्षा के लिए निम्न श्यानता आवश्यक या उपादेय है। पहले के क्लोरीन-युक्त उत्पाद में श्यानता बहुत अधिक होती थी। रबर के सामान्य विलयन में रबर की मात्रा प्रायः ६ प्रतिशत रहती है। अधिक समय तक पीसने से रबर टूट जाता है और उससे अधिक रबर घुल जाता है। इससे पतला विलयन प्राप्त होता है। पीछे देखा गया कि अनेक ऐसे पदार्थ का जिनका रबर पर बुरा असर होता है, क्लोरीन-युक्त रबर पर असर अच्छा पड़ता है।

जम्बुकोत्तर और सूर्य-किरणें कच्चे रबर को नष्ट कर देती हैं। ये उन्हें चिपचिपा और कोमल बना देती हैं, पर क्लोरीन-युक्त रबर पर इनका प्रभाव बुरा नहीं, वरन् बहुत अच्छा पड़ता है। ऑक्सीकारकों और ताँबे, कोबाल्ट, मैंगनीज़, लोहे इत्यादि के लवण रबर को विच्छेदित कर देते हैं। यदि क्लोरीकरण के समय या पूर्व में रबर को विपुरुभाजित (depolymerize) कर लें तो और अच्छा होता है।

क्लोरिन युक्त रबर सफेद अरूप्य चूर्ण होते हैं जो पेट्रोलियम विलायक में घुलते नहीं, पर

क्लोरिन-विलायकों में सरलता से घुल जाते हैं। ऐसे उत्पाद का घनत्व १.६६ होता है। इनमें कोलायड गुण अवश्य होते हैं। पर रवर के गुण प्रायः नहीं होते। विशेष यत्नों से सछिद्र, स्पंज-सा तन्तुमय पदार्थ प्राप्त होते हैं जिनका घनत्व वहुत कम होता है। वे अदाह्य और उत्तम उष्मा और ध्वनि-अचालक होते हैं। इसकी तापीय चालकता वड़ी कम होती है। इसके वने वार्निश और वर्णक उष्मा और रासायनिक द्रव्यों के प्रतिरोधक होते हैं। सस्ते विलायकों में इसके सान्द्र विलयन की भी श्यानता अपेक्षाकृत अल्प होती है। इनका वहाव अच्छा होता है और ऐसे हलके आवरण वनते हैं जो कठोर, चीमड़ और चमकदार होते हैं। ये अम्ल, क्षार, जल तथा अन्य रसायन-द्रव्यों से आक्रान्त नहीं होते। पतले होने पर भी इनका आवरण मज़बूत, पारदर्शी और अच्छे अधिवैद्युत् गुण के होते हैं। मौसम के परिवर्तन को ये अच्छे प्रकार से सहन कर सकते हैं।

क्लोरीनयुक्त रवर बेंजीन, टोल्विन, ज़ाइलिन और सव क्लोरीन विलायकों में विलेय होता है। एथिल एसिटेट, एमिल एसिटेट सदृश एस्टरों में भी यह विलेय होता है। एथिलिन ग्लाइकोल और ग्लीसिरिन के इथरो में भी यह विलेय है। पर जल, एलकोहल, ऐसिटोन इत्यादि में अविलेय है। इसकी विलेयता की साधारणतया सीमा नहीं है। सान्द्रण की वृद्धि से विलयन प्लास्टिक-सा हो जाता है।

सुनम्यकारकों के डालने से आवरण की लचक उन्नत हो जाती है, ट्राइक्रेसिल फ़ास्फेट, ट्राइफेनिल फ़ास्फेट, डाइब्यूटिल थैलेट, क्लोरीनयुक्त पैराफिन, क्लोरीनयुक्त डाइफेनिल अच्छे सुनम्यकारक प्रमाणित हुए हैं।

ऐसा क्लोरीनयुक्त रवर शुष्क तेलों,—जैसे अलसी तेल, तुंग तेल; अशुष्क तेलों,—जैसे अरंडी और ताड़ के तेल में विलेय है। कोलतार, प्राकृतिक और कृत्रिम रेज़िन के साथ सव अनुपात में विलेय है। रवर और सेल्यूलोज़ रवर के साथ यह मिश्रित नहीं होता।

सामान्य वार्निश में क्लोरीनयुक्त रवर की मात्रा १५ से ३० प्रतिशत रहती है। यह टोल्विन, ज़ाइलिन या नफ़्था में घुला रहता है। इनमें ५ से १० प्रतिशत तक अलसी या तुंग तेल भी रह सकता है। इसमें कुछ सुनम्यकारक भी रह सकता है। यह वार्निश लोहे के ढाँचों के परिरक्षण के लिए उत्तम समझा जाता है और वहुत प्रचुरता से उपयुक्त होता है। यह वार्निश ब्रश से लगाने के लिए वहुत अच्छा समझा जाता है। छिड़कने के लिए अच्छा नहीं समझा जाता।

एक क्लोरीनयुक्त रवर का नाम एलोप्रीन है जिसका सूत्र $C_{10}H_{13}Cl_7$ के सन्निकट है। इसमें क्लोरीन की मात्रा लगभग ६५ प्रतिशत है। यह चार श्रेणियों में चूर्ण या तन्तु रूप में प्राप्य है। इसकी श्यानता विभिन्न होती है।

इस वार्निश से वने फिल्म जलते नहीं। उनमें जल वड़ी कठिनाई से प्रविष्ट करता है और प्रवल अम्लों और क्षारों के प्रति अवरोधक होता है। इस पर सूर्य-प्रकाश की क्रिया अल्पतम होती है।

क्लोरीनयुक्त रवर के उपयोग अनेक हैं। इसके पेण्ट वनते, परिरक्षित आवरण चढ़ाये जाते, कागज़ के लक्षारस, जल्दी सूखनेवाले इनैमल; एवं असंयक्त तैरने की टंकियों के आस्तर और कौंक्रीट गचों के वर्णक वनते हैं। क्लोरीनयुक्त रवर ढाँचा वनाने का एक वहुमूल्य

पदार्थ भी है'। ऐसा रबर १४०° श० पर प्रति इंच ३ से ६ टन के ऊँचे दबाव पर ढाँचे में ढाला जा सकता है। सुनम्यकारकों के सहयोग से न्यून ताप और न्यून दबाव पर यह ढाला जा सकता है।

ब्रोमीन की भी रबर पर क्रिया होती है और इससे $C_{10}H_{10}Br_4$ संघटन का एक पदार्थ प्राप्त होता है। ब्रोमीनयुक्त रबर के औद्योगिक उपयोग नहीं है। आयोडीन की भी रबर पर क्रिया होती है। आयोडीनयुक्त रबर अस्थायी होता है और सूर्य-प्रकाश से शीघ्र ही विच्छेदित हो आयोडीन मुक्त करता है।

लवणजन अम्लों की भी रबर पर क्रियाएँ होती हैं। हाइड्रोजन क्लोराइड स C_5H_8 HCl मात्रक सूत्र का यौगिक बनता है। हाइड्रोजन ब्रोमाइड से $(C_5H_8HBr)n$ सूत्र और हाइड्रोजन आयोडाइड से $(C_5H_8H_9)n$ सूत्र के यौगिक बनते हैं। गरम करने से ये अस्थायी होते और हाइड्रोजन क्लोराइड, ब्रोमाइड, और आयोडाइड मुक्त करते हैं।

रबर हाइड्रोक्लोराइड से पारदर्श फिल्म प्राप्त होते हैं। वाणिज्य में इनका महत्त्व बढ़ रहा है। पारदर्श फिल्म और चादरें आज तैयार होती हैं। एक ऐसा ही फिल्म बनानेवाले रबर हाइड्रोक्लोराइड का नाम 'प्लॉयोफिल्म' पड़ा है, जिससे लपेटने और बाँधने के सामान बनते और वे मजबूत, खींचने से फैलनेवाले, जल-अभेद्य, और नहीं फटनेवाले होते हैं। उनपर तेलों या चरबी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके पाइन तेल के साथ मिलाकर फोटोग्राफ के फिल्म भी बनते हैं। रबर को धातुओं के साथ जोड़ने के लिए इसके अच्छे सीमेण्ट बनते हैं।

रबर को सलफ्यूरिक अम्ल के साथ पेषण से तापसुनम्य पदार्थ बनते हैं। रबर को थोड़े पानी के साथ लेपी बनाकर उसमें २ भाग कोई निष्क्रिय पदार्थ मिलाकर ५ प्रतिशत सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल के साथ पेषण से और इस पेषित पदार्थ के प्रायः १५ घण्टे तक १२०° श० पर गरम करने से वह सुनम्य हो जाता है।

सलफ्यूरिक अम्ल के स्थान में कार्बनिक सल्फोनिक अम्लों—क्लोरो-सल्फोनिक अम्ल और सल्फोनिक क्लोराइड के साथ पेषण और कुछ समय तक गरम करने से चीमड़ और ताप-सुनम्य, कुछ दशाओं में लाख के ऐसा, और अन्य दशाओं में गाटापरचा और बलाटा के ऐसे पदार्थ प्राप्त होते हैं। इन पदार्थों को थर्मोप्रीन कहते हैं। गाटापरचा के ऐसे पदार्थ का नाम फिशर (Fisher) ने जी. पी. दिया था और बलाटा के ऐसे पदार्थ का नाम एच. बी. और लाख के ऐसे पदार्थ थर्मोप्रीन का नाम एस. एच. दिया था।

१०० भाग चर्वित रबर में ७·५ भाग पाराफीनोल सल्फोनिक अम्ल डालकर ६ घण्टे तक गरम करने से थर्मोपीन जी. पी. प्राप्त होता है। यह गाटापरचा-सा होता है। इसकी वितान-क्षमता ३००० पाउण्ड प्रति इन्च होती है। यह ,२०° श० पर कोमल होना शुरू करता है। यह अनेक रबर-विलायकों में विलेय है; पर रबर की अपेक्षा इसका विलयन बहुत कम श्यान होता है और विलयन का ३० प्रतिशत तक सान्द्रण प्राप्त हो सकता है।

एच. बी. थर्मोप्रीन १०० भाग, रबर को ४ भाग सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल के साथ

१२०° श० पर ३० घण्टे तक गरम करने से प्राप्त होता है। यह ७०° पर कोमल होना शुरू होता है और इसकी वितानक्षमता ५,००० पाउण्ड प्रति इञ्च होती है।

लाख-सदृश पदार्थ १०० भाग रबर को १२५ भाग वीटा-नेफ्थोल-साल्फोनिक अम्ल के साथ १४५° श० पर कुछ घण्टे गरम करने से प्राप्त होता है। यह भंगुर होता है और १०५° श० पर कोमल होता है और १३०° श० पर पिघलता है।

लोहा और इस्पात को रबर के साथ जोड़ने में इसके विलयन बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। ईंट, कौंक्रीट और लकड़ी इत्यादि के जोड़ने में भी ये काम आते हैं। इसकी जोड़ बड़ी मजबूत होती है; पर ६०°श० से ऊपर यह टूट सकती है।

इन पदार्थों में एक विशेषता यह है कि इनमें गंधक बिलकुल नहीं रहता; असंतृप्ति की डिगरी अवश्य कम हो जाती है। ऐसा समझा जाता है सलफ्यूरिक अम्ल से रबर के अणुओं में चक्रण, चक्र का बनना, हो जाता है। ऐसे चक्रवाले हाइड्रोकार्बन गटापरचा और बलाटा से होते हैं।

रबर के चक्रण में कुछ प्रतिकारकों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। ये प्रतिकारक उन तत्त्वों के क्लोराइड होते हैं, जो परिस्थिति के अनुसार आम्लिक और क्षारीय दोनों होते हैं। अधातुओं के कुछ क्लोराइड भी चक्रण में सहायता करते हुए पाये गये हैं। ऐसे क्लोराइडों में बोरन और फ़ास्फ़रस के क्लोराइड हैं। सलफ़र क्लोराइड भी एक ऐसा हीं क्लोराइड है। अन्य क्लोराइडों से तापसुनम्य उत्पाद प्राप्त होते हैं। पर सलफ़र क्लोराइड से प्रत्यास्थ उत्पाद प्राप्त होता है। गटापरचा चक्रण से वैसे ही उत्पाद प्राप्त होते हैं जैसे रबर से प्राप्त होते हैं। ट्राइक्लोर-ऐसिटिक अम्ल से भी चक्रण होकर कठोर, चीमड़, तापसुनम्य पदार्थ प्राप्त होता है।

धातुओं के क्लोराइडों में स्टेनिक क्लोराइड, टाइटेनियम क्लोराइड, फेरिक क्लोराइड, बिस्मथ क्लोराइड और ऐंटीमनी क्लोराइड के उपयोग हुए हैं।

इन क्लोराइडों से प्राप्त रबर भिन्न-भिन्न रंग और भिन्न-भिन्न गुण के होते हैं।

ब्रुसन (Bruson) ने रबर में प्रायः दस प्रतिशत क्लोरोस्टैनिक अम्ल अथवा क्लोरोस्टेनस् अम्ल पेषण में डालकर अथवा बेंज़ीन के विलयन में डालकर एक उत्पाद बनाया। उत्पाद की प्रकृति, प्रतिक्रिया की परिस्थिति, विशेषतः ताप और समय पर निर्भर करती है। उत्पाद में कुछ क्लोरीन का अंश भी संयुक्त रहता है। गुडइयर टायर और रबर कम्पनी ने इस रीति से जो उत्पाद बनाया था, उसका नाम प्लायोफार्म (Plioform) रेज़िन दिया था। यह बलाटा सदृश से लेकर बहुत कठोर कचकाड़ा सदृश तक का बन सकता है। इनके विभिन्न नमूने, लचक और आघात-सामर्थ्य में और कोमल होने के ताप में विभिन्न होते हैं। ये सब ताप-सुनम्य होते हैं। इन रेज़िनों में टाइटेनियम आक्साइड, लिथोपोन, कार्बन काल, जिंक ऑक्साइड, लालसीस, गेरू, सिलिका, क्रोमियम आँक्साइड, जिंक क्रोमेट, प्रशीयन नील इत्यादि पूरक और आवश्यक रंग या वर्णक इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

ये अधिकांश में अम्लों के प्रबल प्रतिरोधक होते हैं। ये क्षारों की क्रिया को सहन कर सकते हैं। एलकोहल, ऐसिटोन और इसी प्रकार के अन्य विलायकों में अविलेय होते पर बेंज़ीन, टोल्विन, पेट्रोलियम ईथर इत्यादि हाइड्रोकार्बन विलायकों में विलेय होते हैं। इनमें

कोई गंध नहीं होती और न स्वाद ही होता है। ये शीघ्रता से आक्सीकृत नहीं होते और न प्रकाश से ही प्रभावित होते हैं।

इनमें जल प्रविष्ट नहीं करता और वैद्युत् गुण भी उत्कृष्ट कोटि के होते हैं। कचकड़ा के स्थान में ये इस्तेमाल हो सकते हैं। ये किसी भी रंग के वन सकते हैं।

ये रेजिन दो श्रेणियों के वने हैं। एक ८०° श० पर और दूसरा १०५° श० पर कोमल होता है। ये चूर्ण या दण्ड या नली के रूप में प्राप्त हो सकते हैं। निम्न ताप पर कोमल होने वाला उत्पाद १४०° श० पर और उच्च ताप पर कोमल होने वाला १५५° श० पर ढाला जा सकता है। प्रति वर्ग इञ्च ३००० पाउण्ड दवाव इस्तेमाल होता है। इस प्रकार ढाला हुआ पदार्थ चाकू से काटा, आरी से चीरा और वर्तनी से खरादा और विभिन्न आकार में वनाया जा सकता है; पर ऐसा करते समय उसे शीतल रखना आवश्यक होता है। इस प्रकार के रेज़िन यूरोप में धातुओं को रवर के साथ जोड़ने में अधिकता से उपयुक्त होते हैं।

उपर्युक्त प्रकार के चक्रण प्रतिकारकों का प्रभाव कृत्रिम रवर पर भी ठीक ऐसा ही होता है।

प्लायोफार्म के भौतिक गुण

विशिष्ट घनत्व	१.०६
कोमलांक श्रेणी २०	२२०° फ०
श्रेणी ४०	१७५–१९५ फ०
शीतल वहाव प्रति इञ्च २००० पाउण्ड पर वर्ग इञ्च और १२०° फ० पर	०.०००३५ इञ्च
तापीय प्रसार के गुणक	०.०००८
ढाँचे का सिकुड़न प्रति इञ्च	०.००३५ इञ्च
वितान क्षमता	५००० पाउण्ड प्रति वर्ग इञ्च
संपीड़न सामर्थ्य	९०००से ११००० पाउण्ड प्रति वर्ग इञ्च
आघात सामर्थ्य	२.५–६.२
जल-अवशोषण [२४ घण्टा]	०.०३%

रवर पर धातुओं का प्रभाव

अनेक धातुओं और धातुओं के यौगिकों की अल्प मात्रा का रवर पर बहुत अधिक हानिकारक प्रभाव पड़ता है। ऐसे पदार्थों में ताँवे, कोवाल्ट और लोहा है। ताम्र लवणों का सबसे अधिक हानिकारक प्रभाव पड़ता है। सिल्वर नाइट्रेट, मैंगनीज ऑक्साइड और वेनेडियम क्लोराइड तो रवर को पूर्ण रूप से नष्ट ही कर देते हैं। वेवर ने दिखाया है कि ०.०१ प्रतिशत ताँवा भी कच्चे रवर का ह्रास कर क्षति पहुँचाता है। ०.००१ से ०.००५ प्रतिशत मैंगनीज रवर को कुछ चिपचिपा और ०.०१ से ०.०२ प्रतिशत तो वहुत चिपचिपा वना देता है। साधारणतया रवर में ०.००६ प्रतिशत लोहा रहता है। रवर के पात्र में पर्याप्त समय तक आक्षीर रखने से रवर खराब होते देखा गया है।

रवर का हाइड्रोजनीकरण भी हुआ है। प्लैटिनम काल की उपस्थिति में हाइड्रोजनीकरण से रवर पारदर्श श्वेत पिंड के रूप में परिणत हो जाता है। ऐसे उत्पाद की ब्रोमीन से कोई प्रतिक्रिया नहीं होती जिससे मालूम होता है कि उत्पाद विलकुल संतृप्त है।

पिघले रवर और प्लैटिनम काल के २७०°श० पर गरम करके लगभग १०० वायुमंडल के दवाव पर हाइड्रोजन की क्रिया से एक पारदर्श उत्पाद प्राप्त हुआ, जिसमें प्रत्यास्थता के गुण का विलकुल अभाव पाया गया था और जो बेंजीन, क्लोरोफार्म और ईथर में तो विलेय था; पर एलकोहल और ऐसिटोन में अविलेय था। इस पर भी ब्रोमीन की कोई क्रिया नहीं होती थी।

रवर के भंजक आसवन से पेट्रोल सा पदार्थ प्राप्त होता है जो जलाने या विलायक के रूप में उपयुक्त हो सकता है। परिस्थिति के अनुकूल इससे ऐसे भी उत्पाद प्राप्त हो सकते हैं जो रवर के विलायक, कोमलकारक, ईंधन और उपस्नेहन तेल के रूप में उपयुक्त हो सकते हैं।

भंजन और हाइड्रोजनीकरण से ४५०°श० पर मोलिवडेनम सलफ़ाइड की उपस्थिति में रवर का प्रायः ५० प्रतिशत २००° श० से निम्न ताप पर उवलनेवाला स्पिरिट प्राप्त होता है जो स्थायी और जल-सा सफेद होता है और मोटर स्पिरिट के रूप में उपयुक्त हो सकता है। ऐसे मोटर-स्पिरिट में प्रति-अभिघात गुण भी सन्तोषप्रद होता है।

वलकनीकृत रवर के इस्तेमाल हुए रवर के सामानों, विशेषतः टायरों के भंजक आसवन से ५६०° श० पर 'रवर तेल' प्राप्त हुआ है। इस तेल का १७०° श० ताप से निम्न ताप पर उवलनेवाले तेल को 'हलका रवर का तेल' कहते हैं। कच्चे रवर के लिए यह वहुत अच्छा विलायक सिद्ध हुआ है। उच्च ताप पर उवलनेवाले तेल में वलकनीकृत रवर के कोमल करने और विलीन करने का गुण है। रवर के तेल रेक्टिफाइड स्पिरिट में डालकर अपेय मिथिलेटेड स्पिरिट वनाने में आज भारत में उपयुक्त होता है।

रवर पर नाइट्रिक अम्ल का प्रभाव पड़ता है। प्रवल अम्ल से लाल धुआँ निकलता है और नाइट्रो-यौगिक, $C_{10}H_{12}N_2O_6$ संघटन के पदार्थ वनते हैं। इस उत्पाद से पीला वार्निश तैयार हुआ था। रवर पर नाइट्रोजन ट्रायक्साइड की क्रिया से नाइट्रोसाइट-ए और नाइट्रोसाइट-वी वनते हैं।

रवर पर आक्सिजन की क्रिया होती है। रखने से रवर आक्सीकृत कर उसे चिपचिपा और अप्रत्यास्थ वना देता है। इसका कारण यह है कि आक्सिजन के अवशोषण से रवर का संघटन वदल जाता है। कुछ पदार्थों की उपस्थिति, ताप की वृद्धि और जम्बुकोत्तर प्रकाश में व्यक्तीकरण से आक्सीकरण का वेग वढ़ जाता है। इस प्रकार से प्राप्त कुछ पदार्थ साटने के लिए लेपी के रूप में उपयुक्त हो सकते हैं। आक्सीकरण से रेजिन भी वनता है। रवर-आक्सिजन के साथ मिलकर रवर का पेराक्साइड वनता है। ऐसा समझा जाता है आक्सिजन से रवर का पहले ह्रास या विपुरु-भाजन होता है और पीछे आक्सीकरण। आक्सीकरण प्रतिकारकों से रवर का प्रधानतया विपुरुभाजन होता है। वहुत थोड़े अंश का आक्सीकरण होता है। पेण्ट में जो शुष्ककारक उपयुक्त होते हैं, वे रवर के आक्सीकरण का वेग वढ़ा देते हैं। ऐसे पदार्थों का रवर से रेज़िन प्राप्त करने में उपयोग हुआ है। कोवाल्ट के लिनोलिएट और रेजिनेट इसके लिए उपयुक्त हुए हैं। एक ऐसा रेजिन इस प्रकार प्राप्त हुआ है। पूर्णतया

पेषित २० भाग रबर को ८० भाग स्पिरिट में घुलाते हैं। उसमें फिर आधा से ढाई भाग कोबाल्ट लिनोलिएट डालकर ८०° श० पर ८ घण्टे वायु के प्रवाह में रखते हैं। इस रीति से जो रेजिन प्राप्त होता है, उसको केन्द्रापसारक में रखकर साफ कर लेते हैं। अब विलायक के उद्वाष्पन से जो रेज़िन प्राप्त होता है, उसे 'रुब्बोन' कहते हैं। ऐसे रेजिन को पेण्ट, वार्निश, लाक्विरस और वैद्युत् यंत्रों में वेष्ठन के ओत-प्रोत करने और ढलाई में उपयुक्त करते हैं।

रुब्बोन कई प्रकार के होते हैं। रुबोन-ए ऐसिटोन में शत-प्रतिशत विलेय हैं। रुबोन-बी ऐसिटोन में शत प्रतिशत विलेय है। रुब्बोन सी-भी ऐसिटोन में शत प्रतिशत विलेय है; पर श्वेत स्पिरिट और एलकोहल में अविलेय है। रबर के ऐसा रुब्बोन का भी वलकनीकरण हो सकता है। ऐसे वलकनीकृत १० प्रतिशत गंधक से रबर के जो उत्पाद प्राप्त होते हैं, उनके अनेक औद्योगिक उपयोग पाये गये हैं। अपघृप के बाँधने के लिए सीमेंट और साँचे में ढालने के चूर्ण के बनाने में उपयुक्त होते हैं। रुब्बोन-बी का उपयोग शुष्क तेलों के साथ वार्निश बनाने में होता है। ऐसे वार्निश अम्लों और क्षारों के प्रतिरोधक होते हैं। ऐसा अलसी तेल और रुब्बोन-बी वार्निश २००°श० का ताप बहुत दिनों तक सहन कर सकता है। लोहे और इस्पातों के लिए और ऐसबेस्टस के बाँधने के लिए, चमड़े वस्त्रों और ब्रेक के आस्तर के जोड़नेके लिए ये अच्छे सिद्ध हुए है।

ओज़ोन की क्रिया

कच्चा रबर ओज़ोन से कोमल और चिपचिपा हो जाता है। वलकनीकृत रबर पर इसका बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है। ओज़ोन से रबर फट जाता और बँधे रहने का गुण नष्ट हो जाता है। ओज़ोन से रबर का युग्म-बन्धन आक्रान्त होकर रबर ओज़ोनाइड बनता है। रबर ओज़ोनाइड बहुत अस्थायी होता है। जल से ओज़ोनाइड शीघ्र ही आक्रान्त हो विच्छेदित हो जाता है। इसके विच्छेदन से एल्डीहाइड और कीटोन बनते और हाइड्रोजन पेराक्साइड मुक्त होता है। इन उत्पादों के अध्ययन से ओज़ोनाइड के संघटन का ज्ञान प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिलती है। कार्बन के यौगिकों में युग्म-बन्धन की संख्या और शृङ्खल में युग्म-बन्धन के स्थान निर्धारित करने में इससे सहायता मिलती है।

दसवाँ अध्याय

प्राकृतिक रबर का संघटन

रबर के भंजक आसवन से आइसोप्रीन और डाइपेण्टीन प्राप्त होते हैं। आइसोप्रीन और डाइपेण्टीन के संघटन निम्नलिखित हैं।

$$CH_2=CH-\underset{\underset{CH_3}{|}}{C}=CH_2$$ या $$\text{प्रउ}_2=\text{प्रउ}-\underset{\underset{\text{प्रउ}_3}{|}}{\text{प्र}}=\text{प्रउ}_2$$
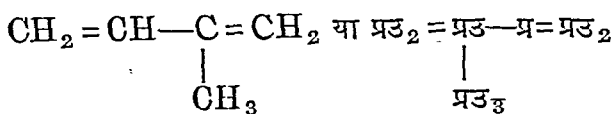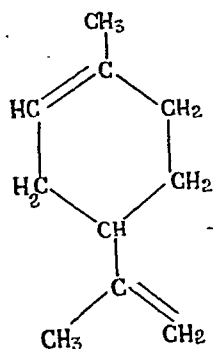
आइसोप्रीन के दो अणुओं के मिलाने से डाइपेण्टीन बनता है।
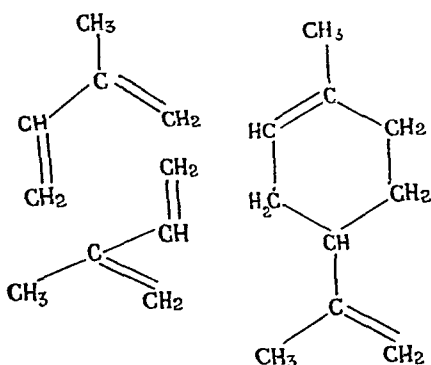
हैरिस ने देखा कि रबर पर ओज़ोन की क्रिया से रबर ओज़ोनाइड बनता है। ओज़ोनाइड के अध्ययन स उन्होंने रबर का संघटन निम्नलिखित दिया—

$$\begin{array}{l} CH_3-C-CH_2-CH_2-CH \\ \quad\;\; \| \qquad\qquad\qquad\quad\;\; \| \\ \quad\; CH-CH_2-CH_2-C-CH_3 \end{array}$$

या

$$\begin{array}{l} \text{प्रउ}_3-\text{प्र}-\text{प्रउ}_2-\text{प्रउ}_2-\text{प्रउ} \\ \qquad\quad \| \qquad\qquad\qquad\quad \| \\ \qquad \text{प्रउ}-\text{प्रउ}_2-\text{प्रउ}_2-\text{प्र}-\text{प्रउ}_3 \end{array}$$
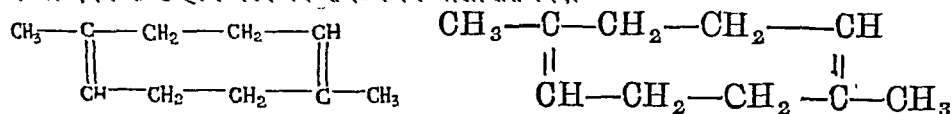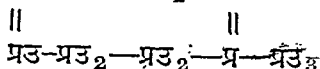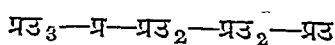
पीछे हैरिस ने देखा कि रबर के अन्य रूपान्तर भी हो सकते हैं जिनके मात्रक सूत्र तो एक ही $C_6 H_8$ हैं; पर उनके गुणों में बहुत कुछ अन्तर रहता है। ऐसे रबर का नाम उन्होंने आइसो-रबर दिया था। आइसो-रबर सामान्य रबर ...

उन्होंने रबर को बेंजीन में घुलाकर उसका हाइड्रोक्लोराइड बनाया और फिर हाइड्रोजन क्लोराइड के निकालने पर जो उत्पाद प्राप्त हुआ, वह पूर्व के उत्पाद से भिन्न था। रबर के ओज़ोन के साथ उपचार के बाद में जो रबर प्राप्त हुआ था, वह भी पूर्व के रबर से भिन्न था। इससे यही मालूम होता है कि इन विभिन्न रबरों में द्विबन्ध के स्थान एक नहीं है, भिन्न-भिन्न हैं। पीछे हैरिस इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि रबर के अणु में आइसोप्रीन के पाँच मात्रक विद्यमान हैं।

पिक्लस का मत है कि आइसोप्रीन के मात्रक के मिलने से रबर की बड़ी-बड़ी शृङ्खलाएँ या जंजीरें बनती हैं। इससे आइसोप्रीन अणु निम्न प्रकार से आइसो-प्रीन मात्रकों में परिणत हो जाता है।

$$CH_2 = \underset{\displaystyle CH}{\underset{|}{C}} - CH = CH_2 \rightarrow -CH_2 - \underset{\displaystyle CH_3}{\underset{|}{C}} = CH - CH_3 -$$

$$प्रउ_2 = \underset{\displaystyle प्रउ_3}{\underset{|}{प्र}} - प्रउ = प्रउ_2 \longrightarrow -प्रउ_2 - \underset{\displaystyle प्रउ_3}{\underset{|}{प्र}} = प्रउ_2 - प्रउ_2$$
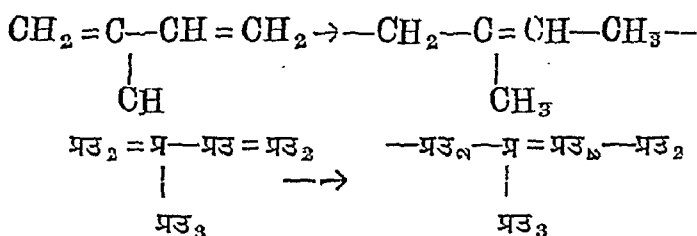
जो दूसरे मात्रकों के साथ मिलकर लम्बी शृङ्खलाएँ बनती हैं।

पिक्लस का मत था कि आइसो-प्रीन के ८ मात्रक मिलकर रबर की बन्द शृङ्खला या वलय बनता है।

स्टैण्डिजर ने रबर के संघटन का विस्तृत अध्ययन किया है और उसके फलस्वरूप उनका मत है कि रबर की शृङ्खलाएँ अनेक आइसोप्रीन मात्रकों से बनी हैं। ऐसे मात्रकों से निम्न प्रकार की शृङ्खलाएँ बनती हैं।

$$-CH_2 - \underset{\displaystyle CH_3}{\underset{|}{C}} = CH - CH_2 - \left[CH_2 - \underset{\displaystyle CH_3}{\underset{|}{C}} = CH - CH_2 \right]_n -$$

$$CH_2 - \underset{\displaystyle CH_3}{\underset{|}{C}} = CH - CH_3$$

$$-प्रउ_2 - \underset{\displaystyle प्रउ_3}{\underset{|}{प्र}} = प्रउ - प्रउ_2 - \left(प्रउ_2 - \underset{\displaystyle प्रउ_3}{\underset{|}{प्र}} = प्रउ - प्रउ_2 \right) - प्रउ_2 - \underset{\displaystyle प्रउ_3}{\underset{|}{प्र}} = प्रउ - प्रउ_3$$
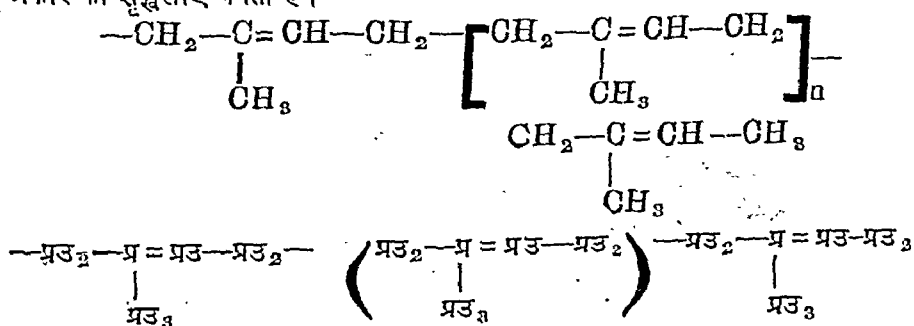
स्टैण्डिजर ने रबर का हाइड्रोजनीकरण भी किया और उससे उन्होंने रबर के ऐसे समावयव प्राप्त किये, जिनमें उनका मत है कि आभ्यन्तरिक वलय के लम्बे शृङ्खलवाले अणु बने हैं। इन अवयवों को उन्होंने चक्रीय-रबर नाम दिया। रसायन के उपचार से थर्मोप्रीन, प्लायोफार्म सरीखे बने रबरों को भी उन्होंने चक्रीय-रबर बतलाया। इन सबों में एकही सूत्र $(C_5 H_8)n$ है; पर युग्म-बन्ध की संख्याएँ कम हैं।

रबर का एक समावयव गटापरचा है। इसमें प्रत्यास्थता के छोड़कर अन्य सब गुण रबर से ही होते हैं। स्टैण्डिजर का मत है कि रबर और गटापरचा में वही अन्तर है जो रेखात्मक

समावयवता के समावयवों में होता है। एक ही परमाणु से दो प्रकार क यौगिक कैसे बन सकते हैं, उसकी उपमा बालकों से दी गई है। यदि सौ बालक अलग-अलग रहें तो प्रत्येक की उपस्थिति अलग-अलग है—वे जैसा चाहें वैसा घूमने-फिरने में स्वतन्त्र हैं। पर यदि ये सौ बालक एक दूसरे से हाथ बाँधे हुए हों तो वे एक समूह बन जाते हैं और प्रत्येक बालक की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है। रबर के अणु ऐसे ही आइसोप्रीन मात्रकों से बने हैं। आइसोप्रीन मात्रकों की स्वतन्त्रता नष्ट हो गयी है। यदि किसी समूह में ५० बालक हों, किसी में ७५ और किसी में १०० हो तो ये एक ही प्रकार के समूह हैं पर बालकों की विभिन्न संख्याओं के कारण इनमें कुछ विभिन्नता हो ही जाती है। रबर के समावयव इसी प्रकार के आइसोप्रीन के विभिन्न मात्रकों के समूह हैं।

फिर एक समूह में १०० बालक एक ही ओर मुँह किये हाथ बाँधे रह सकते हैं। ऐसी दशा में एक का बायाँ हाथ दूसरे के दाहिने हाथ से बँधा है। दूसरे समूह में वे ही १०० बालक हैं, पर एक का बाँयाँ हाथ दूसरे के बाएँ हाथ से बँधा है—एक का मुँह आगे की ओर है दूसरे का पीछे की ओर, ऐसे समूहों में बालकों की संख्या एक होने पर भी ये दोनों समूह एक नहीं है। ऐसे ही यौगिक रेखात्मक समावयव होते हैं जिन्हें 'ट्रांस' और 'सिस' रूप कहते हैं।

यदि रबर का अणु-भार मालूम हो तो रबर में कितने आइसोप्रीन एकक हैं उसका ज्ञान हो सकता है। उस दशा में n का $(C_5 H_8)n$ में क्या मूल्य हो सकता है यह मालूम हो जायगा। अनेक रीतियों से रबर के अणु-भार निकालने की चेष्टाएँ भी हुई हैं। हैरिस ने रबर को रबर ओज़ोनाइड में परिणत कर ओजोनाइड के बेंजीन में हिमांक अवनमन से रबर का अणु-सूत्र $C_{25} H_{40}$ निकाला है। प्युमेरेर ने कपूर में रबर के हिमांक अवनमन से रबर का अणु-भार १४०० से २००० निकाला है। ऐसे अणु में १५ से २० आइसोप्रीन मात्रक होते हैं। हाइड्रोजनीकृत रबर का अणुभार ३,००० से ५,००० के बीच पाया गया है। इससे पता लगता है कि रबर का अणु वास्तव में बहुत भारी होता है और हाइड्रोजनीकरण से टूट कर इतना छोटा अणु बनता है। उन्होंने रबर के अणु की लम्बाई ८,१०० आंगस्ट्रौम एकक (०.०१ म्यू) निर्धारित की है। बेंज़ीन में रबर के विलयन के रसाकर्षण दाब के मापन से २५०,००० रबर का अणुभार निकलता है। एक रसायनज्ञ का सुझाव है कि रबर के अणु में ५,००० आइसोप्रीन मात्रक हैं जिससे उसका अणुभार ३५०,००० निकलता है।

यह स्पष्ट है कि रबर में आइसोप्रीन के मात्रकों से शृङ्खला बनी है। प्रत्येक आइसोप्रीन मात्रक में एक द्विबन्ध रहता हैं। अन्तिम समूहों में जो असंतृप्त समझे जाते हैं मात्रकों की क्या परिस्थिति है यह पता नहीं लगता। रासायनिक क्रियाओं के व्यवहार से जो भिन्न-भिन्न गुण के रबर प्राप्त होते हैं। उनमें द्विबन्ध की संख्या कम रहती है, ऐसा मालूम होता है। ऐसे रबरों को आइसो-रबर या चक्रीय रबर कहते हैं। रबर के अणु में वास्तव में कितने आइसोप्रीन मात्रक हैं इसका ठीक-ठीक ज्ञान हमें अभी तक नहीं है।

रबर में प्रत्यास्थता क्यों होती है इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ अन्वेषण हुए और हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में अनेक सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

गोवि का मत है कि रबर गैस से भरा हुआ फेन है। इसे जब खींचा जाता है। तब खींचने की दिशा में फेन की कोशाएँ लम्बी हो जाती हैं और उसके समकोण में सिकुड़ जाती
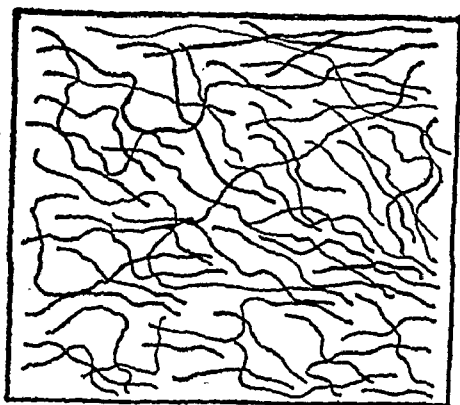
चित्र संख्या ८
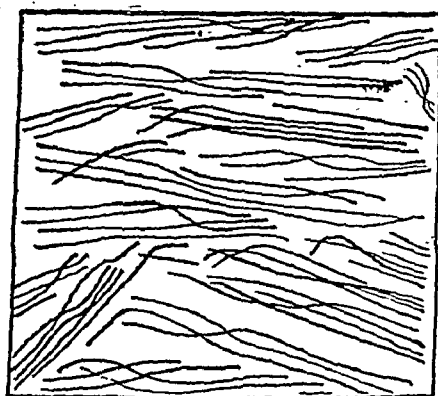
चित्र संख्या ९

हैं। यदि खींचे रबर को गरम किया जाय तो वह सिकुड़ता है। फेसेनडन का सुझाव है कि दो अपेक्षाकृत प्रत्यास्थ पदार्थ एक दूसरे में विलेयन होने पर भी ऐसा मिश्रण बन सकते हैं जिसमें प्रत्यास्थता का गुण हो। इनके मत से रबर एक कठोर, प्रत्यास्थ और कुछ फैलनेवाला पदार्थ और एक स्टियरिक मोम-सा सुनम्य पदार्थ का मिश्रण है। इस सिद्धांत से रबर के अनेक गुणों की व्याख्या हो सकती है। एक्स-किरण के अध्ययन से यह सिद्धांत ठीक नहीं प्रतीत होता।

एक दूसरा मत है कि रबर दो विभिन्न अंशों अथवा कलाओं से बना हुआ है। यदि रबर को किसी विलायक में घुलाया जाय तो कुछ अंश तो घुल जाता पर कुछ अंश अविलेय रह जाता है।

फायक्टर ने रबर को दो अंशों में पृथक् करके देखा कि उनके गुण एक दूसरे से बिलकुल विभिन्न थे। विलायक में विलेय अंश का नाम 'सोल रबर' और अविलेय अंश का नाम 'जेल रबर' दिया गया है। ये दोनों अंश ऐसे रबर से प्राप्त हुए थे जिसे पूर्ण रूप से शुद्ध कर दिया गया था। ऐसे रबर में अ-रबर अंश के रह जाने की कोई संभावना नहीं थी। ऐसा पृथक्करण डिल्को द्वारा विलयन को कुछ वर्षों तक रखे रहने के बाद किया गया था।

ओस्वल्ड का मत है कि रबर में परिक्षित माध्यम में ठोस कण का परिक्षेपण हुआ है। ठोस कण और माध्यम के एक ही संघटन हैं पर विभिन्न भौतिक गुण। वेरी और हौज़र का मत है कि रबर में एक ही मात्रिक रासायनिक संघटन के दो अवयव हैं। यह विभिन्न पुरुभाजन और विभिन्न तरलता के होते हैं। जिस तरल का बहाव अधिक है उसमें पुरुभाजन के निम्न-कोटि के हाइड्रोकार्बन हैं।

सौडिजर का मत है कि रबर ऐसे अणुओं से बना है जो बहुत ही बड़े विस्तार के हैं। ऐसे अणुओं की लंबाई एक-सी नहीं होती, विभिन्न उपचारों से विभिन्न हो सकती है।

फ़ेली का मत है कि रबर बहु-कलावाला पदार्थ है। ताप या पीसने से एक या अधिक प्रक्षेपण कला की डिग्री बढ़ जाती है। उनका मत है कि रबर में विभिन्न विस्तार के कण विद्यमान हैं। सब का संघटन $(C_5H_8)n$ से सूचित होता है, पर प्रत्येक दशा में n की

मात्रा भिन्न-भिन्न है। सब अनुपात में वे परस्पर विलेय नहीं हैं। ताप और रसायन-द्रव्यों से इन कलाओं का आपेक्षिक सम्बन्ध बदल जाता है।

बुस्से का मत है कि रवर के अणु ऐंठे हुए और कुछ लचकवाले होते हैं जिनमें उलझे हुए पर्याप्त लम्बे तन्तु रहते हैं। ये तन्तु विलयन में विलयन की बड़ी मात्रा को पकड़ रखते हैं। इससे उन्होंने रवर की प्रत्यास्थता की व्याख्या करने की कोशिश की है। ताप से तन्तुओं को सहायता मिलेगी और चर्वन से तन्तुओं को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ने में सहायता मिलेगी।

ग्रिफिथ्स् का मत है कि रवर में बहुत लम्बी लम्बी शृंखलाओं के जाल हैं जो घूमते रहते हैं। सन्धि-स्थान पर वे जुटे रहते हैं।

रवर के कणों के बहुत ऊँच विशालन से उसकी अभ्यन्तर बनावट का कुछ पता लगता है। उसके तन्तु दो प्रकार के पाये गये हैं। इनमें बहुत पतले सूत होते हैं और उनपर गोल ग्रन्थियाँ लपटी हुई रहती हैं। सूत और ग्रन्थियाँ दोनों ही रवर की होती हैं।

'सोल रवर' में प्रधानतः ग्रन्थियाँ होतीं और 'जेल रवर' में सूतें होती हैं।

वलकनीकरण क्रिया के सम्पादन के पूर्व रवर को पीसते हैं। पीसने से जेल रवर के अंश टूटकर सोल रवर में परिणत हो जाते हैं। इससे सारा रवर पूर्णतया सुनम्य पिंड में परिणत हो जाता है जिससे उसे किसी आकार में सरलता से ढाल सकते हैं। वलकनीकरण सोल रवर को जेल रवर में परिणत करता है जिससे जेल रवर की मात्रा बढ़ जाती और सोल रवर की मात्रा कम होकर सारा रवर असुनम्य पिण्ड में परिणत हो जाता है। वल्कनीकृत रवर में प्रायः सारा रवर जेल रवर के रूप में होता है।

रवर के संघटन के अध्ययन से वैज्ञानिकों का मत है कि अणुओं की बहुत लम्बी शृंखलाओं के कारण रवर में प्रत्यास्थता होती है। इस गत्यात्मक सिद्धान्त को बहुत अधिक वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। बिना खींचे रवर में अणु बहुत बड़ी शृंखला के होते हैं। वे शृंखला में कम्पन करते हैं। इस तापीय गति के कारण वे ऐंठें हुए होते हैं। यदि ऐसे ऐंठे अणु को ज़बरदस्ती खींचें और तब छोड़ दें तो तापीय परिवर्तन इनको पूर्व के रूप में शीघ्रता से ला देगा। इस कारण अणु प्रत्यास्थ होते हैं। इस सिद्धान्त के कारण अन्य सिद्धान्त अब मान्य नहीं हैं।

रवर की प्रत्यास्थता ताप की कुछ निश्चित सीमा में ही देखी जाती है। निम्न ताप पर रवर काँच-सा कठोर होता है। इसका संक्रमण ताप बहुत निम्न, –७०° श० होता है। इस ताप पर रवर के प्रसार, अधि विद्युत-गुणक, विशिष्ट ताप तापीय चालकता में परिणत होता है। यदि अन्तः-आण्विक बल अपेक्षया प्रबल है तो संक्रमण-ताप बहुत ऊँचा होता है। ऐसा एक पदार्थ पोलिमेथिल मेथाक्रिलेट है जो सामान्य ताप पर काँच-सा होता है। पर ७०° श० से ऊपर प्रत्यास्थ हो जाता है। पोलि-एस्टाइरिन ऐसा ही होता है।

ऊच्च ताप पर रवर के गुण नष्ट हो जाते हैं। वस्तुतः निम्न ताप पर ही रवर के गुण विद्यमान रहते हैं।

यह मत प्रायः स्वीकृत है कि रवर में केलासीय रूप भी रहता है। एक्स-किरण परीक्षण से केलासीय रूप का होना स्पष्टतया सिद्ध होता है। खींचे और बिना खींचे रवर का एक्स-

किरण चित्र दिया हुआ है। (चित्र संख्या ८ और चित्र संख्या ९) किस आकार के केलास हैं इसका ज्ञानएक्स-किरण परीक्षण से नहीं होता। कुछ लोगों ने रबर के केलास, जो १०° श० पर पिघलते हैं, प्राप्त किये हैं।

बहुत अधिक खींचा हुआ केलासीय रबर में तन्तु पदार्थों के गुण होते हैं। इसको खिंचाव की दिशा में सरलता से तोड़ा जा सकता है पर खिंचाव की समकोण दिशा में यह बहुत ही चीमड़ होता है। तरलवायु में डूबाकर हथौड़े से मारने से इसके तन्तु निकल आते हैं।

कच्चे रबर को हिमीकरण से या खिंचाव से केलासीय किया जा सकता है। द्रव पदार्थ तत्काल ही केलासीम रूप का होजाते हैं। पर रबर बहुत धीरे-धीरे केलासीय रूप का होता है। ०°श० पर विना खींचा हुआ रबर १० दिन में केलास बनता है पर निम्न ताप −२०° श० पर कुछ घण्टों में ही केलासीय रूप का हो जाता है। और अधिक ठंढ़ा करने पर −४०° श० पर केलासन बिलकुल नहीं होता। विना खींचा हुआ केलासीय रबर कठोर, चीमड़, न फैलनेवाला और लचीला होता है। इसका कारण यह है कि इस दशा में रबर केलासीय अंशों का मिश्रण समझा जाता है। ऐसे मिश्रण में ही ये गुण आ जाते हैं।

एक्स-किरण परीक्षण

एक्स-किरण परीक्षण से रबर में केलास होने की उपस्थिति निश्चित रूप से मालूम होती है। रबर में एक्सकिरण परीक्षण से चार प्रकार के पदार्थ

(१) केलास, (२) चूर्ण (३) तरल और (४) तन्तु पाये गये हैं।

एक्स-किरण परीक्षण से केलास के विस्तार का भी बहुत ज्ञान प्राप्त हुआ है। केलासों की लम्बाई प्रायः ६०० आँगस्ट्राम अर्थात् ६×१०^{-६} सेंटीमीटर पाई गई है। कच्चे रबर में अणु की औसत लम्बाई २०,००० आँगस्ट्राम (०·०००२ सेंटीमीटर) पाई गई है।

रबर के अणु के सम्बन्ध में जो बातें मालूम हैं वे ये हैं—

१. रासायनिक विश्लेषण से शुद्ध रबर में $C_5\ H_8$ मात्रक रहते हैं।

२. प्रत्येक $C_5\ H_8$ समूह का केवल एक द्विबन्ध होता है।

```
CH3  H    H    H
 |   |    |    |
=C - C  - C  - C=
     |    |
     H    H
```
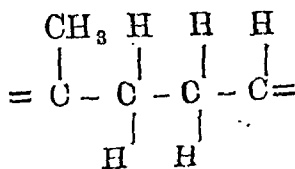
३. ओजोन विच्छेदन से आवर्ती समूह का पता लगता है।

४. एथिलिन बन्धन के कारण रबर में भी रेखात्मक संरूप [illegible] ।

५. एक्स-किरण परीक्षण, द्रवण के ताप, तनु विलयन [illegible] ता और पारपृथकरण से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि रबर आण्विक [illegible]

६. रबर के अणु में लम्बी शृङ्खला होती है। [illegible] ा जाता है ५ हजार आइसोप्रीन मात्रकों से इसका अणु बना है जिसका अणुभार ३५०,००० होता है।

७. एक्स-किरण परीक्षण-फल से शृङ्खला की चौड़ाई और लम्बाई मालूम होती है।

८, रबर केलासीय रूप, तरल रूप या अतिशीतलीभवन दशा में रह सकता है।
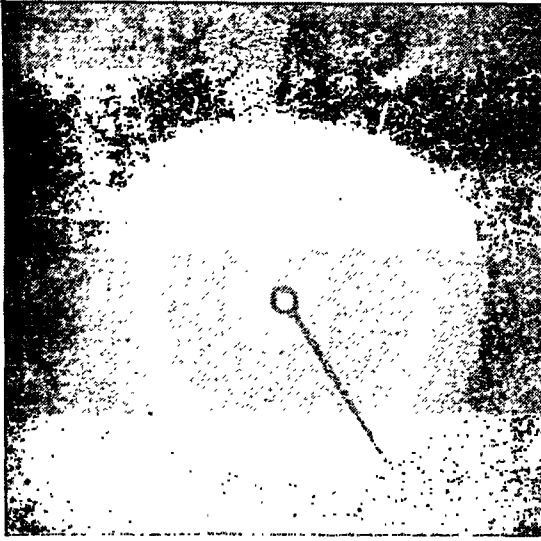
चित्र ६ (क)—विना खींचे रबर का एक्स-किरण चित्र

ग्यारहवाँ अध्याय

रबर का विधायन

१. कच्चे रबर में भौतिक या यांत्रिक बल नहीं होता।

२. कच्चा रबर चिकना या समांगी नहीं होता।

३. ऊष्मा के प्रभाव से कच्चा रबर अपना आकार शीघ्रता से बदला देता है।

४ प्रकाश में रखने से कच्चे रबर का ह्रास होता और वह चिपचिपा हो जाता है।

५. विलायकों से कच्चा रबर बड़ी शीघ्रता और सरलता से आक्रान्त होता है।

इस कारण अधिकांश कामों के लिए कच्चा रबर उपयुक्त नहीं है। कच्चा रबर केवल निम्नलिखित कामों में ही उपयुक्त हो सकता है।

(१) जूतों के तलवे बनाने में। क्रेप तलवे के जूते अच्छे होते हैं।

(२) रबर के विलयन बनाने में। यह विलयन रबर के चिपकाने के लिए उपयुक्त होता है।

(३) अल्प मात्रा में पेंसिल के दाग मिटाने के उद्घर्षक के लिए।

रबर के गुणों को उन्नत करने के लिए उसमें कुछ मिलाने की आवश्यकता होती है। ऐसे मिश्रित करने को रबर का संयोजन या मिश्रण कहते हैं। रबर के मिश्रण में कई क्रियाओं का सम्पादन करना पड़ता है। इन क्रियाओं के सम्पादन को रबर का 'विधायन' कहते हैं। रबर के विधायन में निम्नलिखित कार्य होते हैं।

(१) कच्चे रबर को तोड़ कर या चर्वित कर उन्हें सुनम्य बनाना पड़ता है। इस क्रिया को 'चर्बन' कहते हैं।

(२) कच्चे रबर में कुछ पदार्थों को मिलाना पड़ता है। इस क्रिया को "मिश्रण" कहते हैं।

(३) रबर को रम्भ में डालकर स्तर बनाना पड़ता है अथवा नाल यंत्र में डालकर छड़ या नली में बनाना पड़ता है।

(४) रबर को फिर टुकड़े टुकड़े काटकर वलकनीकरण के लिए बनाना पड़ता है।

(५) रबर का वलकनीकरण अथवा अभिसाधन करना होता है।

रवर की सवसे पहली मशीन हैंकौक द्वारा बनायी गयी थी। हैंकौक कोई ऐसी मशीन चाहते थे जो कच्चे रवर को काटकर टुकड़े टुकड़े कर दे। उन्होंने इसके लिए एक रम्भ बनाया और उसमें चाकुओं को रख दिया। चाकू एक कक्ष 'ख' में घूमते थे। इस यंत्र से रवर के टुकड़े टुकड़े होने के स्थान में रवर के टुकड़े जुटकर एक ठोस पिंड वन जाते थे और पीछे वे कोमल गुंधे आटे से हो जातेथे। इस मशीन से वे रवर के छीलन को एक पिंड में इकट्ठा करने में समर्थ हुए। उन्होंने यह भी देखा कि रवर जव कोमल हो गया तो उसमें अन्य पदार्थ भी मिलाए जा सकते थे। रवर के इस प्रकार कोमल करने की क्रिया को 'चर्वन' कहते हैं।
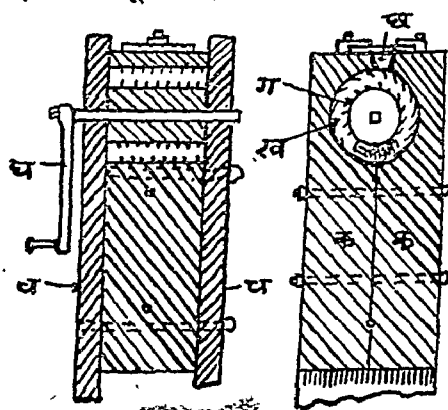
चित्र संख्या १०

इसके वाद मिश्रण पेषणी और रम्भ मशीनों का आविष्कार हुआ। इन दोनों मशीनों के बनानेवाले अमेरिकी चैफ़ी थे। इस मशीन में भाप से गरम किये हुए लोहे के दो वेलन होते हैं। ये एक दूसरे से सटे हुए रहते हैं और विभिन्न गति से घूमते हैं। वेलन प्रायः ६ फुट लंबे होते हैं और एक का व्यास २७ इंच और दूसरे का १८ इंच होता है। इसी मशीन के आदर्श पर आधुनिक मिश्रण पेषणी बनी हैं जो रवर के उद्योग में उपयुक्त होती हैं। रवर की पिसाई कैसे होती है इस सिद्धान्त का ज्ञान चित्र संख्या से होता है। इसमें दो वेलन दिये हुए हैं। एक अग्र वेलन और दूसरा पृष्ठ वेलन अग्र वेलन धीरे धीरे घूमता है और गरम रहता है। पृष्ठ वेलन तेज घुमता है और शीतल रहता है। ऊपर से रवर की पट्टी डाली जाती है और उससे वह पिसता है। इस मशीन से रवर फटकर कोमल हो जाता और एक वेलन पर चिकने स्तार वन जाता है। पीछे ऐसी मशीनें वनी जिनमें चार वेलन एक के ऊपर दूसरे रहते थे। शिखर और पेंदेवाले दो वेलनों का

चित्र संख्या ११

व्यास १८ इंच का था और बीच के दो दो वेलनों का व्यास १३ इञ्च का। यह मशीन कपड़े पर रवर का आवरण चढ़ाने के लिए वनी थी। मध्य वेलनों में कपड़ डाल दिया जाता था और वह पेंदे के वेलन तक आ जाता था। शिखर के वेलन में रवर डाला जाता था। नीचे के वेलनों पर आकर वह कपड़े पर जम जाता था। इस मशीन में आज वहुत सुधार हुआ है पर सिद्धान्त वही है जो चैफी की मशीन के थे। रवर के हर कारखाने में इस मशीन का आज उपयोग होता है।

चित्र १२ (क)—सामान्य प्ररम्भ मशीन

चित्र १२ (ख)—चार वेलनवाली प्ररम्भ मशीन

इस मशीन में डालने के लिए रवर के छोटे-छोटे टुकड़े चाहिए। रवर की गाँठें वड़ी-वड़ी २८० पाउण्ड तक की होती है। इन्हें काट कर छोटे-छोटे टुकड़ों में करने की आवश्यकता होती है। यह काम हाथों से भी हो सकता है पर इसके लिए गाँठ-कर्तक वने हैं जो गाँठों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट डालते हैं। गाँठकर्तक प्रेस सदृश होते हैं जिनका ऊपर का भाग घूमता है और जिसमें उपयुक्त चाकू लगे हुए होते हैं जो गाँठों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटते हैं।

मिश्रण-पेषणी का काम रवर को तोड़-मरोड़कर गुँधे आटे सदृश कोमल पिंड में परिणत करना है। कच्चा रवर चिमड़ा और लचीला पदार्थ है। विना इसके गुण में सुधार किए इसका उपयोग नहीं हो सकता। गुणों के सुधार के लिए अन्य पदार्थ विशेषतः गन्धक को डालकर उपचार की आवश्यकता होती है।

सबसे पहले रवर को ऐसे रूप में परिणत करना चाहिए कि उसमें अन्य पदार्थ सरलता से मिलाए जा सकें। इस काम को चर्वन कहते हैं। चर्वन से रवर का चिमड़ापन और प्रत्यास्थता दूर हो जाती है और वह सुनम्य दशा में आ जाता है।

आधुनिक मिश्रण-पेषणी में ढालवें इस्पात के दो क्षैतिज वेलन होते हैं जो मजवूत लोहे के भारी फ्रेम में मढ़े होते हैं। ये दोनों विभिन्न गति से एक दूसरे की ओर घूमते हैं जिससे इन दोनों के वीच रखे पदार्थ फटने लगते हैं। पीछेवाला वेलन अधिक तेज घूमता है। वेलन की घूमने का अनुपात १:५:१ या १ २:१ होता है। दोनों वेलनों के वीचमें खाली स्थान होता है। इस स्थान को छोटा या वड़ा जरूरत के मुताविक कर सकते हैं। साधारणतया १ इञ्च वेलन के

चित्र संख्या १२

लिए एक अश्वबल की आवश्यकता होती है। यदि बेलन ४० इञ्च है तो ४० अश्वबल का आवश्यकता होती है।
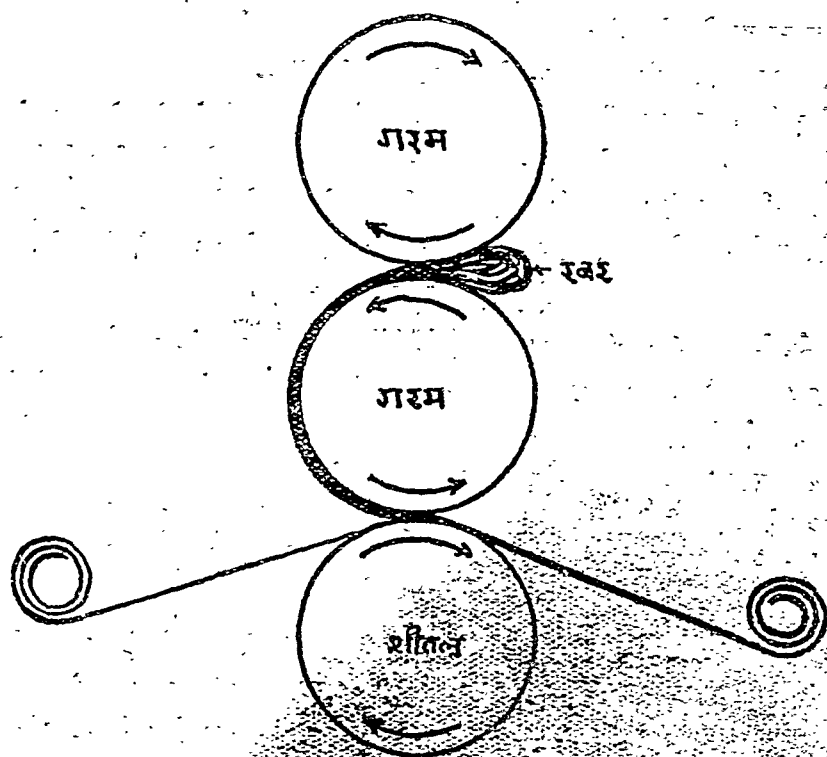
बेलन खोखले होते हैं और उनमें भाप या शीतलजल आवश्यकतानुसार प्रवाहित किया जा सकता है। बेलन की लम्बाई ८४ इञ्च तक और व्यास २६ इञ्च तक हो सकती है। उसकी मोटाई २ इञ्च तक हो सकती है। घूमते हुए बेलनों के बीच रबर डाला जाता है। ताप को तब ठीक कर दिया जाता है। बेलन में जाने पर घर्षण से रबर टूट या फट जाता है और बेलन पर चक्कर लगाते हुए बारबार आगे के बेलन से बीच के स्थान में आता रहता है।

तीन रम्भ वाले मशीन की क्रिया कैसी होती है इसका कुछ ज्ञान चित्र से प्राप्त होता है। बीच के बेलन पर रबर रहता है। एक ओर से सूत आता है और उस पर रबर चढ़ कर दूसरी ओर जाकर इकट्ठा होता है। रबर के संसर्गवाला बेलन गरम रहता है और दूसरी ओर का बेलन ठण्डा रहता है।

इस क्रिया में पर्याप्त ऊष्णता और विद्युत् पैदा होता है। इससे रबर कोमल होना शुरू होता है और आगे के बेलन में पट्ट बनता है। पट्ट की मोटाई बीच के स्थान के विस्तार पर निर्भर करती है।

इस क्रिया से रबर कोमल हो जाता है जिससे उसमें अन्य चीजें सरलता से मिलाई जा सकती हैं। कच्चे रबर का मिश्रण भी पूर्णतया हो जाता है। कच्चा रबर कभी भी एक-सा नहीं होता। आक्षीर इकट्ठा करने की विधि, स्कंधन के ढङ्ग, स्थान और पेड़ों की विभिन्नता, पेड़ों की उम्र इत्यादि से रबर के भौतिक गुणों में अन्तर अवश्य रहता है। इस कारण उसे मिश्रित कर एक सा बनाने की बड़ी आवश्यकता रहती है।

रबर का चर्वन अनेक बातों पर निर्भर करता है जिनमें—

[१] रबर का ताप [२] चर्वन का समय, [३] बेलनों के बीच के स्थान के विस्तार [४] बेलन-तलकी गर्मी, [५] बेलन की गति के बीच की निष्पत्ति [६] बेलनों का व्यास इत्यादि प्रमुख हैं। पेषण के समय रबर की वायु के बुलबुले निकलने से रबर टूटने लगता है और उसमें रबर से एक विशिष्ट गन्ध निकलती है जो रबर के कारखानों में पाई जाती है।

चर्वन में रबर का परिवर्तन

चर्वन से रबर की प्रकृति अवश्य कुछ बदल जाती है। यह कोमल और सुनम्य होने के साथ साथ उसकी कड़कड़ाहट और दृढ़ता सदा के लिए नष्ट हो जाती है। ठंढे में पर्याप्त काल तक चर्वन से तो रबर मर जाता है। उच्च ताप पर रबर के चर्वन से रबर कोमल हो जाता और उसकी प्रत्यास्थता और दृढ़ता नष्ट नहीं होती है।

रबर के चर्वन की डिगरी रबर की प्रत्यास्थता से जानी-जाती है। जितना ही अधिक चर्वन होता है उतना ही अधिक प्रत्यास्थता होती है। चर्वन से विलायकों में शीघ्रता से परिक्षेपण में सहायता भी मिलती है।

रबर की सुनम्यता के नापने के यन्त्र बने हैं जिन्हें प्लास्टोमीटर कहते हैं। प्लैटो-मीटर कई प्रकार के होते हैं। रबर ताप-सुनम्य होता है। इसका आशय यही है कि ताप के परिवर्तन से इसकी सुनम्यता बदलती है, ताप की वृद्धि से बढ़ती और कम होने से घट कर पूर्ववत् हो जाती है।
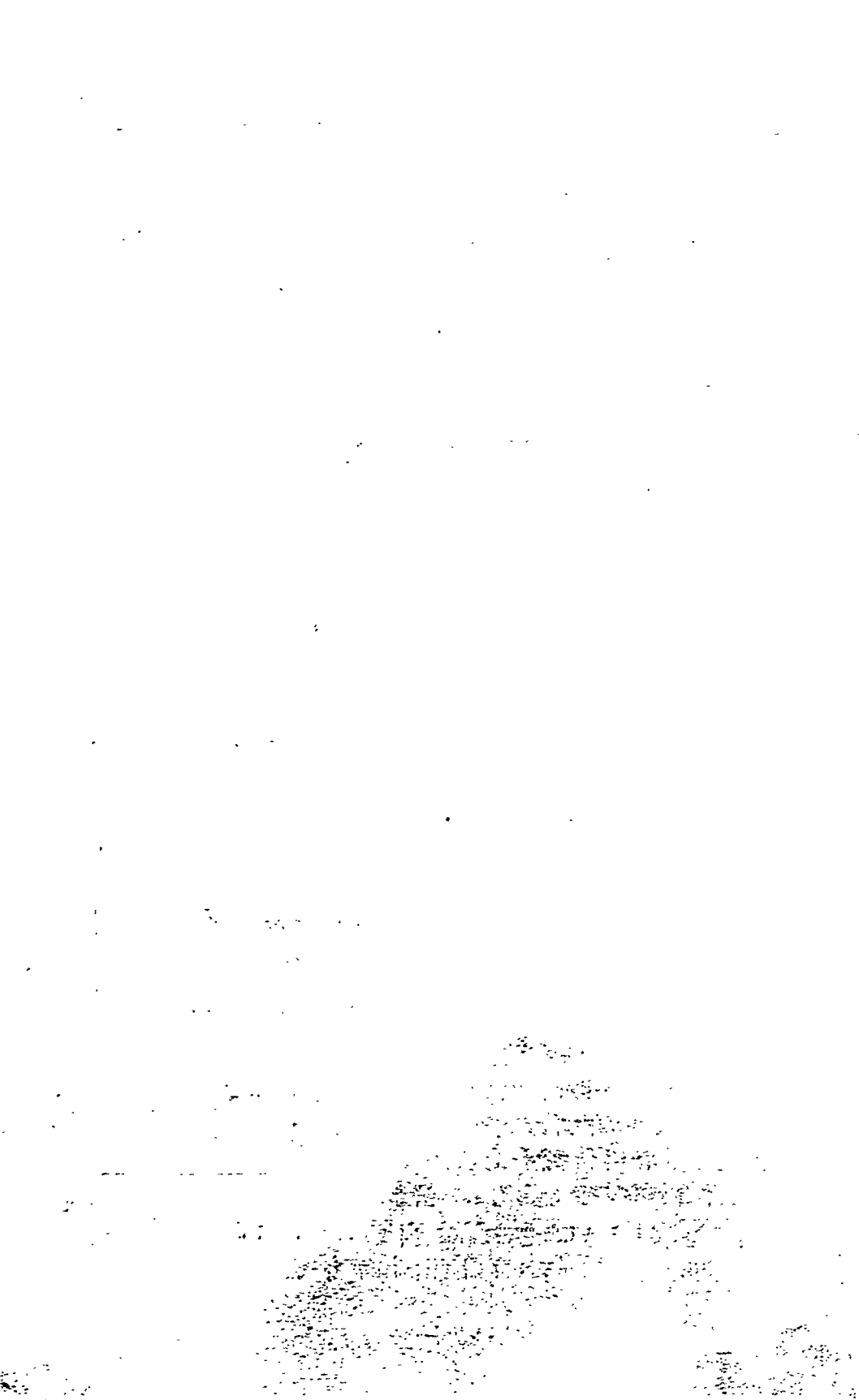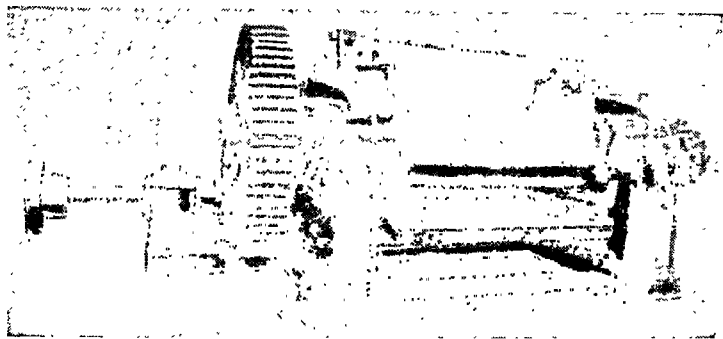
चित्र १३—पेषण चक्की

चित्र १३ (क)—पेषण चक्की में काम हो रहा है

चर्वन से पहले कुछ मिनटों में सुनम्यता बड़ी शीघ्रता से बढ़ती है। उसके बाद धीरे-धीरे कम होती जाती है। जब सुनम्यता एक विशिष्ट मान पर पहुँच जाती है तब तो सुनम्यता में बहुत ही न्यून, प्रायः नहीं के बराबर; परिवर्तन होते हैं। पेषण-समय और चर्वन से रबर की श्यानता बहुत कुछ घट जाती है।

मिश्रक या पेषण चक्की

कच्चे रबर को एक-से गुण का बनाने के लिए उसे मिश्रक में रखना पड़ता है। कई प्रकार के मिश्रक बने हैं। उन सब के सिद्धान्त प्रायः एक-से ही हैं। ब्रिज-बैन बेरी मिश्रक का चित्र (चित्र-सं० १३)यहाँ दिया हुआ है। इसमें वाहक और पेषणी भी लगी हुई होती है। इस मिश्रक में एक मिश्रण कक्ष होता है जो सन्निकट रखे हुए दो रम्भ-सा देख पड़ता है। इन दोनों के नीचे की संधि पर एक मेड़ होती है। दोनों रम्भों में चाकू या घूर्णक नासपाती के आकार के और सर्पिल होते हैं। वे एक दूसरे की ओर विभिन्न गति से घूमते है। कक्ष में या चाकू में भाप या ठंढा जल प्रवाहित करने का प्रबन्ध रहता है। मेड़ के ठीक ऊपर इस्पात का तापमापक भी होता है। जब कक्ष में रबर डाला जाता है तब रबर पूर्णतया मिल जाता है। यह काम घूर्णकों के बीच, घूर्णकों और मेड़ के बीच और कक्ष के तल पर होता है।

रबर को कक्ष में रखकर उस पर दबाव डालने और भार को नीचा कर देने से तीन मिनट तक चर्वन होता है। उसके बाद भार को उठा लेते और अन्य पदार्थों, त्वरकों, प्रति-आक्सी कारकों और कोमलकारकों को डालकर उसे परिक्षेपण कर लेते हैं। अब फिर भार को उठा कर आधा पूरक डालते हैं। फिर भार को नीचा करके और एक मिनट तक पुञ्ज पर 'बहने' देते हैं, फिर उसके बाद दबाव डालते हैं। जब रबर पूरक को ले लेता है तब फिर भार को उठाकर शेष पूरक डाल देते हैं। अब फिर भार को गिराकर उस पर 'बहने' देते और तब दबाव डालते हैं। इस काम में १५० पाउण्ड के थोक में प्रायः १० मिनट का समय लगता है। क्रिया के सम्पादित हो जाने पर मिश्रक के पेंदे से मिश्रित रबर को निकाल लेते हैं।

चर्वन

चर्वन से रबर कोमल, अधिक सुनम्य और चिपचिपा हो जाता है। चर्वित रबर कच्चे रबर से अधिक विलेय और कम श्यान होता है। इस क्रिया को इस कारण रबर का सुनम्यकरण भी कहते हैं। चर्वन से केवल यांत्रिक काम ही नहीं होता; वरन् ताप, आक्सिजन और प्रकाश का भी प्रभाव पड़ता है। १००° श० से निम्न ताप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इससे ऊँचे ताप पर [illegible] वायु में प्रभाव बहुत स्पष्ट होता है। गार्नर का मत है कि चर्वन के समय रबर के दाने टूट जाते और उससे विपुरुभाजित रबर हाइड्रोकार्बन बनते हैं। चर्वन से विपुरुभाजन का होना निश्चत है।

बारहवाँ अध्याय

रबर का मिश्रण

शुद्ध रबर के उपयोग सीमित हैं। रबर को अधिक उपयोगी बनाने के लिए रबर के साथ कुछ और पदार्थ मिलाये जाते हैं। इनके मिलाने के साधारणतया तीन उद्देश्य होते हैं। इनके मिलाने से रबर के गुण उन्नत हो जाते हैं। रबर के विधायन में इनसे सुविधा होती है और रबर कुछ सस्ता हो जाता है। चूना, मुर्दासंख, मैगनीशिया और जिंक ऑक्साइड की उपस्थिति से वल्कनीकरण में सुविधा होती है। इससे केवल वल्कनीकरण का समय ही कम नहीं हो जाता; बल्कि रबर के गुणों में भी बहुत-कुछ सुधार हो जाता है। वल्कनीकरण के समय में कमी न होने पर और भौतिक गुणों में परिवर्त्तन न होने पर भी रबर में कुछ ऐसे गुण आ जाते हैं जिससे रबर के बने सामान उच्च कोटि के होते हैं।

रबर में जो पदार्थ डाले जाते हैं, वे निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं।

१. कुछ पदार्थ तो ऐसे होते हैं जिनसे रबर के चर्वन में सहायता मिलती है। ऐसे पदार्थों की मात्रा साधारणतया बड़ी अल्प होती है और इनसे रबर शीघ्र कोमल या सुनम्य हो जाता है। ऐसे पदार्थों को कोमलकारक या सुनम्यकारक कहते हैं।

२. कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जिनसे रबर के गुणों में बहुत परिवर्तन हो जाता है। ऐसे पदार्थों को पूरक कहते हैं।

३. कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जिनसे रबर में रंग आ जाता है। रबर में रंग या वर्णक की कभी-कभी बड़ी आवश्यकता होती है।

४. कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो वल्कनीकरण क्रिया के वेग को बढ़ाकर वल्कनीकरण को शीघ्रता से सम्पादन करते हैं। ऐसे पदार्थों को त्वरक कहते हैं।

५. रबर वायु और प्रकाश के प्रभाव से जल्दी खराब हो निकम्मा हो जाता है। दूसरे शब्दों में यह शीघ्रता से जीर्ण हो जाता है। इसकी जीर्णता को रोकने के लिए कुछ पदार्थ डाले जाते हैं जिन्हें प्रति-ऑक्सीकारक कहते हैं।

६. कुछ ऐसे पदार्थों को भी डालने की आवश्यकता होती है जो त्वरण को कम करें अथवा रबर के ऑक्सीकरण को बढ़ावें।

कोमल-कारक दो प्रकार के होते हैं। एक वास्तविक कोमल-कारक जो रबर में घुल जाते हैं और दूसरे अर्ध-कोमलकारक जो रबर के साथ मिलकर उपस्नेहन का काम करते हैं। प्रथम कोटि के पदार्थों में खनिज रबर, बिटुमिन और पाइन कोलतार हैं। दूसरी कोटि के पदार्थों में मोम, स्टियरिक अम्ल और खनिज पैराफिन हैं।

बिटुमिन—रबर के लिए बिटुमिन कोमल-कारक और पूरक दोनों काम करता है। बिटुमिन के स्थान में गिलसोनाइट, एस्फ़ाल्ट या पेट्रोलियम अवशेष भी उपयुक्त हो सकते हैं। रबर में ७ प्रतिशत बिटुमिन मिलाने से उसके गुण बड़े अच्छे हो जाते हैं। २० प्रतिशत तक डालने से रबर के भौतिक गुणों में कोई ह्रास नहीं होता। ऐसा कहा जाता है कि रबर में गिलसोनाइट डालने से रबर के भौतिक गुणों में सुधार ही नहीं होता, वरन् उसमें प्रति-आक्सी-कारक गुण भी आ जाता है। मूल्य और विशिष्ट घनत्व कम होने से इसकी सर्वप्रियता आज बढ़ गई है। इसमें विद्युत्-अवरोधक गुण होने के कारण और भी अधिक उपयुक्त समझा जाता है।

चिपचिपाहट—रबर में चिपचिपाहट होती है जिससे इसके दो टुकड़े सरलता से चिपकाए जा सकते हैं। जहाँ हमें स्तारों को चिपकाना होता है, वहाँ चिपचिपाहट सुविधाजनक होती है। रबर में रोज़िन, पाइन कोलतार, क्यूमेरोन और रेज़िन से चिपचिपाहट बढ़ जाती है। पूरकों का चिपचिपाहट पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। पूरकों से चिपचिपाहट कम हो जाती है।

स्टियरिक अम्ल—स्टियरिक अम्ल कोमलकारक होता है और अनेक पदार्थों के परिक्षेपण में सहायक होता है। कार्बनिक त्वरक पदार्थों के सक्रिय बनाने में भी सहायक होता है। १ से ५ प्रतिशत तक उपयुक्त होता है। ओलियिक अम्ल भी यह काम करता है, पर इसमें रबर के तल पर आ जाने का दोष है जिससे रबर का तल अच्छा नहीं देख पड़ता।

क्युमेरोन रेज़िन—रबर के कोमल और सुनम्य बनाने में क्युमेरोन रेज़िन बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनसे रबर की चिपचिपाहट बढ़ जाती, चमक आ जाती है और यह पूरक का भी काम करता है। खनिज पूरकों के परिक्षेपण में यह सहायक होता है। २ प्रतिशत क्युमेरोन रेज़िन से पूरक का परिक्षेपण बहुत अच्छा होता है। कोमल रेज़िन से सुनम्यता और चिप-चिपाहट बढ़ जाती है। कठोर रेज़िन श्रेष्ठ पूरक होता है। उदासीन प्रकृति का होने के कारण वल्कनीकरण में इससे कोई बाधा नहीं पहुँचती। निष्क्रिय और रासायनिक प्रतिक्रियाओं के प्रति अवरोधक होने से अभिसाधन में और त्वरण में कोई रुकावट नहीं होती। रबर के जीर्णन में भी इससे कोई सहायता नहीं मिलती। अन्य कुछ कोमलकारक जैसे रोज़िन जीर्णन में सहायक होते हैं। क्युमेरोन रेज़िन टायर बनाने, जूतों के तलवे और एँड़ी बनाने, पानी के नल बनाने, स्पंज-रबर बनाने, रबर के गच बनाने, ढाले हुए सामानों के बनाने एवं रबर के सामानों पर चमक लाने में उपयुक्त होता है। इससे वल्कनीकरण के समय रबर में रंग भी नहीं आता। इस कारण इससे सफेद सामान बन सकते है। कोमल कुमेरिन रेज़िन से चिपचिपाहट बढ़ जाती है जिससे रबरवाले बरसाती कपड़े बनाने, स्तारों के बनाने, चिपकनेवाले फीतों के बनाने, सरजरी में उपयुक्त होनेवाले प्लैस्टरों के बनाने इत्यादि में ऐसा रबर काम आता है।

पूरक—पूरक से रबर के भौतिक गुणों में बहुत अन्तर आ जाता है। साधारणतया

रबर के निम्न भौतिक गुण पूरकों से प्रभावित हो सकते हैं। वितान-क्षमता, मापांक, कठोरता, दैर्घ्य, विशिष्ट घनत्व, फटने या दारण के प्रति अवरोध, जमना, ज्वलनशीलता, तापीय चालकता, विद्युत् गुण, जल के प्रति, विलायक के प्रति और रासायनिक द्रव्यों के प्रति प्रतिरोधकता, जीर्णन, गंध, स्वाद इत्यादि।

पूरकों को दो श्रेणियों में बाँटा गया है। एक श्रेणी के पूरक रबर की वितान-क्षमता और फटने और अधिघर्षण के प्रति रोधकता को बढ़ा देते हैं। ऐसे पूरकों को बलवर्धक पूरक कहते हैं। ऐसे पूरकों में कार्बन काल, जिंक ऑक्साइड, मैगनीशियम कार्बोनेट और चीनी मिट्टी हैं।

दूसरी श्रेणी के पूरक ऐसे हैं जो उपर्युक्त गुण तो नहीं प्रदान करते; पर अन्य प्रकार से उपयोगी होते हैं। रबर के विधान में उनसे सहायता मिलती है। वे रबर की दृढ़ता, कठोरता, रासायनिक प्रतिरोधकता और सस्तापन को बढ़ा देते हैं। ऐसे पदार्थों में कैलसियम कार्बोनेट, बेरियम सलफेट, टालक, लिथोपोन, कीसलगुहर इत्यादि हैं।

यह आवश्यक है कि पूरक बहुत महीन हों और उनके सब कण एक से हों। उनमें ताँबा, मैंगनीज़ और जल का अंश नहीं होना चाहिए। जल का न रहना सबसे अधिक आवश्यक है; क्योंकि जल के रहने से उनपर दाने-दाने उठ आते हैं। साधारणतया पूरकों को पीसकर छान, मिला और सुखा लेना चाहिए। कुछ ऐसी मशीनें बनी हैं जिनमें ये सब काम एक-साथ होते हैं। पूरकों का विशिष्ट घनत्व महत्व का है। भारी पूरक अच्छे नहीं होते। हलके पूरक अच्छे होते हैं। भारी पूरकों में सिन्दूर, विशिष्ट घनत्व, (८·१) जिंक ऑक्साइड (५·६) और मुर्दासंख (६·३) है। हलके पूरकों में कार्बनकाल, (१·७५), मैगनीशियम कार्बोनेट (२·२) और कीसलगुहर (२·२) हैं।

पूरकों की ताप-चालकता महत्त्व की है। उनका ज्ञान आवश्यक है।

पदार्थ	चालकता
जिंक आक्साइड	०·००१६७
आयर्न आक्साइड	०·००१३२
लिथोपोन	०·०००६२
बेरियम सलफेट	०·०००७८
खड़िया या कैलसियम कार्बोनेट	०·०००८४
टालक	०·०००६०
मैगनीशियम कार्बोनेट	०·०००५७
कार्बन काल	०·०००६८
कजली	०·००१४०
ऐन्चीसन ग्रेफाइट	०·००२१७

खड़िया—खड़िया का उपयोग रबर के पूरक के रूप में बहुत प्रचुरता से होता है यह कैलसियम कार्बोनेट है और चूना-पत्थर को पीसकर सस्ता प्राप्त किया जा सकता है। चूने पर सोडियम कार्बोनेट की प्रतिक्रिया से भी कास्टिक सोडा के निर्माण में उपफल के रूप में प्राप्त होता है। यह हलका होता है। इसका विशिष्ट घनत्व २·७ है। यह बहुत सस्ता होता है। इससे

इसका उपयोग वहुत अधिकता से होता है, पर इसमें कुछ दोष भी हैं। इसके करण विभिन्न विस्तार के होते हैं और मिलाने से अच्छे मिलते नहीं। इससे रवर के भौतिक गुणों में भी कुछ दोष आ जाते हैं। ऐसे पदार्थों के निर्माण में जो अम्लों के संसर्ग में आते हैं यह उपयुक्त नहीं हो सकता; क्योंकि यह अम्लों से विच्छेदित हो जाता है।

निष्क्रिय पूरकों के गुणों की उन्नति के लिए चेष्टाएँ हुई हैं। कैलसियम कार्वोनेट को वसा-अम्लों या रोज़िन के संसर्ग से ऐसा किया जा सकता है। कैलसियम कार्वोनेट और स्टियरिक अम्ल की प्रतिक्रिया से कैलसियम कार्वोनेट पर कैलसियम साबुन का आवरण चढ़ जाता है। इससे पूरक के मिलने के गुण में भी सुधार हो जाता, वितान-क्षमता का गुण वढ़ जाता है और अन्य भौतिक गुण भी सुधर जाते हैं। ऐसे पदार्थों में कैलसीन, केलाइट और विनोफिल हैं। विनोफिल का विशिष्ट घनत्त्व २.६५ है। इसमें ३ प्रतिशत स्टियरिक अम्ल रहता है।

वेरियम सलफेट—वेराइटीज़ खानों से निकलता है। इसे पीसकर पूरक के रूप में उपयुक्त करते हैं। इसका विशिष्ट घनत्व प्रायः ४.५ होता है। वेरियम लवणों पर गन्धकाम्ल से जो वेरियम सलफेट वनता है, वह उत्कृष्ट कोटि का और पूर्णतया सफेद होता है। यह विलकुल निष्क्रिय होता और अम्लों की इसपर कोई क्रिया नहीं होती। इस कारण अम्लों के संसर्ग में आनेवाले सामानों के निर्माण में इसका उपयोग वहुत अधिकता से होता है। इससे रवर की प्रत्यास्थता में भी विशेष कमी नहीं होती।

कीसलगुहर—कीसलगुहर हलका सफेद पूरक है। इसका विशिष्ट घनत्त्व १.६ से २.० है। इसमें वहुत महीन दशा में सिलिका रहता है। इसकी सर्वप्रियता आज वढ़ रही है। इसकी ताप-चालकता वहुत अल्प है और ताप, भाप और रसायनों की इसपर कोई क्रिया नहीं होती। तालक या फ्रांसीसी खड़िया एक दूसरा पूरक है जिसके वहुत महीन कणों के कारण उपयोगिता वहुत वढ़ गई है। छूने से यह तेल-सा चिकना मालूम होता है। वास्तव में यह जलीयित मैगनीशिय सिलिकेट है।

लिथोपोन—यह एक सफ़ेद वर्णक है। इसका विशिष्ट घनत्व ४.२ है, इसके कण भी वहुत महीन होते हैं। वेरियम सलफ़ाइड पर जिंक सलफ़ेट की क्रिया से यह प्राप्त होता है। वेरियम सलफेट और जिंक सलफ़ाइड का यह एक पेचीला मिश्रण है।

ऐस्वेस्टस—ब्रेक और पैकिंग के लिए ऐस्वेस्टस रवर अधिक उपयुक्त होता है।

ग्रेफ़ाइट—आत्म-उपस्नेहित भारु इत्यादि में यह उपयुक्त होता है।

मैगनीशियम कार्वोनेट—मैगनीशियम कार्वोनेट दो रूपों, भारी और हलका में, प्राप्त होता है। हलके मैगनीशियम कार्वोनेट में कार्वोनेट के साथ कुछ जलीयित मैगनीशिया भी रहता है। इसका विशिष्ट घनत्व प्राय २.२ होता है जवकि शुद्ध मैगनीशियम कार्वोनेट का विशिष्ट घनत्व ३.१ होता है। यह मैगनीसाइट के पीसने से प्राप्त होता है।

मैगनीशियम कार्वोनेट का उपयोग भी वहुत विस्तृत है। इससे रवर का वल वढ़ ही नहीं जाता; वल्कि वह दृढ़ भी होता है। १० प्रतिशत तक यह अन्य पूरकों से श्रेष्ठ है। पर इससे अधिक होने से स्थायी जमने में कठिनता होती है। रवर पर इसका मारक प्रभाव पड़ता है।

इस कारण जूते के तलवे और गच बनाने में यह अधिक उपयोगी है, पारदर्श रबर बनाने में भी इसका उपयोग होता है। इसका वर्तनांक १·५३ रबर के वर्तनांक के बहुत सन्निकट है।

चीनी मिट्टी—रबर के लिए चीनी मिट्टी बड़ी सस्ती चीज़ है। इसकी बलवर्धक और कठोरीकारक क्रिया भी अच्छी होती है। कठोर मिट्टी की क्रिया अधिक कठोरीकारक होती है और मृदु मिट्टी की कम। भिन्न-भिन्न स्थलों की मिट्टी एक-सी नहीं होती। रसायनतः मिट्टी जलीयित एल्यूमिनियम सिलिकेट है। रसायन द्रव्यों के प्रति मिट्टी बड़ी स्थयी होती है। इस कारण इसका उपयोग अधिकता से होता है। रबर के फटने की प्रतिरोधकता इससे कम हो जाती है।

जिंक ऑक्साइड—जिंक ऑक्साइड एक महत्त्वपूर्ण पूरक है। इससे सफ़ेद रबर प्राप्त होता है। जिंक ऑक्साइड से वल्कनीकरण बिना किसी कष्ट के होता है। इससे रबर का बल भी बढ़ जाता है। पर इसका विशिष्ट घनत्व अधिक ५·६ होने से यह महँगा पड़ता है। पर वल्कनीकरण में यह बड़े महत्त्व का उत्तेजक सिद्ध हुआ है। इससे प्रायः प्रत्येक रबर या आक्षीर मिश्रित करने में इसका उपयोग होता है। इसके कण बहुत छोटे छोटे १५ म्यू क होते हैं। जिंक ऑक्साइड स्वयं रबर में अविलेय होता है। इस कारण उत्तेजक के लिए उपयुक्त नहीं है; पर स्टियरिक अम्ल की उपस्थिति से रबर-विलेय जिंक स्टियरेट बनने के कारण इसकी क्रिया संतोषप्रद होती है।

ग्लू— दृढ़ता और मज़बूती के विचार से जूतों के तलवे, एड़ी और पेट्रोल-नली बनाने में सरेस (ग्लू) का उपयोग होता है।

कार्बनकाल—कार्बनकाल कई प्रकार के होते हैं। इनमें गैस काल, ऐसिटिलिन काल कजली, तापीय काल, महीन तापीय भट्ठा काल, भट्ठा काल प्रमुख हैं।

गैसकाल पेट्रोलियम कूपों से निकली प्राकृतिक गैस के अपूर्ण ज्वलन से बनता है। ऐसी जलती गैस की ज्वाला को धातु के तल पर फेंकने से काल का निःक्षेप प्राप्त होता है। यह काल सब कालों से महीन होता है। इसके कण इतने छोटे होते हैं कि उनका सन्तोषजनक निर्धारण सम्भव नहीं है। सबसे महीन काल का विस्तार १३ एमक्यू (१ एमक्यू=१ ००० ००० वाँ मिलीमीटर) है। यह काल सबसे अधिक मात्रा में रबर के गुणों क सुधारने में उपयुक्त होता है। इसी की छापने की स्याही और काले पेन्ट बनते हैं। बहुत महीन होने के कारण इसके तल का क्षेत्रफल बहुत अधिक होता है। एक पाउण्ड में ११½ एकड़ क्षेत्रफल रहता है। कुछ नमूनों में तलक्षेत्रफल १०½ से १०¾ एकड़ और एक नमूने में १०·३ एकड़ के भी होते हैं। १९४५ ई० में अमेरिका में ६६ करोड़ पाउण्ड यह काल बना था।

ऐसीटिलोन काल—शुद्ध ऐसीटिलीन के बन्द कक्ष में जलाने से यह काल बनता है। यह भी महीन होता है।

कजली—तेल, घी, चर्बी, कोलतार इत्यादि के अपूर्ण दहन से कजली बनती है। इसके कण०·३ म्यू और ०·४ म्यू के बीच के होते हैं। कभी-कभी १ म्यू तक के रहते हैं।

तापीय काल—प्राकृतिक गैस की वायु की अनुपस्थिति में तापीय विच्छेदन या भंजन से यह काल प्राप्त होता है। इसके कण २७४ म्यू विस्तार के होते हैं।

महीन तापीय भट्ठीकाल—गैसों को भट्ठी में तपाने से यह काल प्राप्त होता है। इससे प्रस्तुत रबर के मापांक कम होते हैं।

भट्ठी काल—सीमित वायु में गैस के जलाने से यह काल प्राप्त होता है।

कार्बन काल को रबर में मिलाना सरल नहीं है; क्योंकि महीन होने के कारण काल जल्दी मिलता नहीं है। वह पिंड बन जाता है जिसका तोड़ना कुछ कष्ट से होता है। अच्छा तो यह होता कि ऐसा थोक बनाना जिसमें काल की मात्रा बहुत अधिक है और उनमें फिर आवश्यक मात्रा में रबर डालना। कार्बन मिलाने के लिए अभ्यन्तर मिश्रक अच्छे होते हैं। कार्बन काल में कुछ रिटयरिक अम्ल मिलाना आच्छा होता है। रबर में काल डालने से कुछ सीमा तक उसके गुण सुधरते हैं। साधारणतया यह २० प्रतिशत तक काल के होने तक होता है। उसके बाद उसके कुछ आवश्यक गुण घटने लगते हैं। भार से प्रायः २० प्रतिशत तक काल डालने से वितान-क्षमता और शक्ति-अवशोषण बढ़ते हैं। पर १० प्रतिशत के बाद रबर के वैद्युत् गुण बड़ी शीघ्रता से घटते हैं; पर ऐसे रबर में चीमड़ापन बढ़ जाता है। भार से ५१ प्रतिशत कार्बन काल से वितान-क्षमता महत्तम, अधिघर्षण और फटने की प्रतिरोधकता महत्तम, शक्ति अवशोषण सब से अधिक होता है। इससे अधिक कार्बन काल से वितान-क्षमता, मापांक औ कठोरता और भी बढ़ती है; पर प्रत्यास्थता और लचक कम हो जाती है।

वल्कनीकृत रबर में कार्बन काल से मजबूती आश्चर्यजनक ढंग से बढ़ जाती है; पर कुछ रबर में कठोरता सदृश गुण उपादेय नहीं होते। ऐसी दशा में तापीय-काल अच्छा होता है और इसके मिलाने में भी ऐसी कठिनता नहीं होती। ऐसा काल रबर की तिगुनी मात्रा तक मिलाया जा सकता है।

रबर और कार्बन काल दोनों विद्युत् के अचालक होने से कुछ कामों के लिए ऐसा रबर उत्तम कोटि का होता है। जूते के तलवे, कुछ कारखानों की गच्च और बस एवं कार के टायर ऐसे रबर के अच्छे होते हैं।

खनिज रंग—रबर में रंग डालने के लिऐ रँग में रंगने की शक्ति, आच्छादन शक्ति, प्रकाश में स्थिरता, शुष्क ताप के प्रति प्रतिरोधकता, खुला वाष्प वल्कनीकरण और कम मूल्य आवश्यक है। अनेक खनिज वर्णक रबर के रँगने में उपयुक्त होते हैं। उनमें निम्नलिखित महत्त्व के हैं—

सफ़ेद—सफ़ेद रंग के लिए लिथोपोन, जिंक ऑक्साइड, और टाइटेनियम ऑक्साइड प्रमुख पूरक हैं और ये सब सफेद रंग देते हैं। इनमें टाइटेनियम ऑक्साइड सब से श्रेष्ठ है और अन्य सफ़ेद वर्णकों से पाँच गुना अधिक सफेदी देता है। यह बहुत महीन भी होता है और इसमें आच्छादन शक्ति बहुत अधिक है। टाइटेनियम ऑक्साइड और बेरियम सलफ़ाइड का मिश्रण जो 'टाइटेनियम सफ़ेदा' के नाम से ज्ञात है, बहुत अच्छा सफेद रंग देता है। इनके अतिरिक्त खड़िया, बेराइटीज़, बेरियम सल्फ़ेट, और मैगनीशियम कार्बोनेट सफ़ेद होने पर भी इनमें सफ़ेद रंग देने की क्षमता प्रायः नहीं के बराबर है।

लाल—लाल रंग सिन्दूर, गेरू और एन्टीमनी सलफ़ाइड से प्राप्त होता है। सिन्दूर

सिंगरफ के नाम से खानों से निकलता है; पर अधिकांश पारा के गन्धक के साथ आसवन से प्राप्त होता है। यह बहुत भारी होता है। इसका विशिष्ट घनत्व ८·१ है। यह वस्तुतः मरक्यूरिक सलफ़ाइड है। यह कीमती होता है। इससे रबर में विशेष सुन्दर लाल रंग प्राप्त होता है। अविषाक्त होने के कारण दाँतों के कठोरप्लेट में इसी का रंग रहता है। इसकी माँग बहुत अधिक है।

गेरू—गेरू खानों से निकलता और लोहे के सलफ़ेट के तपाने से भी प्राप्त होता है। कृत्रिम गेरू की आभाएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। यह रबर को कुछ मज़बूत भी करता है। मैरून रंग के लिए यह बहुत उपयुक्त है।

एण्टीमनी सलफाइड—यह विभिन्न आभाओं का होता है। यह ट्राइ-और पेन्टा-सलफ़ाइड का मिश्रण होता है। इससे पीला से नारंगी और लाल रंग तक प्राप्त हो सकता है। यह अविषाक्त होता है। इस कारण लेमोनेड, सोडा इत्यादि बोतलों के वलय और अन्य ऐसे सामानों के बनाने में, जो खाद्य-पदार्थों के संसर्ग में आते हैं, यह उपयुक्त होता है।

पीला—पीले रंग के लिए कैडमियम पीत (कैडमियम सलफ़ाइड) सर्वोत्कृष्ट है। यह कीमती होता है। इसमें लेड क्रोमेट डालकर मिलावट करते है। लेड क्रोमेट से रबर का रंग धुँधला हो जाता है।

इन रंगों के अतिरिक्त हरे रंग के लिए क्रोमियम ऑक्साइड, नीले रंग के लिए अल्ट्रा-मेरिन और प्रशियनब्लू उपयुक्त होते हैं। पर ये रंग वल्कनीकरण के समय फीके हो जाते हैं और इनकी आभा नष्ट हो जाती है।

कार्बनिक रंग—खनिज लवणों के स्थान में आज कार्बनिक रंगों के उपयोग अधिकाधिक हो रहे हैं। कार्बनिक रंगों की मात्रा कम लगती है। उससे अच्छी आभा प्राप्त होती है और अनेक दशाओं में रबर पर उनकी परिरक्षण क्रियाएँ भी होती हैं।

कार्बनिक रंग रबर में अविलेय होना चाहिए और अम्लों, क्षारों और जल के प्रति निष्क्रिय होना चाहिए। यह जल से जल-विच्छेदित भी नहीं होना चाहिए। ये चार वर्ग के होते हैं।

(१) शुद्ध वर्णक। ये ऐज़ो-वर्ग के रंग हैं और पीले, नारंगी और लाल होते हैं। ये पर्याप्त स्थायी और पक्के होते हैं।

(२) ऐज़ो-रंगों के सोडियम लवण। ये जल में कुछ विलेय होते हैं।

(३) ऐज़ो-रंगों के बेरियम और कैलसियम लवण। ये रबर और जल में भी अविलेय होते हैं।

(४) जल-विलेय रंगों से अ-कार्बनिक पदार्थों पर निक्षिप्त रंग। इन रंगों की संख्या सबसे अधिक है।

रबर के सामानों में जो स्थान पूरक घेरते हैं, वह अधिक महत्त्व का है। इस कारण पूरकों का आयतन अधिक महत्त्व का होता है। इस कारण हलके पूरक भारी पूरक से अधिक सस्ते पड़ते हैं।

तेरहवाँ अध्याय

वल्कनीकरण

कच्चे रबर के उपयोग बहुत सीमित हैं। यद्यपि कच्चा रबर प्रत्यास्थ होता है और खींचने से बहुत फैल जाता है; पर खिंचाव के हटा लेने से पूर्व आकार में नहीं आ जाता। कच्चे रबर का आकार बड़ी शीघ्रता से नष्ट हो जाता है। कच्चे रबर में भौतिक या यांत्रिक मजबूती नहीं होती। यह सरलता से फट या टूट जाता है। अनेक विलायकोंसे यह आक्रान्त होकर फूल जाता है। निम्न ताप पर भी यह सरलता से कोमल हो जाता है। प्रकाश और वायुमण्डल से तो यह शीघ्रता से आक्सीकृत और विच्छेदित हो चिपचिपा हो जाता है। रबर के ये सब दुर्गुण वल्कनीकरण से दूर हो जाते हैं। वल्कनीकरण में रबर को गन्धक के साथ मिलाते हैं। वल्कनीकरण को अभिसाधन भी कहते हैं।

कच्चे रबर को गन्धक के संसर्ग में लाकर गरम करने से वल्कनीकरण होता है। साधारणतया १०० भाग रबर को ५ से ८ भाग गन्धक के साथ मिलाकर प्रायः १४०° श० पर ३ से ४ घण्टे तक गरम करने से वलकनीकरण होता है। आजकल कुछ ऐसे कार्बनिक पदार्थ भी डाले जाते हैं जो वलकनीकरण के समय को बहुत कम करके रबर में ऐसे बहुमूल्य गुण लाते हैं जो दूसरी रीति से नहीं प्राप्त हो सकते। ऐसे उपयुक्त होनेवाले कार्बनिक पदार्थों को त्वरक कहते हैं। त्वरकों की मात्रा अपेक्षतया बड़ी अल्प होती है। त्वरकों की सहायता से वलकनीकरण कुछ मिनटों में ही सम्पादित नहीं हो जाता; वरन कमरे के ताप पर भी सम्पादित हो जाता है। त्वरकों के साथ गन्धक की मात्रा भी कम लगती है।

यदि रबर में गन्धक का अनुपात १४–१८ भाग हो तो ऐसे वलकनीकृत रबर की वितान-क्षमता कम होती है और उसका व्यापारिक महत्त्व घट जाता है; पर गन्धक का अनुपात ३० से ५० भाग होने से ऐसा रबर कठोर हो जाता है और उसका दैर्घ्य बहुत अल्प हो जाता है तथा उसकी वितान-क्षमता बहुत बढ़ जाती है। ऐसे उत्पाद को कठोर रबर या काँचकड़ा या एबोनाइट कहते हैं।

रबर में गन्धक किस रूप में रहता है, इसका बहुत कुछ अन्वेषण हुआ है। वलकनीकरण के बाद केवल भौतिक गुणों में ही नहीं, वल्कि रासायनिक गुणों में भी परिवर्तन हो जाता है। गन्धक का कुछ अंश तो रबर के साथ संयुक्त रहता है। ऐसे गन्धक को संयुक्त रबर अथवा

बन्धित रबर कहते हैं। कठोर रासायनिक उपचार से भी यह गन्धक रबर से पृथक् नहीं किया जा सकता। १०० भाग शुद्ध रबर में जितना संयुक्त गन्धक रहता है, उसे वलकनीकरण गुणक कहते हैं। वलकनीकृत रबर से गन्धक का कुछ अंश सरलता से अलग किया जा सकता है। जो गन्धक सरलता से अलग हो जाता है; उसे मुक्त गन्धक कहते हैं।

०'१५ प्रतिशत गन्धक भी यदि रबर से संयुक्त हो तो ऐसे रबर में प्रारम्भिक वलकनीकरण होता है। अधिक-से-अधिक ३२ प्रतिशत गन्धक रबर के साथ संयुक्त हो सकता है। यह अनुपात काँचकड़ा में होता है। संयुक्त रबर वलकनीकृत रबर से निकाला नहीं जा सकता। ऐसा समझा जाता है कि रबर के द्विबन्ध के साथ गन्धक संयुक्त रहता है; क्योंकि वलकनीकरण से असंतृप्ति घट जाती है।

वलकनीकृत रबर के गुण बहुत कुछ वलकनीकरण ढंग पर निर्भर करते हैं। इनमें वलकनीकरण का समय और ताप सबसे अधिक महत्त्व का है। गंधक की मात्रा पर उसके गुण उतने निर्भर नहीं करते हैं। त्वरक पदार्थों के कारण वलकनीकरण बहुत अल्प समय में निम्नताप पर ही सम्पादित होता है और इसमें गन्धक कम संयुक्त रहता है। पर ऐसे रबर के गुण उत्कृष्ट कोटि के होते हैं।

वलकनीकरण में रासायनिक और भौतिक दोनों प्रकार के परिवर्तन होते हैं। सबसे अधिक महत्त्व का परिवर्तन इसके प्रत्यास्थता-गुण में होता है। यदि ठीक प्रकार से रबर का वलकनीकरण हुआ है तो ऐसा रबर कच्चे रबर-सा प्रत्यास्थ होता है और कच्चे रबर के विपरीत ऐसे रबर को खींचकर छोड़ देने से पूर्व आकार में आ जाता है। ०° श० पर भी इसका प्रत्याकर्षण ज्यों का त्यों रहता है। निम्न ताप पर जब कच्चे रबर को खींचकर हिमीकरण कर देने पर, बल के हटाने पर भी वह खिंचा हुआ ही रहता है। वलकनीकृत रबर में बहुत निम्न ताप-४०° श० पर ऐसा होता है। कच्चे और वलकनीकृत दोनों प्रकार के रबरों में यह गुण होता है; पर वलकनीकृत रबर में बहुत ही निम्न ताप पर होता है।

रबर को खींचकर निम्न ताप पर हिमीकरण से वह दैर्घित रहता है और जब तक गरम नहीं किया जाय तब तक पूर्ववत् नहीं होता। त-५० वह ताप है जिस ताप पर दैर्घित और हिमीकृत रबर खिंचाव को केवल ५० प्रतिशत प्रत्याकर्षण करता है। यह त-५० कच्चे रबर में १८° होता है और अच्छे वलकनीकृत रबर में, जिसमें ४ या ५ प्रतिशत रबर है, -३५या-४०° होता है। इस त-५० का संयुक्त रबर से घना सम्बन्ध है।

कच्चा रबर पानी में कोमल हो जाता और सरलता से फट जाता है, पर वलकनीकृत रबर ज्यों-का-त्यों रहता है।

वलकनीकृत रबर के पीसने से वह जल्दी पीस जाता और चिपचिपा नहीं होता; जब कि कच्चा रबर कोमल होकर चिपचिपा पिंड बन जाता है। वलकनीकृत रबर की वितान-क्षमता और दैर्घ्य बढ़ जाता है, शैथिल्य कम हो जाता, विलायकों, ताप, दारण और अपघर्षण के प्रति प्रतिरोधकता बढ़ जाती है।

वलकनीकृत रबर के वैद्युत् गुणों में बहुत कम परिवर्तन होता है। रबर को आधिविद्युत् अंक गंधक की मात्रा के अनुपात में बढ़ता है। ११'५ प्रतिशत गंधक में महत्तम ३'७५ हो

जाता है, उसके वाद कम होना शुरू होता है और २२ प्रतिशत गंधक में न्यूनयम १·७ हो जाता है। ३२ प्रतिशत गंधक के काँचकड़ा में २·८२ होता है।

गंधक की वढ़ती मात्रा से प्रतिरोधता वढ़ती है। १२ प्रतिशत गंधक में महत्तम २×१०^{१७} ओह्म होती है। फिर प्रतिरोधता घटती है और १८ प्रतिशत गंधक में न्यूनतम २६×१०^{१५} ओह्म हो जाती है। फिर वढ़ती है और २२ प्रतिशत गंधक में १×१०^{१७} हो जाती है और उसके वाद वहुत धीरे-धीरे कम होती है।

वलकनीकरण से वितान-क्षमता में कैसे परिवर्तन होता है, वह चित्र सं० १४ से मालूम होता है। वितान-क्षमता कुछ समय तक वढ़ती है। उसके वाद प्रायः स्थायी हो जाती है अथवा वड़ी अल्प मात्रा में घटती है।
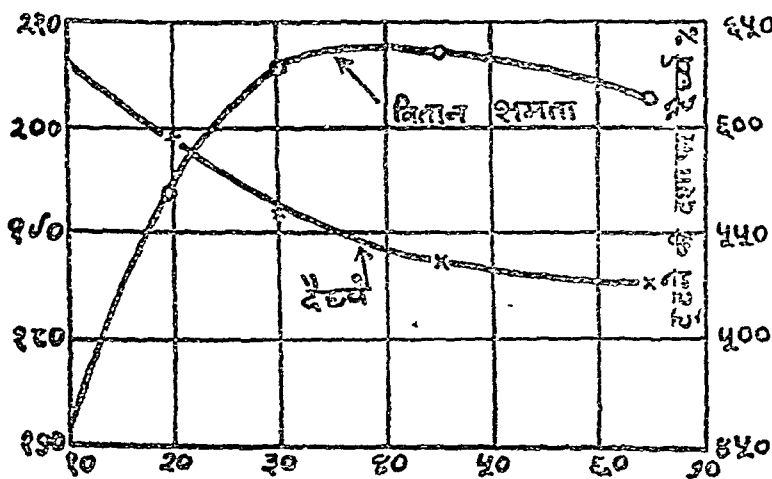
[चित्र–१४ वितान-क्षमता और दैर्घ्य में परिवर्तन, समय मिनट में]

टूटने की दशा पर ऐसे वलकनीकृत रवर का दैर्घ्य क्या होता है, यह भी चित्र १४ से मालूम होता है। दैर्घ्य वलकनीकरण से क्रमशः कम होकर कुछ समय के वाद प्रायः स्थायी हो जाता।

रवर के वलकनीकरण से वितान-क्षमता कुछ समय तक वढ़ती है; पर पीछे घटने लगती है और अधिक समय वीतने पर वहुत अल्प हो जाती है। यह इस चित्र से स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है।

रवर का वलकनीकरण समय और ताप पर निर्भर करता है। सामान्य ताप पर वलकनीकरण में महीनों लग सकता है और १४०° श० पर कुछ ही मिनटों में सम्पादित हो सकता है। त्वरकों के कारण क्रिया और जटिल हो जाती है। इनकी सहायता से सामान्य ताप पर भी एक दिन के अन्दर वलकनीकरण सम्पादित हो सकता है।

निम्न ताप पर कम-से-कम समय में वलकनीकरण होना चाहिए। इससे उत्पाद के गुण उत्कृष्ट होते और खर्च भी कम पड़ता है। निम्न ताप इसलिए उत्तम है कि इससे वलकनीकृत रवर के भौतिक गुण उत्कृष्ट कोटि के होते हैं और उच्च ताप से रवर तन्तु कुछ क्षतिग्रस्त हो जाते हैं जिसका होना टायर और पटियों के लिए ठीक नहीं है। निम्न ताप पर ऐसा नहीं होता। उच्च ताप पर वर्णक निकल सकते हैं और इससे रंग फीका पड़ सकता है। निम्न ताप पर ऐसा नहीं होता। रवर के मोटे सामानों का वलकनीकरण एक-सा होना चाहिए। गंधक रवर के अन्तः तक पहुँच जाय, इसके लिए आवश्यक है कि ऐसा गरम होना चाहिए कि वही

ताप अन्त तक पहुँच जाय, विशेषतः उस दशा में जब रबर ताप का कुचालक होता है। इस दृष्टि से उच्च-आवृत्ति तापन वांछित है।

वलकनीकरण कैसे करना चाहिए यह रबर के सामान की प्रकृति पर निर्भर करता है। इसमें खर्च और गुण विशेष रूप से ध्यान में रखने की बात हैं। साधारणतया जो रीतियाँ उपयुक्त होती हैं, उनमें प्रेस अभिसाधन, भाप अभिसाधन, उच्च ताप अभिसाधन, उच्च आवृत्ति तापन, पिची की विधि और शीतल अभिसाधन महत्त्व के हैं।

प्रेस-अभिसाधन—इसमें रबर मिश्रण को दो पट्टों के बीच प्रेस में रखकर दबाते हैं। दवाव प्रतिवर्ग इंच एक टन तक का हो सकता है। पट्टों को भाप से, गैस से या विद्युत् से प्रायः १४०° तक गरम रखते हैं। ताप १७०° तक या इससे ऊपर भी रखा जा सकता है। भाप से साधारणतया १४०°श० से ऊपर ताप नहीं प्राप्त होता। अधिकांश ढाले हुए सामान भाप-रीति से ही वलकनीकृत होते हैं। प्रेस के दो पट्टों में ऊपरवाला पट्ट स्थिर रहता है और नीचेवाला नीचे ऊपर घूम सकता है। यह एक जल-प्रेरित प्रणोदक द्वारा घूमता है। प्रेस के पट्ट चार मजबूत खम्भों पर स्थित रहते हैं। कुछ प्रेसों में अनेक पट्ट, सात आठ तक रहते हैं।

छोटे-छोटे सामानों के लिए हाथ के प्रेस से ही काम चल सकता है। बड़े-बड़े सामानों के लिए जल-प्रेरित प्रेस आवश्यक होते हैं। इसमें पट्टों के ताप का नियंत्रण बहुत आवश्यक है। भाप के तापन से नियंत्रण आप-से-आप हो सकता है। ये प्रेस ३० फुट लंबे तक हो सकते हैं, जिनमें ५,००० टन तक का समावेशन होता है। ऐसा प्रेस रबर की छत इत्यादि के बनाने में उपयुक्त होता है।

जल-प्रेरित प्रस में पानी, तेल या इसी प्रकार के अन्य द्रव उपयुक्त होते हैं। द्रव ऐसा होना चाहिए कि इस्पात या पीतल पर उसकी कोई क्षारण क्रिया न हो। कीमती द्रव उपयुक्त नहीं हो सकते। द्रव ०° और ८०° के बीच स्थायी होना चाहिये। उसकी श्यानता कम होनी चाहिए ताकि नलियों और कपाटों द्वारा पम्प करने में शक्ति का ह्रास न्यूनतम हो।

साधारणतया जल-प्रेरित प्रेस में जल उपयुक्त होता है; क्योंकि यह सस्ता होता और सरलता से प्राप्य है। ऐसे प्रेस में काँसे या अकलुप इस्पात के कपाट होते हैं। यदि तेल उपयुक्त हो तो ऐसा तेल होना चाहिए जो ठंढ से जमें नहीं और न कोई अवक्षेप ही दे। कपाट निपादक इत्यादि पर बहुत कम घिसाव होना चाहिए।

जल-प्रेरित प्रेस में जो पम्प इस्तेमाल होता है, वह बनावट और कार्य में सरल होता है। द्रव को संचित्र में संचित रखते हैं। संचित्र एक बड़ी टंकी होती है जो दबाव को सहन कर सकती है। इसमें इतना द्रव अँटना चाहिए कि प्रेस की आवश्यकता को पूरा कर सके।

भाप-अभिसाधन—जो सामान प्रेस अभिसाधन में वलकनीकृत नहीं हो सकते, उन्हें भाप दबाव से वलकनीकृत करते हैं। ये उत्पाद ढालक में डुबा दिये जाते अथवा कपड़े में लपेट दिये जाते हैं। इसमें दोष यह है कि वलकनीकरण की प्रथमावस्था में सामानों के तल पर पानी जम जाने का भय रहता है जिसमें रबर सछिद्र और दानेदार हो जाता है।

जिस कड़ाह में वलकनीकरण होता है, वह बायलर के समान होता है। वह क्षैतिज

अथवा उर्ध्वाधार हो सकता है। उसमें भाप प्रवेश और भाप निकास, संघनित जल के निकास, दवाव-मान और अभय कपाट होते हैं।

शुष्क ताप अभिसाधन—भाप के स्थान में शुष्क वायु से भी वलकनीकरण होता है। वायु ताप का कुचालक होने के कारण इस विधि के वलकनीकरण में समय अधिक लगता है। निचोलित कड़ाह इसमें उपयुक्त होते हैं। निचोल भाप से गरम किया जाता है और कड़ाह में भाप-नली से वायु गरम होती है। वायु के प्रायः ३० पाउण्ड दवाव पर जूते के तलवे या ऐड़ियाँ वनती हैं। वरसाती भी वड़े-वड़े कक्षों में वनती है। ये कक्ष भाप नलियों से गरम किये जाते हैं। इस विधि से वने सामान वहुत चिकने और एक से तल के होते हैं। नलियों और समुद्री तारों के लिए यह विधि अधिक उपयुक्त है। ऐसे सामानों को कक्षों में नियमित गति से संचालित करने से उनका वलकनीकरण हो जाता है।

उच्च आवृत्ति ताप अभिसाधन—इस रीति से लाभ यह है कि ताप एकसा और शीघ्रता से होता है और इसमें ताप का नियंत्रण वड़ी यथार्थता से होता है। इसका सिद्धांत यह है कि उच्च आवृत्ति के सामान क्षेत्र में जव समावयव अधिविद्युत् रखा जाता है तव पिंड का सारा पुंज एक-सा गरम हो जाता है और आवृत्ति की वृद्धि से पिंड का ताप वढ़ता है। इस रीति से अभिसाधन वड़ी शीघ्रता से होता है। जो स्पंज रवर भाप से ३२ मिनटों में अभिसाधित हो जाता है, वह इस रीति से केवल ४ मिनटों में हो जाता है। भाप रीति से प्रस्तुत स्पंज-रवर के सूखने में १५ घंटा समय लेता है और वह इस रीति से प्रस्तुत एक घंटे में सूख जाता है। वड़े-वड़े कठोर रवर के पहिए जहाँ भाप से ५ घंटे में अभिसाधित होते हैं, वहाँ इस रीतिसे केवल २० मिनटों में अभिसाधित हो जाते हैं।

पीचि विधि—इस विधि में रवर को हाइड्रोजन सलफ़ाइड से संतृप्त कर लेते हैं। फिर उसे सलफर डायक्साइड के संसर्ग में लाते हैं। इससे नवजात दशा में गन्धक मुक्त होकर रवर को वलकनीकृत कर देता है।

$$4\,H_2S + 2SO_2 = 4\,H_2O + 6\,S$$
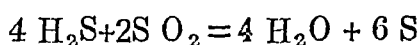
इस विधि का व्यवहार साधारणतया नहीं होता। इसमें कुछ अम्ल भी वनता है जिसका बुरा प्रभाव रवर पर पड़ता है।

टेट्रा-मेथिलथायोरम डाइसलफाइड अच्छा वलकनीकारक है। यह प्रवल त्वरक भी है। वलकनीकरण में यह अवकृत हो जाता और उसमें इसका प्रायः २५ प्रतिशत गन्धक क्रियाशील रूप में मुक्त हो रवर का वलकनीकरण करता है। इसका सूत्र निम्नलिखित है—

$$\begin{array}{c} \quad\;\; S \qquad\quad S \\ \quad\;\; \| \qquad\quad\; \| \\ (CH_3)_2\,N\text{—}C\text{—}S\text{—}C\text{—}N\,(CH_3)_2 \\ \downarrow \end{array}$$
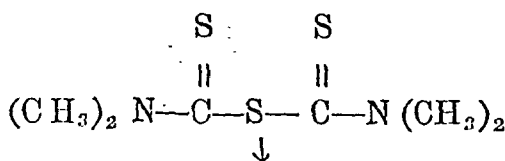
निकल जाता है।

शीतल अभिसाधन—विना गरम किये भी रवर का वलकनीकरण हो सकता है। यहाँ वलकनीकरण सलफ़र क्लोराइड के द्वारा होता है। सलफ़र क्लोराइड S_2Cl_2 नारंगी रंग

का द्रव है जो १३८° श० पर उबलता है। जल से यह हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और सलफ्यूरस अम्ल में विच्छेदित हो जाता है। इसमें तीखी गन्ध होती है। वलकनीकरण के लिए सलफर-क्लोराइड को कार्बन डाइसलफाइड, बेंज़ीन या कार्बन टेट्रा-क्लोराइड में घुला लेते हैं। सलफर-क्लोराइड का २ से ४ प्रतिशत विलयन उपयुक्त होता है। १ गैलन विलायक में प्रायः ४ आउन्स सलफर क्लोराइड इस्तेमाल होता है।

ऐसे विलयन में सामान को डुवा देते हैं। डुवा रखने का समय कुछ सेकण्ड से कुछ मिनट होता है। यह सामान की मोटाई पर निर्भर करता है। ऐसे अभिसाधित सामानों को अमोनिया के विलयन से धो लेते हैं ताकि सामान पर सटा हुआ अम्ल घुलाकर निकल जाय, फिर उसे पानी से धोकर सुखा लेते हैं।

कभी-कभी रवर के सामानों के सीस के कक्ष में लटकाकर उसमें सलफर क्लोराइड के वाष्प को ले जाते हैं। इस रीति को 'वाष्प अभिसाधन' कहते हैं। अभिसाधन के बाद अमोनिया से हाइड्रोजन क्लोराइड और सलफर क्लोराइड के आधिक्य को हटा लेते हैं।

इस रीति से केवल पतले सामानों का ही अभिसाधन करते हैं। अभिसाधन बड़ी शीघ्रता से होता है। यदि समय पर सामानों को हटा न लिया जाय तो वे नष्ट हो सकते हैं। साधारणतः रवर के स्तार को वेलन में लपेटकर एक वेलन से दूसरे वेलन पर ले जाते हैं। इस प्रकार एक वेलन से दूसरे वेलन पर जाते हुए यह एक तीसरे वेलन के संस्पर्श में आता है जो सलफर-क्लोराइड पात्र में डूबा रहता है।

सलफर के अतिरिक्त सिलिनियम और टेल्युरियम से भी वलकनीकरण होता है। ये दोनों तत्त्व गन्धक समूह के तत्त्व हैं। इनमें सिलिनियम का उपयोग व्यापार में भी कुछ हुआ है। इससे अभिसाधन अपेक्षाकृत बड़ा धीमा होता है। सिलिनियम भूरे रंग का चूर्ण है जो २१७° श० पर पिघलता है और जिसका विशिष्ट घनत्व ४·८ है। इसका ०·५ प्रतिशत उपयुक्त होता है।

कुछ कार्बनिक पदार्थों जैसे बेंजायल पेरोक्साइड, नाइट्रोबेंजीन, डाइनाइट्रोबेंजीन, ट्राइनाइट्रो-बेंजीन से भी रवर का अभिसाधन हो सकता है। ऐसे अभिसाधित रवर की वितान-क्षमता अच्छी होती है और इनके जीर्णन के गुण भी अच्छे होते हैं अर्थात् वह शीघ्र जीर्ण नहीं होता। ऐसे अभिसाधन में लिथार्ज, जिंक आक्साइड, मैगनीशिया इत्यादि से सहायता मिलती है। बेंजायल पेरौक्साइड से रवर की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से अभिसाधन होता है। जहाँ गन्धक से प्रायः ३ घण्टे में अभिसाधन होता है, वहाँ ६ प्रतिशत बेंजायल पेरौक्साइड से १४०° श० पर १२ मिनटों में पूर्ण अभिसाधन हो जाता है।

इनके अतिरिक्त कुछ और भी कार्बनिक पदार्थ पाये गए हैं जो रवर का अभिसाधन करते है। इनमें क्विनोन, हैलेजनीय क्विनोन और डायज़ो-एमिनो बेंजीन हैं।

वलकनीकरण के संबन्ध में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं। उनमें स्पेन्स का सिद्धान्त महत्त्व का है। स्पेन्स ने १३५°श० और १५३°श० पर पेड़ के रवर को १५ प्रतिशत गन्धक से वलकनीकृत किया। वलकनीकरण की विभिन्न अवस्थाओं में संयुक्त रवर की मात्रा निर्धारित की। उसे वे वक्र बनाए। वक्र में एक ओर घण्टे में समय दिया और दूसरी ओर संयुक्त रवर की प्रतिशतता दी। उससे जो वक्र बना, उसका चित्र १५ यहाँ दिया हुआ है।

इस प्रयोग से पता लगा कि वल्कनीकरण नियमित रूप से होता है। और २० घण्टे के वल्कनीकरण से सारा मुक्त गंधक संयुक्त हो जाता है। यदि गन्धक का आधिक्य हो तो३१'६७ प्रतिशत तक गन्धक संयुक्त हो सकता है। ऐसे वल्कनीकृत रबर से रबर निकालने में प्रबल क्षार के साथ उबालने से भी उन्हें सफलता नहीं मिली। २४ घण्टे तक ऐसीटोन के निष्कर्ष से भी मुक्त गन्धक नहीं निकाला जा सका।
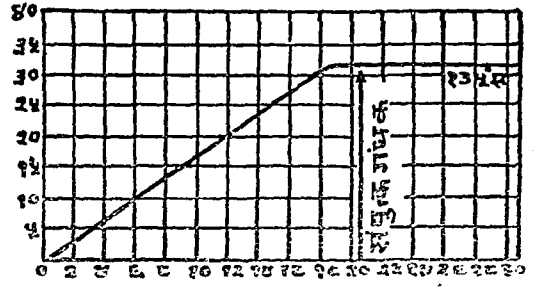
[चित्र १६, संयुक्त गंधक। समय घंटे में और ताप १३५°श०।]

स्पेन्स का मत है कि निम्न ताप पर ही सारा गन्धक वल्कनीकरण में उपयुक्त हो जाता है। इनके प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि मुक्त गन्धक वल्कनीकृत रबर में नहीं रहता। वल्कनीकरण वस्तुतः एक रासायनिक प्रतिक्रिया है और यह रासायनिक नियमों का पालन करता है॥

चौदहवाँ अध्याय

त्वरक

कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो वलकनीकरण के पूर्व रबर में मिला देने से वलकनीकरण की गति को तीव्रतर कर देते हैं। इन पदार्थों को त्वरक कहते हैं। त्वरकों की मात्रा कम लगती है। कुछ त्वरक खनिज हैं और अधिकांश कार्बनिक।

रबर को गंधक के साथ १४०° श० पर गरम करने से प्रायः पांच घंटे में रबर का अच्छा वलकनीकरण होता है। यदि इस रबर और गंधक में थोड़ा जिंक ऑक्साइड मिला दें तो वलकनीकरण प्रायः ४ घंटे में ही सम्पन्न हो जाता है। यदि इस मिश्रण में थोड़ा—केवल एक प्रतिशत—एनिलिन या थायो-कारवेनिलाइड डाल दें तो वलकनीकरण दो ही घंटे में हो जाता है। थायो-कार्वोनिलाइड के स्थान में मरकैप्टो-बेंज़थायज़ोल डालें तो उसी ताप पर आध घंटे में ही वलकनीकरण हो जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ त्वरकों के बिना वलकनीकरण में घन्टों लगता है, वहाँ त्वरकों के सहयोग से वलकनीकरण कुछ मिनटों और किसी-किसी दशा में तो कुछ सेकंडों में ही सम्पादित हो जाता है। त्वरक का प्रभाव चित्र १६ से स्पष्ट हो जाता है।

कच्चे रबर भिन्न-भिन्न गुण के होते हैं। इन विभिन्न रबरों के वलकनीकरण की गति विभिन्न होती है। ऐसा क्यों होता है? इसीकी खोज में रबर पर कुछ पदार्थों के प्रभाव का अध्ययन आरम्भ हुआ और इससे त्वरकों के आविष्कार का प्रारम्भ हुआ। अध्ययन से पता लगा कि वलकनीकरण में रेज़िन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। नाइट्रोजनवाले पदार्थ, प्रोटीन का वलकनीकरण पर प्रभाव पड़ता है। पीछे देखा गया कि आक्षीर की स्कंधन रीति और स्कंध के प्रस्तुत करने की विधि का भी वलकनीकरण पर प्रभाव पड़ता है। आक्षीर से लसी भाग के निकाल डालने से वलकनीकरण की गति धीमी हो जाती है। लसी के साथ का रबर शीघ्रता से वलकनीकृत होता है। पीछे देखा गया कि लसी में कार्बनिक अम्लो, स्टियरिक, ओलियिक और लिनोलियिक अम्लों के कारण ऐसा होता है।

चित्र सं० १६

[त्वरक का प्रभाव वल्कनीकरण का समय १०५° श० पर मिनटोंमें। वक्र १ से अभिसाधन का क्रमिक विकास और वक्र २ से त्वरक के कारण शीघ्र उत्थान तथा पतन सूचित होता है।]

रिकोले ने १८८० ई० में वलकनीकरण में अमोनिया का उपयोग किया। चूना, मुर्दासंख और जिंक आक्साइड वलकनीकरण को जल्द सम्पादित करते हैं, यह मालूम हो गया। १६०६ ई० में ओएन्स्लेजर ने देखा कि

एनिलिन और थायोकारबेंजिलाइड, फार्मएल्डीहाइड अमोनिया से वलकनीकरण की गति बहुत बढ़ जाती है। पीछे ऐनिलिन के स्थान में पारा-अमीनों-डाइफेनिल ऐनिलिन का उपयोग हुआ क्योंकि एनिलिन विषाक्त होता है। यह देखा गया कि इसकी उपस्थिति से रबर के भौतिक गुणों में भी बहुत सुधार होता है।

१६१२ ई० में त्वरक के रूप में पिपरिडीन का पेटेंट लिया गया और शीघ्र ही देखा गया कि डाइथायोकार्बेमेट अच्छा त्वरक है। अब अन्य त्वरकों की खोज होने लगी और एक बहुत सर्वप्रिय त्वरक, डाइफेनिल ग्वेनिडिन जिसका व्यवसाय का नाम डी. पी. जी. था, निकल आया। इसके बाद तो फिर अनेक त्वरक निकले। कार्बनिक त्वरक १६२० ई० से ही शुरू हुए और आज उनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँच गई है। कुछ प्रमुख कार्बनिक त्वरकों के रासायनिक नाम और व्यवसाय के नाम निम्नलिखित हैं—

रासायनिक नाम	अमेरिका में व्यवसाय नाम	ग्रेट ब्रिटेन में व्यवसाय नाम
फार्मल्डीहाइड एमोनिया	हेक्सा	
फार्मल्डीहाइड एथिलएमिन	श्वेतलवण	
फार्मल्डीहाइड एनिलिन	ट्रामेन बेस	
फार्मल्डीहाइड पारा–टोल्विडिन	ज़ेड ५–१०	
ऐसिटल्डीहाइड एमोनिया	ए–१०, एम–पी. टी.	
ऐसिटल्डीहाइड एनिलिन	एल्डीडाइड एमोनिया ए–१६	
ब्यूटिरल्डीहाइड ब्यूटिल एमिन	त्वरक ८३३	
ब्यूटिरल्डीहाइड एनिलिन	ए–३२	
हेपटल्डीहाइड एनिलिन	हेपटीन	
डाइफेनिलग्वेनिडिन	डी. पी. जी.	
ट्राइफेनिलग्वेनिडिन	टी. पी. जी.	
डाइफेडिलग्वेनिडिन थैलेट	ग्वानूटल	
थायोकार्वेनिलाइड	ए–१	
यशद डाइमेथिलडाइथायोकार्वेमेढ	ज़िमेट	ज़ेड. डी. सी.
जिंक पेण्टा-मेथिलिनडाइथायोकारवेमेट		ज़ेड. पी. डी.
सोडियम डाइब्यूटिलडाइथायोकारवेमेट	टेपिडोन	
पिपरेडिनियम पेण्टा-मिथिलिनडाइथायोकारवेमेट	पिप–पिप	पी. पी. डी.
पेण्टामिथिलिनथायरम डाइसलफाइड	त्वरक ५५२	पी. टी. डी.
टेट्रामिथिलथायरम मोनोसलफाइड	मोनेक्स	टी. एम. टी.
मरकैपटोबेंज थायोजोल	थायोटैक्स	एम. बी. टी.
बेंजथायजिल डाइसलफाइड	थायोफाइड, एल्टैक्स	एम. बी. टी. एस.

त्वरकों के उपयोग से वलकनीकरण में गंधक की मात्रा भी बहुत कम लगती है। जहाँ पहले १० प्रतिशत गंधक लगता था वहाँ अब १ प्रतिशत से ही काम चल जाता है। स्पंज

रवर, वरसाती कपड़े, नलियों, समुद्री तारों इत्यादि में १ से २ प्रतिशत गंधक पर्याप्त होता है। अर्ध-कांचकड़ा में जहाँ १२० प्रतिशत कार्बन काल, १६० प्रतिशत मैगनीशियम कार्बोनेट विद्यमान है, ४ प्रतिशत गंधक और केवल २ प्रतिशत त्वरक से काम चल जाता है। उपयुक्त त्वरकों के साथ-साथ केवल ३० प्रतिशत गंधक से काँचकड़ा प्राप्त होता हैं।

त्वरकों से रंग के डालने में भी सहूलियत होती है और इसके योग से वने सामान आकर्षक होते है। रंगों की आभाएँ त्वरकों से बड़ी सुन्दर होती हैं। एक त्वरक के स्थान में एक से अधिक त्वरकों का मिश्रण अच्छा समझा जाता है। भिन्न-भिन्न त्वरकों की मात्राएँ और उन के वेग विभिन्न होते हैं।

१०० भाग रवर, १० भाग जिंक ऑक्साइड, २ भाग स्टियरिक में त्वरकों और गंधक की मात्रा निम्नलिखित रूप में रहती है—

डाइफेनिल ग्वेनिडिन	१·०	गन्धक	३·०
मरकैप्टोबेंजथायोज़ोल	०·६२५	,,	२·५
व्यूटिरल्डीहाइड एनिलिन	०·५	,,	२·५
टेट्रामेथिलथायरम डाईसलफाइड	०·३७५	,,	२·०
जिंक डाइमेथिल-डाइथायो कारबेमेट	०·३७५	,,	२·०

त्वरकों से रवर के ह्रास होने का समय वहुत वढ़ जाता है। रवर देर से पुराना होता है। ऐसे रवर के ताप की प्रतिरोधकता भी वढ़ जाती है। त्वरकों की गति और रवर पर प्रभाव से विभिन्न त्वरकों को निम्न लिखित वर्गों में विभक्त किया गया है—

	कोमल होना	मापांक	वितान-क्षमता	सक्रियता
डाइथायो कारवेमेट	नहीं	ऊँचा	ऊँचा	२
ज़ैन्थेट	नहीं	ऊँचा	ऊँचा	१
थायरम सलफाइड	नहीं	ऊँचा	ऊँचा	३
मरकैप्टो बेंजथायोजोल	अल्प	नीचा	नीचा	६
वलकेनोल	नहीं	ऊँचा	ऊँचा	७
एल्डीहाइड एमिन	अल्प	ऊँचा	ऊँचा	८
पारा-नाइट्रोसो डाइमेथिल एनिलिन	अल्प	नीचा	नीचा	५
एथिलिडिन एनिलिन	अल्प	नीचा	नीचा	६
एल्डीहाइड-एमोनिया	नहीं	नीचा	नीचा	१०
ग्वेनिडिन	नहीं	ऊँचा	ऊँचा	११
हेक्सामेथिलिन टेट्रामिन	नहीं	ऊँचा	ऊँचा	१२

खनिज त्वरक पहले वहुत उपयुक्त होते थे। कार्वनिक त्वरकों के आगमन से उनका उपयोग वहुत कुछ वन्द या कम हो गया है। ऐसे त्वरकों में चूना, लिथार्ज, मैगनिशिया और जिंक ऑक्साइड हैं जो कुछ सीमा तक अव भी उपयुक्त होते हैं।

मैगनीशिया दो रूपों में प्राप्त हो सकता है। एक हलका होता है, जिसका विशिष्ट घनत्व ३·२ है और दूसरा भारी होता है जिसका विशिष्ट घनत्व ३·६५ होता है। लिथार्ज भी दो रूपों

में, पीला और लाल, पाया जाता है। धुँधले सामानों के लिए लिथार्ज अच्छा त्वरक है। पाइन कोलतार के साथ इसका काम अच्छा होता है। जूते के सामानों, पृथकन्यासनअंक आवरण के तयार करने में लिथार्ज अब भी उपयुक्त होता है। इससे मज़बूती बढ़ जाती है। रेडियमधर्मी कामों में परीक्षण के लिए ९० भाग लेड ऑक्साइड, ९ भाग रबर और एक भाग गन्धक का बना सामान उपयुक्त होता है।

कार्बनिक त्वरकों में मरकैप्टोबेंज-थायज़ोल उत्कृष्ट कोटि का है और प्रचुरता से उपयुक्त होता है। इससे बहुत निम्न ताप पर और कम गंधक से ही वलकनीकरण हो जाता है और उत्पाद के भौतिक गुण बड़े अच्छे होते हैं।

यह पीला पदार्थ है जो १७६° श० पर पिघलता और जिसका विशिष्ट घनत्व १·४२ होता है। इसकी गंध तीखी और स्वाद तीता होता है। यह विषाक्त नहीं होता। जल में अविलेय पर क्षार, एलकोहल, ऐसिटोन, ईथर और बेंजीन में विलेय होता है। जिंक ऑक्साइड और स्टियरिक अम्ल की उपस्थिति में इसका काम उत्तम हाता है। टायर और ट्यूब के रबर में निम्नलिखित अंश रहते हैं—

	टायर	ट्यूब
रबर	१००	१००
पाइन कोलतार	२	—
स्टियरिक अम्ल	४	१
जिंक ऑक्साइड	५	१०
प्रति-ऑक्सीकारक	१	१
गन्धक	३	१
कार्बन काल	५०	—
मरकैपटो बेंजोथाय	१·२५	१
टेट्रामेथिल थायरम डाइसरफाइड	—	०·२५
खनिज तेल	१	—

टायर ४० पाउण्ड प्रति वर्ग इंच दबाव पर ३० मिनटों में }
ट्यूब ५० ,, ,, ,, २० ,, } वलकनीकृत हो जाता है।

यदि रबर में पूरक की मात्रा कम हो तो इस त्वरक के १ प्रतिशत से ही काम चल जाता है। जहाँ पूरक बहुत अधिक है वहाँ १·५ प्रतिशत तक इस्तेमाल हो सकता है। ऐसी दशा में २ से २·५ प्रतिशत गंधक से काम चल जाता है। २·५ प्रतिशत मात्रा वहीं लगती है जहाँ कार्बन काल या मिट्टी पूरक के रूप में इस्तेमाल हुई हैं। इसका कार्य निम्नतर ताप पर ही शुरू होता है। १००° श० पर वलकनीकरण के लिए कई घण्टे लगते, १२०° श० पर दो घण्टे से कम, १४०° श० पर आधे घण्टे और १६०° श० पर कुछ ही मिनट लगते हैं।

इसके साथ क्षारीय पदार्थों का उपयोग ठीक नहीं होता। झुलसने का भय रहता है। ऐसे पदार्थों के उपयोग में बड़ी सावधानी की आवश्यकता रहती है। इससे बने सामान प्रकाश को अधिक सहन कर सकते हैं। इनके मापांक भी ऊँचे होते हैं। इससे रबर जल्दी जीर्ण भी नहीं

होता। झुलसने से बचने के लिए इसके अन्य प्रसूतों का उपयोग हुआ है। एक ऐसा प्रसूत डाइबेंज-थायज़िल-डाइसलफ़ाइड है।

डाइफेनिलग्वेनिडिन—यह बहुत प्रभावकारी त्वरक है और प्रचुरता से उपयुक्त होता

$$
\begin{array}{c} NHC_6H_5 \\ | \\ C{=}NH \\ | \\ NHC_6H_5 \end{array}
$$
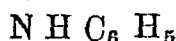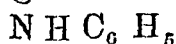
है। यह सफेद केलासीय चूर्ण है जो १४५° श० पर पिघलता है। इसका विशिष्ट घनत्व १·०५ है। इसमें कोई गन्ध नहीं होती। यह विषाक्त नहीं होता और इसमें झुलसने का बहुत कम डर रहता है। इसके साथ जिंक ऑक्साइड आवश्यक है। लिथार्ज़ या मैगनीशिया भी उपयुक्त हो सकता है। ३·५ प्रतिशत गन्धक के साथ इसका ०·५ प्रतिशत से १ प्रतिशत तक उपयुक्त हो सकता है। इसके सामान चीमड़ और मजबूत होते हैं, पर पुराना होने से यह नहीं बचाता है। यांत्रिक सामानों के निर्माण में इसका उपयोग अधिक होता है।

टायर

रबर	१००
स्टियरिक अम्ल	१
पाइन कोलतार	३
जिंक आक्साइड	५
कार्बनकाल	४५
गन्धक	३
डी. पी. जी.	१·५

४० पाउण्ड प्रति वर्ग इञ्च दबाव पर ४५ मिनटों में अभिसाधित हो जाता है।

कार्बनिक क्षार—

एनिलिन—यह बहुत सस्ता होता है और दुर्बल त्वरक है। विषैला होने के कारण इसका उपयोग नहीं होता।

पारा-एमिनोडाइमेथिल एनिलिन—एक समय इसका उपयोग बहुत विस्तृत था।

एल्डीहाइड-अमोनिया—यह भी सस्ता होता है और उच्च ताप के लिए प्रभावकारी है। इससे झुलसने का भय रहता है।

हेक्सामिथिलिन टेट्रामिन—इसका प्रचार बहुत अधिक है। यह सफेद केलासीय-चूर्ण होता है।

ऐसिटल्डीहाइड एनिलिन, ब्यूटिराल्डीहाइड एनिलिन, हेप्टाल्डीहाइड एनिलिन—भी त्वरक के रूप में उपयुक्त हुए हैं।

टेट्रा-मेथिल थायरम डाइसलफाइड—

$$(CH_3)_2N-\overset{\overset{S}{\|}}{C}-S-S-\overset{\overset{S}{\|}}{C}-N(CH_3)_2$$
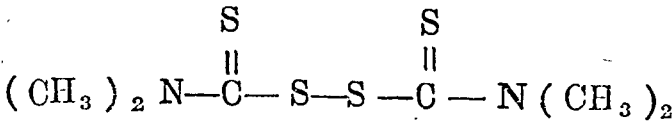
यह भूरे रंग का चूर्ण है जो १५४° श० पर पिघलता है। इसका विशिष्ट घनत्व १·२९ है। यह बेंजीन, कार्बन डाइसलफाइड, ऐसिटोन और क्लोरीनवाले विलायकों में विलेय है पर पेट्रोल, एलकोहल और जल में प्रायः अविलेय है। यह विषैला नहीं है। इसकी विशिष्ट गन्ध होती है और रंगों को फीका नहीं करता। विना गन्धक के इससे वल्कनीकरण हो सकता है क्योंकि इसका कुछ गन्धक मुक्त हो रबर के साथ मिल जाता है। इस कारण इसकी ३ से ४ प्रतिशत मात्रा की आवश्यकता होती है। गन्धक के साथ इसका १·० प्रतिशत पर्याप्त है। इससे झुलसने का भय रहता है।

जिंक डाइमेथिल डाइथायो कार्बमेट—

$$(CH_3)_2N-\overset{\overset{S}{\|}}{C}-S\overset{Zn}{\diagup\diagdown}S-\overset{\overset{S}{\|}}{C}-N(CH_3)_2$$
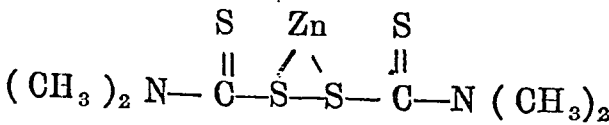
यह श्वेतचूर्ण है जो २५०° श० पर पिघलता है। इसका विशिष्ट घनत्व २·० है। अधिकांश विलायकों में यह अविलेय है। यह रबर को रँगता नहीं है। यह बहुत ही क्रियाशील त्वरक है। १००° श० से बहुत निम्न ताप पर ही वलकनीकरण कर देता है। यह अन्य त्वरकों के साथ ०·१ प्रतिशत की मात्रा में उपयुक्त होता है।

उत्थली प्रभाव—वलकनीकरण के वेग की वृद्धि के साथ-साथ त्वरक दो और काम करते हैं। कुछ त्वरकों का उत्थली प्रभाव होता है। उत्थली प्रभाव का आशय यह है कि रबर सामानों के निर्माण में उनका प्रभाव सामानों के तल को उभारनेवाला होता है। पदार्थों के उत्थली प्रभाव से सामान के अभ्यन्तर अंग भी वाह्य अंग के विना अति वलकनीकृत किये वलकनीकृत किया जा सकते हैं। रबर उष्मा का कुचालक होने से मोटे पदार्थों के सब भागों का एक-सा वलकनीकरण कुछ कठिन होता है; पर इन उत्थलीकारक पदार्थों के सहयोग से ऐसा हो सकता है। मरकैप्टोबेंज थायोजोल एक अच्छा उत्थलीकारक है।
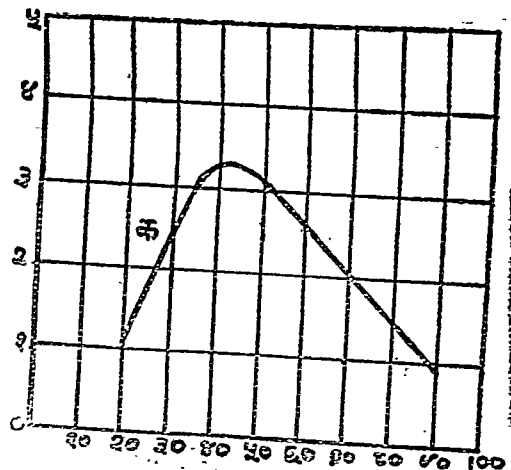
चित्र सं० १७ उत्थली प्रभाव

विलंबन त्वरक—त्वरकों के उपयोग से वलकनीकरण में रबर के झुलसने का डर रहता है। अतः ऐसे त्वरकों को खोजा गया है जो झुलसने को रोकें और उसके साथ-साथ वलकनीकरण की गति को भी बढ़ावें। यह काम विलंबन त्वरकों से होता है। ऐसा विलंबन त्वरक साइक्लोहेक्सिलबेंज-थायोजिल-सलफिनिमाइड और अनेक एल्डीहाइडएमिन यौगिक हैं। मोटे सामानों के लिए ये बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। विलंबन त्वरक का प्रभाव चित्र संख्या १८ में दिया है।
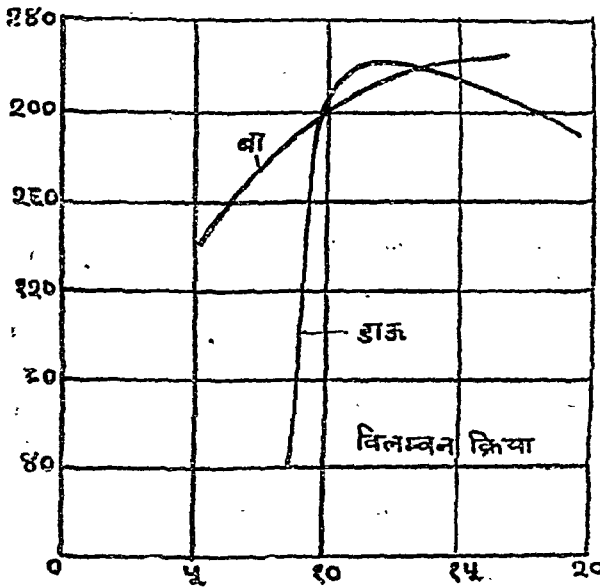
चित्र सं० १८

'डाऊ' लकीर में सामान्य वलकनीकरण हुआ है।

'वा' लकीर में विलम्बन क्रिया हुई है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

आक्षीर का उपयोग

कच्चे रबर के स्थान में सीधे आक्षीर से प्राप्त रबर के सामानों को तैयार करना आज अधिक सुविधाजनक समझा जाता है। पहले आक्षीर को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने में कठिनता थी। ४ गैलन या ४० गैलन के ड्रमों में आक्षीर ले जाये जाते थे। अब तो आक्षीर के ढोने के लिए उसी प्रकार के जहाज़ बने हैं जिस प्रकार के जहाज़ पेट्रोलियम तेल को ढोते हैं। ऐसे जहाज़ों को टैंकर कहते हैं। टैंकरों में अब आक्षीर एक स्थान से दूसरे स्थान में सरलता से लाया जा सकता है।

आक्षीर से बने सामान कच्चे रबर से बने सामानों से कई बातों में अच्छे होते हैं। ऐसे सामान जल्दी जीर्ण नहीं होते। कच्चे रबर से बने सामान एक वर्ष से अधिक नहीं टिकते जब कि आक्षीर से बने सामान पाँच वर्ष या इससे अधिक समय तक टिकते हैं। आक्षीर के रबर अधिक मज़बूत और अधिक फैलनेवाले होते हैं। यह निश्चित है कि विधायन से रबर को क्षति पहुँचती है।

आक्षीर से प्राप्त वलकनीकृत रबर की वितान-क्षमता बहुत ऊँची होती है। इसका दैर्घ्य भी ऊँचा होता है। यह बहुत मज़बूत भी होता है। वलकनीकृत रबर, जिसमें कार्बन काल मिला हुआ है, की वितना-क्षमता प्रति वर्ग इंच ५,००० पाउण्ड से ऊँची नहीं होती पर आक्षीर से ९३°श० पर वलकनीकृत रबर की, जिसका संघटन यह है, रबर १०० भाग, गंधक १ भाग, जिंक डाइथायो-कारबेमेट १ भाग, टेल्युरियम १ भाग, की वितान-क्षमता प्रतिवर्ग इंच ५९७० होती है।

नोबल ने लिखा है कि ऐसे रबर की वितान-क्षमता प्रतिवर्ग इंच ६३०० पाउण्ड तक होती है। आक्षीर से एक रबर तैयार कर उसकी परीक्षा की गई थी। उस रबर में निम्नलिखित वस्तुएँ उपयुक्त हुई थीं—

रबर	१०० भाग (६० प्रतिशत आक्षीर)
जिंक पेण्टा-मेथिलिन डाइथायो कारबेमेट	०·५
मरकैप्टो-बेंजो-थायज़ोल	०·२
गंधक	२·०
जिंक ऑक्साइड	१·०
केसीन	१·० (१० प्रतिशत)

उष्ण वायु में २० मिनट में १२०°श० पर अभिसाधित हुआ था।

इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया है कि आक्षीर का रबर कच्चे रबर से अधिक मज़बूत और अधिक फैलनेवाला होता है। इसका मापांक सब से न्यून होता है।

वैरोन ने ऐसे रबर की शक्ति भी नापी थी। आक्षीर से प्राप्त रबर की शक्ति अन्य सब रबरों की शक्ति से अधिक पाई गई है। विधायन में रबर की निजी शक्ति बहुत कुछ नष्ट हो जाती है।

विना कुछ मिलाये आक्षीर के उपयोग कम हैं। ऐसा आक्षीर केवल बूटों और जूतों के निर्माण में चिपकाने के लिए उपयुक्त होता है। निमज्जित फिल्म या इसी प्रकार के अन्य पदार्थ इसके बनते और शीतल अभिसाधन अथवा गन्धक और त्वरकों के विलनय में उबालकर वलकनीकृत होते हैं। पर अधिकांश आक्षीर अन्य पदार्थों के साथ मिला कर ही उपयुक्त होते हैं। अन्य पदार्थों से मिलाने के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं—

१. वलकनीकरण के लिए महीन गंधक, जिंक ऑक्साइड और एक या दो त्वरकों को मिलाना आवश्यक है।

२. रबर को सस्ता बनाने के लिए कुछ सस्ते पूरकों को मिलाना आवश्यक है।

३. रबर के गुणों में सुधार करने के लिए कोमलकारक इत्यादि पदार्थों को मिलाना अथवा रबर को चीमड़ और मज़बूत बनाने के लिए कुछ खनिज पूरकों को डालना आवश्यक होता है।

४. रबर में रंगों को डालना अनेक पदार्थों के लिए आवश्यक होता है।

५. स्कंधित न हो जाय, इससे बचाने के लिए आक्षीर का स्थायीकरण आवश्यक होता है।

६. आक्षीर के हृष्करण, ताकि केवल गरम करने से वह स्कंधित हो जाय, की आवश्यकता होती है।

७. आक्षीर को गाढ़ा करना आवश्यक होता है ताकि उसमें निमज्जन से मोटा फिल्म बन सके।

आक्षीर में मिलानेवाले पदार्थ मिल जायँ और आक्षीर का स्कन्धन नहीं हो, इसके लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। मिलनेवाला पदार्थ मोटे कणों में न हो, पानी को शोषण करनेवाला न हो, आक्षीर के विद्युत् आवेश को ले लेनेवाला न हो, इसकी विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। इस कारण मिलनेवाले ठोस पदार्थ को पानी में और वह भी आस्नुत पानी में भींगाकर तब आक्षीर में डालते हैं। सामान्य जल में लवणों के रहने से उलझन बढ़ सकती है। पानी के स्थान में सल्फोनित वसा-अम्ल, एलकोहल और साबुन भी उपयुक्त हुए हैं। पूरकों के लिए ये बड़े अच्छे सिद्ध हुए हैं। इनकी ०·५ प्रतिशत पर्याप्त होती है। चीनी मिट्टी और कैलसियम कार्बोनेट प्रायः ४०० प्रतिशत तक और लिथोपोन २०० प्रतिशत तक मिलाया जा सकता है। जिंक आक्साइड त्वरक के लिए १ या २ प्रतिशत उपयुक्त होता है। इसका प्रभाव गाढ़ा करनेवाला भी होता है। कार्बनकाल भी पूरक के रूप में उपयुक्त हो सकता है, पर आक्षीर के मजबूत करने का इसमें कोई गुण नहीं होता। पूरकों में आक्षीर के मजबूत करने का वास्तव में गुण नहीं होता। सम्भवतः रबर की गोलिकाएँ पूरकों के अति निकट संस्पर्श में नहीं आतीं।

आक्षीर की गोलिकाएँ प्रायः ०·५ म्यू के विस्तार की होती हैं। इससे छोटे विस्तार के कार्बनकाल, जिंक आक्साइड और लिथोपोन के कण होते हैं। अन्य सब पूरकों के कण रवर की गोलिकाओं से बड़े होते हैं।

पूरकों और गन्धकों को गेंद-चक्की में पीसकर बहुत महीन, कलिल सा कर लेते हैं। गन्धक में कोई संरक्षक कलिल भी मिला लेते हैं। ऐसा महीन पीसा हुआ गन्धक पीला होने के स्थान में सफेद होता है। जो त्वरक जल में विलेय हैं उन्हें तो ऐसे ही उपयुक्त कर सकते हैं; पर जो जल में विलेय नहीं हैं, उन्हें चक्की में पीसकर कलिल बना लेते हैं।

कोमलकारक—आक्षीर-रवर चीमड़ होता है। इसे कोमल करने की आवश्यकता होती है। कोमल करने के लिए अल्प मात्रा में स्टियरिक अम्ल, खनिज तेल, पैराफिन मोम, रेजिन इत्यादि सदृश पदार्थ डालते हैं। इन्हें पायस बनाकर तब आक्षीर में डालते हैं। इससे ये रवर की गोलिकाओं के अति सन्निकट संसर्ग में आते हैं। पायस बनानेवाले पदार्थों में ट्राइइथेनोल-ऐमिन महत्त्व का है। स्टियरिक अम्ल के साथ यह साबुन बनकर पायस बना देता है।

गन्धक, पूरक और त्वरक पदार्थों को पूर्णतया भींगा कर शर बना कर तब आक्षीर में डालते हैं। इससे पहले आक्षीर का कोई संरक्षक कलिल डालकर हृष्ट्रकरण कर लेते हैं। केसीन का अमोनिया में १० प्रतिशत विलयन अच्छा संरक्षक कलिल होता है। इसक लिए १०० ग्राम केसीन को जल के साथ पिष्टी बना लेते हैं, तब उसमें ०·८८ घनत्व अमोनिया का १५ ग्राम ६०० सी सी. जल में और फिर उसमें संरक्षण के लिए ४ ग्राम बीटा-नैफ्थोल डाल देते हैं।

बड़ी मात्रा में आक्षीर को अन्य पदार्थों के साथ यांत्रिक विलोडक से प्रक्षुब्ध कर मिलाते हैं, ताकि आक्षीर के पिंड के रूप में स्कन्धित होने का भय न रहे।

रवर	१००	(६० प्रतिशत आक्षीर)
जिंक ऑक्साइड	१	
गन्धक	१	
कसीन	१	
जिंक डाइमेथिल डाइथायो कार्बेमेट	१	
मरकैप्टो बेंजथायज़ोल	०·२	

११०° श० पर यह १ मिनट में अभिसाधित हो जाता है।

आक्षीर को वलकनीकृत कर सकते हैं अथवा आक्षीर के रवर से बने सामानों को वलकनीकृत कर सकते हैं। आक्षीर को वलकनीकृत करने की रीति जब से निकली है, तब से यह विधि सुविधाजनक समझी जाती है। वलकनीकृत आक्षीर से जो सामान बनते हैं, वे सूख जाने पर ज्यों-के-त्यों उपयुक्त हो सकते हैं। फिर उन्हें वलकनीकृत करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आक्षीर का वलकनीकरण अल्कली पौलिसलफाइड या महीन गन्धक के साथ दबाव में गरम करने से होता है। पार-त्वरकों से यह काम और सरल हो जाता है।

सामान्य आक्षीर से बने सामानों का वलकनीकरण उष्ण वायु अथवा उबलते जल में होता है। वलकनीकरण के सब सामान आक्षीर में पहले से ही मिला दिये जाते हैं।

थोड़े समय में १०० से २००°श० तक गरम करने से ही वे वलकनीकृत हो जाते हैं। उच्च आवृत्ति और अधोरक्त किरण विधि का भी उपयोग अच्छा समझा जाता है।

आक्षीर से थैले, सर्जन के दस्ताने, घरेलू दस्ताने, वैलून, जूते, स्नान की टोपियाँ, रोग-रोधक सामान, चूचुक इत्यादि पतले रवर के सामान आज बनते हैं।

ऐसे सामानों के वनाने के लिए काँच या पोरसीलेन या एल्यूमिनियम या कृत्रिम रेज़िन के प्रारूप की आवश्यकता होती है। इन प्रारूपों को आक्षीर में डुवाकर फिर उसे निकाल कर आक्षीर को वहा लेते हैं। प्रारूप पर जो फिल्म रहता है, उसे निम्न ताप पर ५०°श० से नीचे ही सुखा लेते हैं ताकि उनका असामयिक वलकनीकरण न हो। पहले से वलकनीकृत आक्षीर के लिए तो यह आवश्यक नहीं है।

जिस टंकी में आक्षीर रखकर प्रारूप डुवाया जाता है, जिसका चित्र यहाँ दिया हुआ है, उसमें एक तल होता है जिसमें आक्षीर वहता है। इसी तल में प्रारूप डुवाया जाता है।
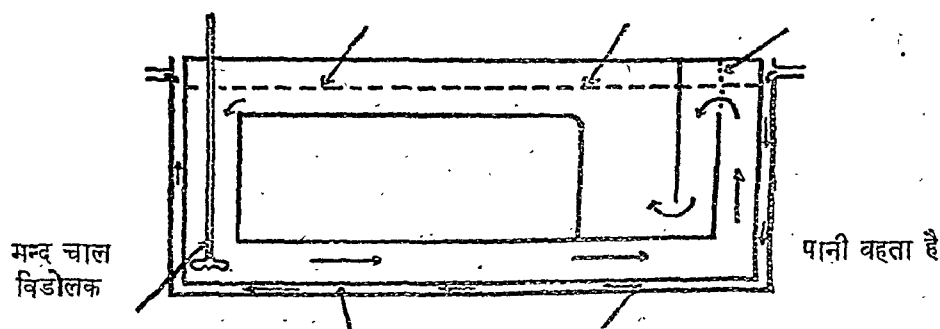
चित्र संख्या १९

इसमें एक विलोडक भी होता है, जो वड़ी मन्द चाल से घूमता रहता है। नीचे के तल में एक निचोल होता है जिसमें ठंडा पानी वहता रहता है। किस दिशा में आक्षीर वहता है, इसका निर्देश चित्र में दिया है।

अनेक पदार्थों के लिए एक निमज्जन पर्याप्त नहीं है। उन्हें वारवार तवतक निमज्जित करना पड़ता है जवतक रवर की पर्याप्त मोटाई की तह न वन जाय। जव पर्याप्त मोटाई की तह वन जाती है तव उसे प्रारूप पर ही उष्ण वायु में वलकनीकृत करते हैं। यदि प्रारूप से हटा लें तो उनका रूप विकृत हो जाने का भय रहता है।

आक्षीरमें डुवाकर वस्तुएँ कैसे तैयार होती हैं, इसका कुछ पता चित्र२०से मिलता है। वैलून, दस्ताना, चूचुक इत्यादि इस प्रकार तैयार होते हैं। यहाँ प्रारूप को उपयुक्त आक्षीर में डुवाते हैं, कुछसमय के वाद प्रारूप को निकाल लेते और अतिरिक्त आक्षीर को वहा देते हैं। प्रारूप पर जो फिल्म रह जाता है, उसे सुखा लेते हैं। सुखाने का ताप निम्नप्रायः ५०°श० से नीचे ही का होना चाहिए। यह प्रारूप काँच, पोर्सालेन, एल्यूमिनियम अथवा कृत्रिम रेज़िन के होते हैं।

वलकनीकरण के वाद टालक या स्टार्च या लाइकोपोडियम को छिड़क कर प्रारूप से निकाल लेते हैं। यदि वलकनीकृत आक्षीर उपयुक्त हुआ है, तो फिर वलकनीकरण की आवश्यकता ही नहीं होती। ज्यों ही फिल्म सूख जाता है, उसे प्रारूप से निकाल लेते हैं।

निमज्जन के लिए निम्नलिखित मिश्रण अच्छा समझा जाता है।

रवर	१००
जिंक आक्साइड	१
जिंक पेन्टा-मेथिलिनडाइथायो कारवेमेट	१
मरकैप्टो बेंज थायजोल	०.२
गन्धक	१
केसीन	१० (१० प्रतिशत विलयन)

११०° श० पर १० मिनटों में उष्ण वायु में अभिसाधित हो जाता है।

ऐसे आक्षीर मजबूत लोहे की टंकियों में जिसमें कांच-इनेमल लगा रहता है और जिसके किनारे उभरे रहते हैं, अच्छी होती हैं। अक्षीर में शर वनने की सम्भावना रहती है। रात भर छोड़ देने पर रवर की पपड़ी वन जाती है। यदि पपड़ी हटा ली जाय तो आक्षीर पतला हो जाता है। रवर की यह पपड़ी फिर आक्षीर में नहीं मिलती।

वायु-मण्डल से आक्षीर में परिवर्तन होता है।

आक्षीर की श्यानता पर भी ताप और आर्द्र का प्रभाव पड़ता है। फिल्म मोटाई वहुत कुछ श्यानता पर निर्भर करती है। चूँकि श्यानता के मापन से आक्षीर की प्रकृति का उतना यथार्थ ज्ञान नहीं होता। इस विधि के निकालनेवाले हैरी वैरोन हैं, जिन्होंने अपनी पुस्तक मोर्डन रवर केमिस्ट्री में उसका वर्णन किया है।

ऊपर कहा गया है कि एक निमज्जन से सन्तोपप्रद सामान नहीं वनता। कई निमज्जन की आवश्यकता होती है ताकि एक के वाद दूसरा फिल्म वन कर सामान पर्याप्त मोटाई का हो जाय; पर प्रत्येक निमज्जन में वुलवुलों और आक्षीर के दोषपूर्ण वहाव से सामान ठीक नहीं वनता। इस कठिनता को दूर करने की चेष्टाएँ हुई उनमें निम्नलिखित विधियाँ उल्लेखनीय हैं—

१. प्रारूप का सछिद्र होना, जिससे प्रारूप पानी को सोखकर फिल्म को मोटा कर देता है।

२. प्रारूप के अभ्यन्तर भाग में शून्यक उत्पन्न करना।

३. प्रारूप पर ऐसे रसायन का लेपन देना जो स्कंधन में सहायक हो। ऐसे पदार्थ ऐसिटिक अम्ल, फौर्मिक अम्ल, एलकोहल, ऐसिटोन, कैलसियम क्लोराइड, कैलसियम नाइट्रेट, कैलसियम फार्मेट, अमोनियम ऐसिटेट और जिंक क्लोराइड है।

४. आक्षीर को स्कंधन-पदार्थों से हृष्करण करना और फिर गरम किये प्रारूप को उसमें डुवाना। पेस्टालोजा ने प्रारूप को ६०° श० तक गरम करके एक निमज्जन में मोटा सामान तैयार किया था।

क्लाइन के अनुसार विभिन्न आक्षीरों से निम्नलिखित मोटाई के फिल्म प्राप्त होते हैं—

	मिलिमीटर
सामान्य आक्षीर में सीधे निमज्जन से	
सान्द्र आक्षीर ” ”	
अविसान्द्र ” ”	

०·४

चूसने की सहायता से निमज्जन से ०·६४

स्कंधक की सहायता से निमज्जन से १·८

वैद्युत्-निक्षेपण से निमज्जन से ३·०

ताप-हृष्कृत आक्षीर में निमज्जन से

आक्षीर का गाढ़ा करना—आक्षीर का गाढ़ा होना आवश्यक है। यदि आक्षीर गाढ़ा नहीं है, तो आवश्यक मोटाई के लिए कई वार प्रारूप को निमज्जित करना पड़ता है। अनेक रीतियों से आक्षीर को गाढ़ा कर सकते हैं।

आक्षीर में एक प्रतिशत जिंक ऑक्साइड सदृश पूरक के डालने से आक्षीर बहुत कुछ गाढ़ा हो जाता है। गोन्द, जेली और पेक्टिन सदृश पदार्थों से भी-केवल १ प्रतिशत से आक्षीर गाढ़ा किया जा सकता है। ट्रैगेकन्थ गोन्द, ग्लू, जिलेटिन, हीमोग्लोबिन सदृश पदार्थ उपयुक्त हुए हैं। कोलायड मिट्टी केओलिन से भी आक्षीर गाढ़ा हो जाता है। कुछ पदार्थ ऐसे हैं जिनसे स्कंधन शीघ्र नहीं होता। कुछ समय के वाद स्कंधन होता है। ऐसे पदार्थों में सोडियम सिलिको-फ्लोराइड और डाइफेनिल ग्वेनिडिन हैं। सोडियम सिलिको-फ्लोराइड के २ प्रतिशत से १५ मिनटों के वाद स्कंधन होता है।

वस्त्रों पर आक्षीर का आवरण भी चढ़ाया जा सकता है। इस के लिए अच्छे धुले वस्त्र को आक्षीर में डुवाकर वेलन पर ले जाते हैं, जिस पर अधिक आक्षीर निचोड़ कर निकल जाता है और वस्त्र अन्य उष्ण वेलनों पर सुखा लिया जाता है। रूई की डोरियाँ टायर के लिए इसी प्रकार वनती हैं। वस्त्रों पर आक्षीर को फैला कर भी ऐसा वस्त्र तैयार हो सकता है। रवर के वरसाती कपड़े इन्हीं रीतियों से आज वनाते हैं। सूत को आक्षीर द्वारा लिये जाकर उष्ण ड्रम पर ले जाते हैं जहाँ सूत सूखकर रवर से हिलमिल जाता है। आवश्यक मोटाई के लिए आक्षीर गाढ़ा और स्थायी होना चाहिए। उसमें गाढ़ा करनेवाला पदार्थ भी डाला हो तो और भी अच्छा होता है—

एक ऐसा मिश्रण निम्नलिखित है।

फैलानेवाला मिश्रण

१००

रवर १००

कैलसियम कार्वोनेट ३

गन्धक २

खनिज तेल १० (१० प्रतिशत विलयन)

केसीन १

सोडियम एल्गिनेट १

जिंक डाइमेथिल डाइथायो कारवेमेट ०·५

डारवन

१२०° श० पर २० मिनटों में अभिसाधित हो जाता है।

वरसाती तैयार करनेवाला मिश्रण

१००

रवर १००

कैलसियम कार्वोनेट
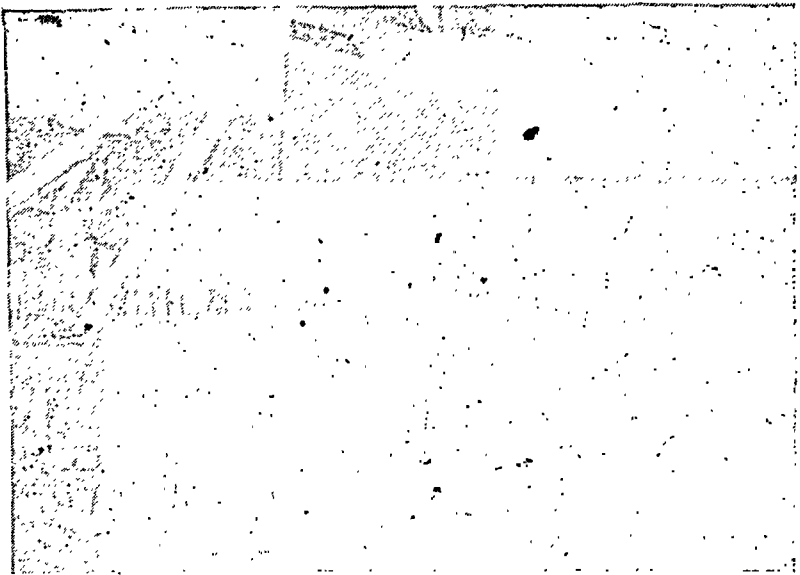
चित्र २०—आचीर में डूबा हुआ सामान

जिंक ऑक्साइड	१०
गन्धक	१
मरकैप्टो वेंजथायोज़ोल	०·५
जिंक डाइमेथिल डाइथायोकारवेमेट	०·५
केसीन	१० (१० प्रतिशत विलयन)

रूई के वस्त्र के अतिरिक्त कागज़, दफ्ती, जूट इत्यादि पर भी इसका आवरण चढ़ा कर उसे जल-अप्रवेश्य वनाया जा सकता है। कृत्रिम चमड़ा भी इससे वन सकता है।

कृत्रिम चमड़ा

रवर	१००
चीनी मिट्टी	४००
जिंक ऑक्साइड	५०
गन्धक	२
खनिज तेल	५
परा-त्वरक	१
केसीन	१०० (१० प्रतिशत विलयन)
जल	२००
रंग	इच्छानुसार

बन्धक—आक्षीर का उपयोग वन्धक के रूप में भी होता है। पीसे हुए चमड़े को आक्षीर से वाँध कर स्तार में वना सकते हैं। कागज़, लकड़ी के बुरादे, लकड़ी के चूर्ण को इससे वाँधा जा सकता है। ऐस्वेस्टस् के तन्तुओं को इससे वाँध कर कुन्दों में वनाते हैं। घोड़े के वालों को वाँध कर घर के सामान गलीचे इत्यादि और सीमेंट को वाँध कर सड़क के सामान तैयार कर सकते हैं।

सूत—आज अक्षीर से ही जेट के द्वारा उसे निकाल कर वल्कनीकृत कर रवर सूत वनाते हैं। ऐसे तागे की मजबूती चर्वित रवर से वने तागे से अधिक होती है। तागे का विस्तार अक्षीर के सान्द्रण, श्यानता और जेट के छेद के विस्तार और आक्षीर के दवाव पर निर्भर करता है। प्रति मिनट में प्रायः ४० फ़ुट तागा इस प्रकार वना सकते हैं। इन तागों के कपड़े सरलता से वनाए जा सकते हैं।

निम्नलिखित सूत्र से अच्छा तागा प्राप्त हो सकता है।

रवर	६२·५
गन्धक	२·५
जिंक ऑक्साइड	२·५
प्रति-ऑक्सीकारक	१०
त्वरक	०·५
अमोनियम ओलिएट	१·०

ये सूत एक स्कंधन पात्र में गिरते हैं जिसमें ऐसा विलयन रखा रहता है, जिसमें ३० प्रतिशत आमोनियम एसिटेट और ६ प्रतिशत ऐसिटिक अम्ल रहता है। यह वाथ सूत को

स्कंधित और जल-वियोजित भी करता है। ज्यों ही सूत पर्याप्त मजबूत हो जाता है, यह निकाल लिया जाता है और ग्लीसिरिन वाथ में लिए जाने से वल्कनीकृत हो जाता है। कुछ और विधियाँ भी ज्ञात हैं जिनसे सूत ही नहीं वरन रवर की नलियाँ, और समुद्री तार इत्यादि भी बनाये जा सकते हैं।

स्पंज—आक्षीर से आजकल पर्याप्त मात्र में स्पंज बनाया जाता है। चर्वित रवर से स्पंज बनाना बहुत कुछ कठिन है। इससे आजकल आक्षीर से स्पंज बनाया जाता है। स्पंज बनाने के लिये रवर में मार-मार कर फेन पैदा करते हैं। फेन पैदा करनेवाले कुछ पदार्थ साबुन या सैपोनिन भी उसमें डाल देते हैं। मार-मार कर और वायु को बहा कर फेन पैदा करते हैं। मारने के पहले आक्षीर में वल्कनीकरण पदार्थ भी डाल देते हैं। ढाँचे में ढालने के पहले कुछ विलम्बन स्कंधक (सोडियम सिलिको फ्लोराइड) भी डाल देते हैं। अब इसे ढाँचे में ढाल कर जमने के लिए रख देते हैं। जम जाने पर उष्ण जल में इसे वल्कनीकृत करते हैं। इसके लिए उपयुक्त मिश्रण यह है—

रवर	६२ (आक्षीर के रूप में)
गन्धक	२·५
त्वरक	०·५
खनिज तेल	०·५
पोटैसियम हाइड्राक्साइड	०·३
ओलियिक अम्ल	०·१५
अमोनियम ओलियेट	०·५
सोडियम सिलिको फ्लोराइड	१·०

ऐसा रवर गद्दा-गद्दी, तकिया इत्यादि अनेक घरेलू सामान तैयार करने में उपयुक्त हो सकता है। यदि इसमें गन्धक की मात्रा अधिक हो तो उससे स्पंजी काँचकड़ा भी बन सकता है।

चित्र-सं० २१
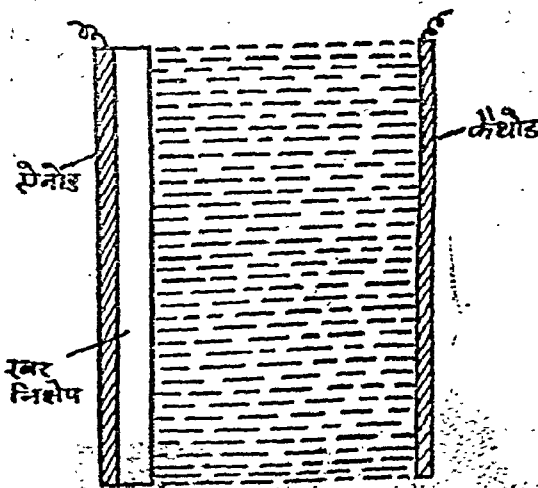
पेस्टालोजा ग्लू को साबुन के साथ मार-मार कर फेन तैयार कर उसे आक्षीर के साथ मिलाकर वल्कनीकृत करके सुन्दर एकसा स्पंजी रवर तैयार किया था।

अतिसूक्ष्म स्पंजी रवर तैयार हुआ है जिसके सुषीर ०·४ म्यू के होते हैं। यदि स्पंज ५ प्रतिशत सछिद्र हो तो प्रति घन सेंटीमीटर में ५० करोड़ सुषीर होते हैं।

वैद्युत्-निक्षेप—जिस प्रकार धातुओं का वैद्युत् निक्षेप होता है उसी

प्रकार रवर का भी वैद्युत् निक्षेप हो सकता है; क्योंकि रवर के कण ऋण विद्युत् से आविष्ट होते हैं और विद्युत् प्रवाह से धनाग्र की ओर गमन कर घना कण वना कर स्कंधित हो जाते हैं। इस रीति से वड़ी मात्रा में रवर के स्तार प्राप्त किये गये हैं। रवर का निक्षेप प्रति एम्पीयर मिनट ३ ग्राम होता है। धातुओं को रवर से आच्छादित करने के लिए यह विधि विशेष रूप से सुविधाजनक सिद्ध हुई है। धनाग्र और आक्षीर के वीच में सछिद्र प्रारूप को रखकर वहुत पेचीले पदार्थ, जो निमज्जन से नहीं वन सकते, इस रीति से वनाये जाते हैं। ऐसा रवर अधिक मजवूत होता है और उसमें जीर्णन का गुण भी अच्छा होता है।
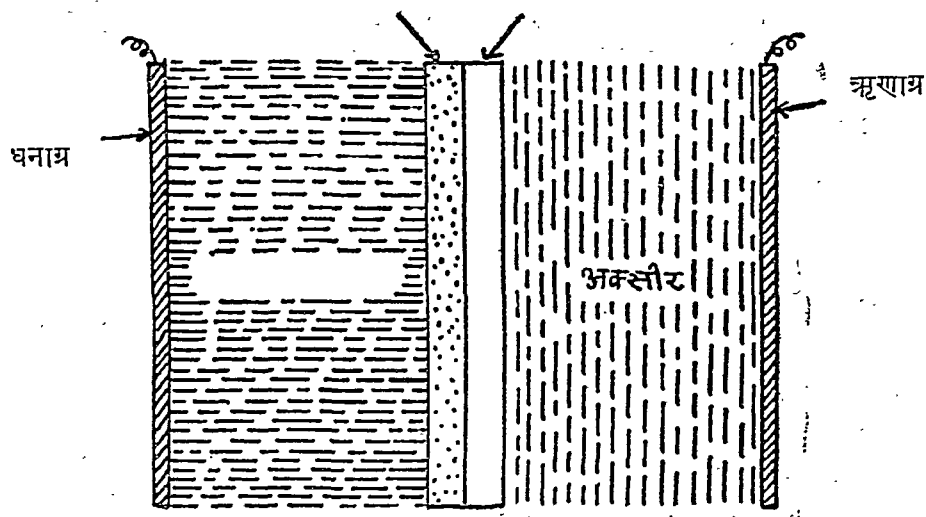
चित्रसं० २२

आक्षीर से पहले ढालवें पदार्थ नहीं वनते थे; क्योंकि ऐसे पदार्थों के सुखाने में कठिनता थी। पर अव ढालवे पदार्थ भी सरलता से वन सकते हैं।

सीमेंट के साथ आक्षीर और अन्य पदार्थों को मिलाकर कड़ा पदार्थ तैयार कर सकते हैं जिसके अनेक पदार्थ सरलता से जोड़े जा सकते हैं। इसके सहयोग से मकान की छत, गच और सड़क तक वन सकती हैं। ऐसे तल चिकने, धूलरहित, शब्दरहित और जल्दी नहीं घिसने-वाले होते हैं। सोडियम सिलिकेट के डालने से उसे गाढ़ा कर सकते हैं। ऐसे मिश्रण के कुछ नमूने यहाँ दिये जा रहे हैं।

सव मिश्रण में एल्यूमिनियम सीमेंट	१०० भाग
५० प्रतिशत आक्षीर	१०० भाग

	संयोजक अवयव	मिश्रण की दशा	उपयोग का समय	जमने का समय
१	सैपोनिन १ वबूल की गोंद ३ जल २५	गाढ़ा शर	४ घंटा	३ से ६ दिन
२	कैलसियम क्लोराइड ४ केसीन १ सोडियम सिलिकेट १ जल ४२	कड़ा पिष्टी	१ घंटा	२० घंटा से कम

३	पोटैसियम हाइड्रॉक्साइड २५ वबूल गोन्द १ सोडियम सिलिकेट १ जल २६	शर (पतला)	१½ घन्टा	१ से २ दिन
४	पोटैसियम हाइड्राक्साइड २·५ सैपोनिन ०·२५ साडियम सिलिकेट १·२ जल २६	वहुत पतला शर	१½ घन्टा	२४ घंटे के लगभग
५	कैलसियम हाइड्रॉक्साइड २·५ केसीन ३·५ जल ४०	चिकना गाढ़ा	¾ घन्टा	३ से ५ दिन
६	कैलसियम हाइड्रॉक्साइड १०·५ सोडियम सिलिकेट ४·५ केसीन १·२ जल ३३	पतला शर	१ घंटा	२४ घंटे के लगभग
७	कैलसियम सायनामाइड २०·५ केसीन २·२ जल ३५	गाढ़ा शर	४० मिनट	२ से ३ दिन
८	कैलसियम सायनामाइड १०·५ सोडियम सिलिकेट १ जल ३६	पतला शर	प्रायः २० मिनट	१ से ३ दिन

इन उपयोगों के अतिरिक्त डिब्बों को बन्द करने में, कागज़ के निर्माण, इत्यादि अनेक और कामों में आक्षीर उपयुक्त होते हैं।

आक्षीर से बने पदार्थ कच्चे रबर से भी तैयार हुए हैं; पर वे उतने अच्छे नहीं प्रमाणित हुए हैं।

सोलहवाँ अध्याय

रबर का पुनर्ग्रहण

रबर के कारखानों में काँट-छाँट से कुछ रबर नष्ट हो जाते हैं। कुछ रबर के सामान आवश्यक प्रमाण के नहीं होते, इस कारण उन्हें छोड़ देना पड़ता है। कुछ रबर वल्कनीकरण में झुलस जाते हैं और कुछ रबर उचित प्रमाण के नहीं बनते। कुछ रबर के सामान प्रारम्भ में खराब हो जाते हैं। कुछ रबर के सामान रखे-रखे भी क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। इन सब रबरों को इकट्ठा करके पुनः काम में लाने की चेष्टाएँ हुई हैं।

रबर के सामान साधारणतया दो वर्ष से अधिक नहीं टिकते। उनके कड़े हो जाने से उनमें दरारें पड़ जाती हैं और वे फट जाते हैं। ऐसे सामान साधारणतया फेंक दिये जाते हैं। ऐसे रबरों में मोटर गाड़ियों, बसों और ट्रकों के टायर और ट्यूब, बाईसाइकिल के टायर और ट्यूब, सरजरी के सामान इत्यादि हैं। एक वैज्ञानिक का मत है कि कच्चे रबर का एक तृतीयांश फिर कारखाने में लौट आता है। ऐसे रबर दो प्रकार के होते हैं। कुछ रबर सूतों पर जमाये होते हैं और कुछ शुद्ध रबर के रूप में रहते हैं।

ऐसे नष्ट हुए रबरों को इकट्ठा कर उन्हें उपयोग में लाने को रबर का पुनर्ग्रहण या उपादेयकरण कहते हैं। गत युद्ध के समय जब प्राकृतिक रबर की कमी हो गई, तब रबर के पुनर्ग्रहण की बड़ी आवश्यकता प्रतीत हुई और इसके प्रयत्न हुए। ऐसे रबर को काम के योग्य बनाने के अनेक प्रयत्न जर्मनी, इङ्गलैंड और अमेरिका में हुए हैं। आज अनेक देशों में ऐसे रबर के पुनर्ग्रहण के कारखाने खुले हैं और उनमें पुनर्ग्रहण का सफल प्रयत्न हो रहा है।

पुराने रबर आजकल जूतों आदि पर लगाने के लिए, साइकिल के टायर और मोटर गाड़ियों क टायर से प्राप्त होते हैं। जब वे काम के योग्य नहीं रहते, तब केवल उनके बाहर क अंश खराब हो जाते हैं। सारा-का-सारा रबर खराब नहीं होता। भीतर के अंश तो बहुत-कुछ अच्छी अवस्था में ही रहते हैं। रबर के सामानों के प्रयोग से केवल उनका बाह्य तल क्षतिग्रस्त हो जाता है। सारा-का-सारा भाग क्षतिग्रस्त नहीं होता।

पुनर्ग्रहित रबर के अनेक उपयोग है। ऐसे रबर को महीन पीसकर कच्चे रबर के साथ मिलाकर पूरक का काम लेते हैं। इस काम क लिए रबर को महीन पीसने की आवश्यकता होती है। हर कारखाने में पीसने की ऐसी चक्की नहीं होती; क्योंकि इस काम के लिए चक्की कीमती और भारी होती है। बड़े-बड़े रबर के कारखानेवाले ही पीसने की ऐसी चक्की रख सकते हैं।

ऐसे रबर का जो व्यवासय करते हैं, वे हाथों से भिन्न-भिन्न प्रकार के रबरों को अलग-अलग करते हैं। कपड़ेवाले रबर को एक साथ रखते हैं। ऐसे रबर में टायर, बूट, जूते, नलियाँ, बरसाती कपड़े इत्यादि हैं। बिना कपड़ेवाले रबर को जैसे ट्यूब, टायर, वायु-थैले इत्यादि को अलग रखते हैं। ऐसे रबर का मूल्य रबर की वास्तविक मात्रा और परिरक्षण परिस्थिति पर निर्भर करता है। पुनर्ग्रहित रबर का संघटन एक-सा नहीं होता। ऐसे रबर का भारी दोष शीघ्र जीर्णन होना है। ऐसे रबर से चुम्बक द्वारा लोहे के टुकड़े, काँटी इत्यादि निकाल लिये जाते हैं। ऐसा रबर सस्ते सामानों के तैयार करने में ही उपयुक्त होता है, जिनमें जीर्ण होने का अधिक महत्त्व नहीं है।

पुनर्ग्रहित रबर अकेले इस्तेमाल नहीं होता। यह नया रबर के साथ मिलाने के लिए ही उपयुक्त होता है। सस्ता होने के कारण सस्ते-हलके पूरक के लिए काम आता है। जहाँ वितान अक्षमता और अपघर्षण प्रतिरोधकता का प्रश्न है, वहाँ तो यह पुनर्ग्रहित रबर उपयुक्त ही नहीं हो सकता।

जिस रबर में अधिक कोमलकारिता और सुनम्यकारिता है, उसके साथ तो यह शीघ्र मिल जाता है; पर जिसमें अधिक पूरक मिला हुआ है, उसकेसाथ मिलने में कठिनता होती है। पुनर्ग्रहित रबर के उपयोग में अनेक दोष हैं। उसके गुण का ठीक-ठीक पता नहीं रहता है। वह शीघ्रता से जीर्ण भी हो जाता है। भिन्न-भिन्न नमूनों के व्यवहार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। कोमलकारकों और सुनम्यकारकों की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। इनके समावयव मिश्रण कुछ कठिनता से प्राप्त होते हैं। इनके भौतिक गुण अच्छे नहीं होते और अपघर्षण-प्रतिरोधकता कम होती है। यह जल्दी फटता भी है। इन दोषों के होते हुए भी इसका उपयोग बहुत विस्तृत है।

ये पुनर्ग्रहीत रबर टायर बनाने, जूतों के तलवे और एड़ियों के बनाने, मोटरकार के कोचों के बनाने, बच्चों के खिलौनों और गाड़ियों के टायर बनाने, बागीचों के पानी-नलों के बनाने और दूकान की काली-काली चटाइयों के लिए उपयुक्त होते हैं। मोटरकार की चटाइयों और दफ्ती में भी काम में आते हैं। इनका बैटरी के बक्स और अन्य उपयोगों के लिए काँच-कड़ा बनता है।

पुनर्ग्रहीत रबर को आबीर के साथ मिलाकर बैटरी के पट्ट, जार, डोरी, अवरोधी टाटी इत्यादि बनते हैं। बिटुमिन के साथ इसकी गच भी बनती है। ऐसे रबर से सड़क के सामान बनते हैं। यह पिच या कोलतार के साथ मिलाकर सड़क पर बिछाया जाता है। पुनर्ग्रहित रबर का भंजक आसवन भी हुआ है। इससे जो तेल प्राप्त हुआ है, वह इन्जन में जल सकता है और उपस्नेहन का काम दे सकता है। एल्यूमूनियम क्लोराइड के साथ आसवन से जो तेल प्राप्त होता है, वह विलायक और उपस्नेहन के लिए काम आ सकता है। पुनर्ग्रहित रबर की मांग बहुत बढ़ गई है। इसकी प्रायः २५०,००० टन प्रतिवर्ष की खपत है। कच्चे रबर की खपत का यह प्रायः २५ प्रतिशत है तथा आज यह एक महत्त्व का उद्योग बन गया है। इससे रबर के मूल्य में स्थायीपन लाने में बड़ी सहायता मिली है।

पुनर्ग्रहित रबर—रबर के निर्माण में एक प्रामाणिक संयोजक पदार्थ समझा जाता है। पहले यह रबर का प्रतिस्थापक समझा जाता था और रबर को सस्ता करने के लिए उपयुक्त होता था; पर आज ऐसा नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह आज रबर के विधायन में

पद-पद पर सहायता करता है। कृत्रिम रबर में यह सुनम्यकारक और विधायनकारक साबित होता है।

यह पुनर्ग्रहीत रबर अनेक पदार्थों के निर्माण में कच्चे रबर या अन्य पदार्थों के उपयोग के बिना भी काम आ सकता है। ऐसे रबर की वितान-क्षमता, दैर्घ्य, अपघर्षण-प्रतिरोधकता कच्चे रबर की तुलना से अवश्य ही कम होती है। पर अनेक व्यापार के सामानों के लिए ये गुण आवश्यक नहीं हैं। आवाज़ कम करने, आघात और कम्पन के अवशोषण के लिए, मोटरकार की खिड़कियों की प्रसीता और इसी प्रकार के कामों के लिए उपर्युक्त गुणों का अच्छा होना कोई आवश्यक नहीं है।

इसके विस्तृत उपयोग में इसका रंग बाधक है। पुनर्ग्रहीत रबर का रंग प्रधानतया काला होता है; क्योंकि यह पुराने टायरों से प्राप्त होता है। इस कारण यह काले सामानों के तैयार करने में ही उपयुक्त होता है। पुनर्ग्रहीत रबर बहुत कम सफ़ेद अथवा रंगीन होता है। ऐसे रबर से रंगीन पदार्थों के निर्माण में कठिनता होती है। अधिकांश पुनर्ग्रहीत रबर टायरों के बनाने में लगता है। कितना पुनर्ग्रहीत रबर किस प्रकार के सामान तैयार करने में लगता है, वह निम्नलिखित आँकड़ों से पता लगता है—

टायर	४५ प्रतिशत तक
टायर के काय	६० „ „
ट्यूब	३० „ „
जूता	१० से २५ तक
इबोनाइट	४० „ „
पानी के नल	१० से ४० प्रतिशत
बैटरी के पात्र	३५ से ४५ „
बच्चों की और खिलौने गाड़ियों के टायर	३० से ५० „
जूतों के तलवे और एड़ियाँ	४० से ५० „
कार की चटाइयाँ, अन्य भाग	४० „ ६० „

पुनर्ग्रहीत रबर में कुछ लाभकारी गुण भी हैं। ये रबर पर सुनम्यकरण प्रभाव पैदा करते हैं। मिश्रण और विधायन में सहायक होते हैं और इनके सहयोग से निम्न ताप पर ही काम चल जाता है। रम्भ और नली बनाने में यह बहुत सहायक होता है। बहाव में इससे सहायता मिलती है। साँचे से निकलने पर यह कम फैलता है। बहाव इसका ऊँचा होता है। इसमें त्वरकों और प्रति-ऑक्सीकारकों से वलकनीकरण में सरलता होती है। दोष है तो यही कि प्रत्यास्थता, वितानक्षमता, अपघर्षण-प्रतिरोधकता कम होती है। इसका जीर्णन जल्दी हो जाता है। बिना कच्चा रबर मिलाये पुनर्ग्रहीत रबर का उपयोग हो सकता है; पर ऐसे सामान निम्नकोटि के होते हैं।

रबर का पुनर्ग्रहण वस्तुतः रबर में सुनम्यता और कुछ सीमा तक प्रत्यास्थता लाना है। पुनर्ग्रहण में कुछ सेल्यूलोज और कुछ मुक्त गन्धक निकल जाते हैं। अन्य सभी पदार्थ उसमें रह जाते हैं। पुराना क्षतिग्रस्त रबर बहुत सस्ता होता है। प्रधानतया टायर

के रूप में यह आता है। ऐसे रबर में बहुत कुछ सेल्यूलोज़ रहता है। सूत सेल्यूलोज़ के ही बने होते हैं। यह सेल्यूलोज क्षारों से निकाला जा सकता है। टायर के पुनर्ग्रहण से उसके भार का प्रायः ४० प्रतिशत निकल जाता है।

रबर ताप का कुचालक होता है। इस कारण इसके उपादेयकरण में इसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने की विशेष आवश्यकता पड़ती है; पर ये टुकड़े बहुत छोटे-छोटे भी नहीं होना चाहिए, नहीं तो उससे बहुत चिपचिपा पिंड बन जाता है। पुराने रबर से पहले गुटिकाएँ निकाल लेते हैं। यह काम भारी दो बेलनवाली चक्की से होता है, जिसे क्रैकर कहते हैं। पीछे यदि आवश्यक हो तो फिर पीसते हैं। ऐसे पीसे टुकड़ों से चुम्बकीय पृथक्कारक द्वारा लोहे के टुकड़ों को निकाल लेते हैं। सेल्यूलोज़ को दूर करने के लिए या तो उसे विनष्ट करते या घुलाकर विलेय बनाकर निकालते है।

रबर के पुनर्ग्रहण के अनेक तरीके हैं, जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

१. क्षार से पाचन-विधि
२. जल से पाचन-विधि
३. अम्ल-विधि
४. भाप-तापन-विधि
५. कड़ाह विधि
६. विलायक विधि
७. यांत्रिक विधि

सेल्यूलोज़ को दूर कर रबर में सुनम्यता लाने के लिए पुराने रबर को सोडियम हाइड्रॉक्साइड के बहुत उष्ण विलयन के साथ दबाव में पकाते हैं। रबर को भाप-निचोलित पाचक में रखते है जिसमें विलोडक रहता है। यह वस्तुतः दबाव-तापक (ऑटोक्लेव) होता है।

पीसे रबर को सोडियम हाइड्रॉक्साइड और अल्पमात्रा में कोमलकारक मिलाकर दबाव में गरम करते हैं। काला टायर का पुनर्ग्रहण शोएफ के अनुसार इस प्रकार होता है—

भाप-दबाव	सन्निकट ताप	तपाने का समय	१००० पाउण्ड पुराने रबर में सोडा की मात्रा पाउण्ड में
१२५	३५३° फ.	३४–३६ घंटा	१३०–१४०
१५०	३६६° फ.	१४–२० घंटा	१३०–१३५
१६५–२००	३८५–३८८°फ०	८–१४ घंटा	१२५–१३०

इससे सेल्यूलोज़ विलेय हाइड्रो-सेल्यूलोज़ में परिणत हो जाता, मुक्त गन्धक निकल जाता और रबर सुनम्य हो जाता है। इसमें कोमलकारक पदार्थ जो उपयुक्त होते हैं, वे तेल, चीड कोलतार, पैराफिन, ऐस्फल्ट, उच्च क्वथनांकवाले सौरभिक आसुत इत्यादि हैं। उच्च ताप और अधिक समय तक गरम करने से सुनम्यता और चिपचिपाहट बढ़ जाती है। मोटे टायरों के लिए अधिक समय लगता है; क्योंकि वे साधारणतया कम जीर्ण और अधिक चीमड़ होते हैं। प्रायः २०० पाउण्ड प्रतिवर्ग इंच दबाव पर ८ से ३० घंटा लगता है। सोडियम हाइड्रॉक्साइड की मात्रा अधिक-से-अधिक १६ प्रतिशत उपयुक्त हो सकती है। इसे धोकर निकाल लेते हैं। इससे क्षार के पुनः प्राप्ति की कोई रीति नहीं निकली है। इससे यह सब नष्ट हो जाता है।
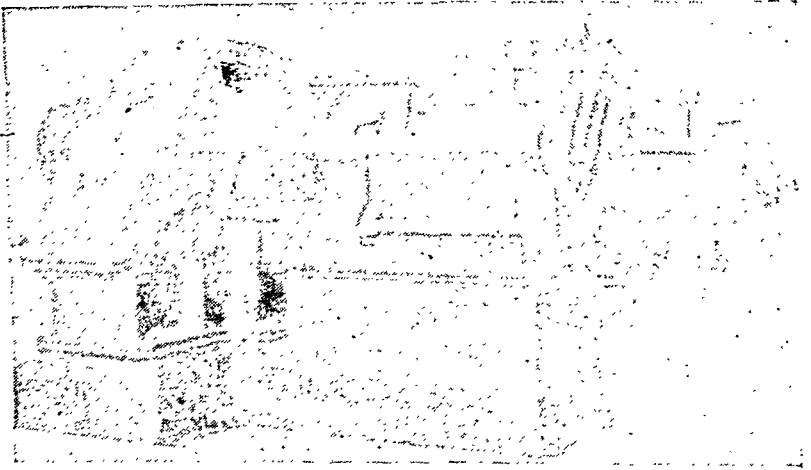
चित्र २२ (क)—पुनर्गृहीत रबर चक्की में पीसा जा रहा है
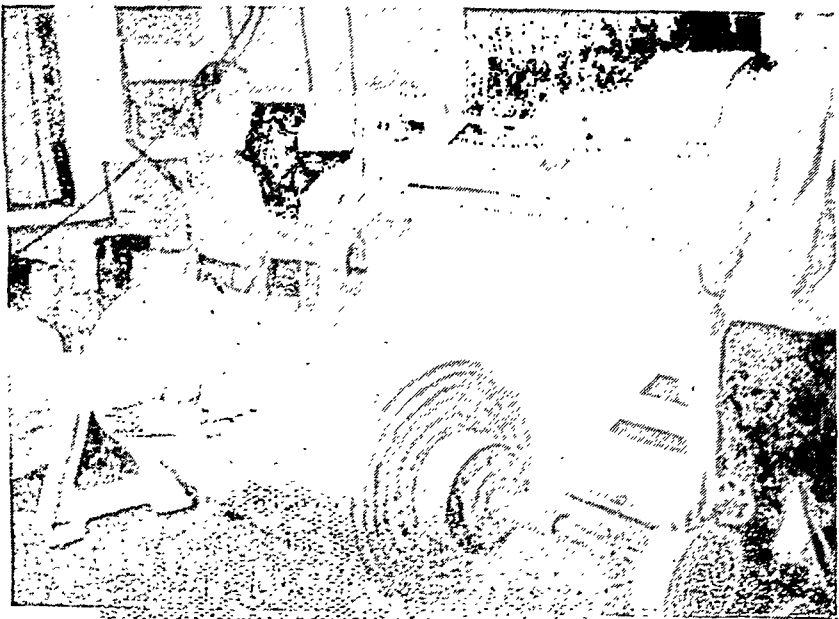
चित्र २२ (ख)—पुनर्गृहीत रबर ड्रम में लपेटा जा रहा है

एक पौंएड ऐसे रवर के प्राप्त करने में १·७५ पाउएड पुराना टायर, ०·१६ पाउएड सोडियम हाइड्रॉक्साइड, ५ पौंड भाप और ०·६ किलोवाट प्रति घएटा विजली लगती है।

पाचक से उत्पाद के निकाल लेने पर पानी को वहा लेते और फिर उसे वार-वार पानी से धोते हैं। इससे वचा हुआ सोडियम हाइड्रॉक्साइड और वना हुआ सलफ़ाइड और पोलिसलफ़ाइड सव निकल जाते हैं।

धोने के वाद पानी का कुछ अंश दवाकर और केन्द्रापसारित कर निकाल लेते हैं। शेप जल जो वच जाता है—प्रायः ३० प्रतिशत वच जाता है, उसे अविरत पट्ट शुष्क-कारक में सुखा लेते हैं। उसमें उष्ण वायु का प्रवाह वहता है। ताप ६०–१२०° श० रहना चाहिए। इससे ऊपर १५०° के ऊपर जाने से पदार्थ का विपुरुभाजन अधिक होता है। उसमें ८ प्रतिशत पानी रहना चाहिए। पूरा सुखाना ठीक नहीं है।

ऐसे सूखे रवर को अव चक्की में ले जाकर शिलपट्ट में परिणत करते हैं। यदि कुछ अन्य पदार्थ डालने की आवश्यकता हुई तो यहाँ ही डालते हैं। इसके वाद इसे छानते और शुद्ध करते हैं। छानने की मशीन एक सामान्य मशीन होती है, जिसमें महीन जालियाँ लगी रहती हैं। उन्हीं जालियों से छानने पर वड़े-वड़े टुकड़े या धातुओं के टुकड़े निकल जाते हैं। घर्षण से जो ताप उत्पन्न होता है, उससे रवर में सुनम्यता आ जाती है।

अव इसके संशोधन के लिए इसे एक संशोधन चक्की में ले जाते हैं। वस्तुतः यह एक मिलानेवाली चक्की है, जिसके दो वेलन जुटे हुए रह कर ०·००५ इञ्च कणों की मोटाई में परिणत कर देते हैं। इसमें ताप प्रायः ६०° श० रहता है। इससे कड़े अविकृत कण निकल जाते हैं। अव इसे एक ड्रम पर लपेट सकते हैं। जव उचित मोटाई की तह हो जाती है, तव शिलापट्ट में काट लेते हैं।

जलपाचन—पुराने रवर में यदि वस्त्र या सूत नहीं है तो ऐसे सामानों में केवल जल के साथ दवाव में गरम कर उसका उपादेयकरण कर लेते हैं। यहाँ उतना धोने की भी आवश्यकता नहीं होती। यहाँ केवल गरम करने से वलकनीकृत रवर सुनम्य हो जाता है।

अम्ल विधि—अम्लविधि में पुराने रवर को प्रवल सलफ्यूरिक अथवा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ खुले पात्र में उवालते हैं। इससे सेल्यूलोज़ के जल का विच्छेदन हो जाता है। अम्ल और जल-विच्छेदित पदार्थ धोकर निकाल लिये जाते हैं। उत्पाद को गरम कर छानकर और शुद्ध कर सुनम्यरूप में प्राप्त करते हैं। इस विधि में दोप यह है कि अम्लों का लेश रह जाता है जो वल्कनीकरण में वाधक होता है। इस पर भी यह विधि उपयुक्त होती है; क्योंकि ऐसा पुनर्ग्रहीत रवर समुद्री तार के लिए अच्छा समझा जाता है।

भाप-तापन विधि—टायर को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर अतितप्त भाप के प्रति वर्ग इंच पर ७० पाउएड दावाव में २½ घंटे गरम करते हैं। ताप प्रायः २६०° श० तक पहुँच जाता है। विद्युत द्वारा भी गरम कर सकते हैं। २६०° श० पर केवल एक घंटा रखते हैं। १५ मिनटों में जल से शीतल कर दवाव को हटा लेते और कड़ाह को खोलते हैं। इस उपचार से रूई का वस्त्र पूर्णतया झुलस जाता है और रवर पूर्णतया सुनम्य हो जाता है। उत्पाद को पीसकर ४० अक्षि जाली में छान लेते हैं।

कड़ाह विधि—इस विधि में झुलसानेवाला और सुनम्यकारक पदार्थ डालते हैं। झुलसानेवाले पदार्थ के लिए अमोनियम परसलफेट का २ प्रतिशत, २० प्रतिशत विलयन के रूप में, डालते हैं। रबर पर इसे छिड़ककर खूब मिलाते हैं। फिर पैराफिन तेल का ५ प्रतिशत जिसमें गरी के तेल का वसाअम्ल २ प्रतिशत और नैफथलीन का २ प्रतिशत घुला हुआ है, सुनम्यता के लिए डालते हैं। ऐसे मिश्रण को ४ इंच गहरे कड़ाह में भाप के प्रति वर्ग इंच १५० पाउण्ड दबाव पर (प्रायः १८०° श०) तीन घंटे गरम करते हैं। सुखाने के बाद उत्पाद को पीसते हैं। इसमें तब १० प्रतिशत उच्च क्वथनांक वाले पेट्रोलियम आसुत डालकर ४० अक्षि-जाली में छान लेते हैं।

इस रीति से प्राप्त पुनर्ग्रहीत रबर उत्कृष्ट कोटि का होता है। इसमें कम खर्च पड़ता है। उत्पाद की प्राप्ति अच्छी होती है। इसे २५०° से २८५° श० तक गरम करना पड़ता है।

विलायक विधि—विलायकों से रबर के उपादेयकरण की चेष्टाएँ हुई हैं। पर इसमें सफलता मिली है, ऐसा नहीं कहा जाता है। जिन विलायकों से रबर के घुला लेने की चेष्टाएँ हुई हैं, उनमें बेंज़ीन, टोलिविन, जाइलिन, क्यूमिन, कार्बन बाईसलफाइड, क्लोरोफार्म, कार्बन टेट्राक्लोराइड, हाइड्रोकार्बन, चीड कोलतार विलायक, टरपिन हाइड्रोकार्बन, यूकेलिप्टस तेल, लिमोनिन, ओलियिक अम्ल, अलसी तेल, नैफ्था, पेट्रोल, पैराफिन, नैफ्थलीन, फीनोल, क्रियो-सोल, रेजिन, रबर आसुत, आदि उल्लेखनीय हैं। उष्णता की सहायता से इन सबमें वल्कनीकृत रबर परिक्षिप्त हो जाता है; पर जिस ताप पर यह विलायक घुलता है वह इतना ऊँचा होता है कि रबर बहुत कुछ टूट जाता है। फिर विलायक के निकालने की कठिनाई है; क्योंकि विलायक कीमती होते हैं और उनका नष्ट हो जाना व्यवसाय की दृष्टि से ठीक नहीं है। विलायकों का रबर के साथ रहना भी ठीक नहीं है।

वाष्पशील विलायकों को तो आसवन से अलग कर सकते हैं। दूसरे विलायकों को अन्य विलायकों की सहायता से, जिनका रबर पर कोई बुरा असर न हो, जैसे एलकोहल और ऐसिटोन से दूर कर सकते हैं। वस्तुतः वे पदार्थ जो रबर के सुनम्यकरण में सबसे अधिक सहायता करते हैं, सरलता से निकाले नहीं जा सकते।

इस कारण इस विधि में अनेक अड़चनें हैं। रबर टूट जाता है, विलायक नहीं निक-लता। विलायक कीमती भी होता है। कुछ विलायक विषाक्त और ज्वलनशील होते हैं। इस कारण यह विधि सफल नहीं कही जा सकती।

यांत्रिक विधि—बिना उष्णता का प्रयोग किये यांत्रिक विधि से रबर के उपादेयकरण की चेष्टाएँ कुछ देशों में, विशेषतः जर्मनी में, हुई हैं। यह विधि भी सन्तोषप्रद नहीं है। इसमें भी अनेक कठिनाइयाँ और दोष हैं। इस विधि में नष्ट रबर को एक कसी हुई कतरनी में शीतल बेलनों के बीच ले जाने से रबर स्तार में बँध जाता है। जिस नष्ट रबर में रबर की मात्रा और कोमलकारक की मात्रा अधिक होती है वह तो ठीक हो जाता है, पर अन्य नहीं। कत-रनी में घर्षण से पर्याप्त मात्रा में उष्णता उत्पन्न हो कर वायु के ऑक्सिजन की उपस्थिति में सुनम्य हो जाता है, पर यन्त्र पर बहुत जोर पड़ता है। इस प्रकार से प्राप्त स्तार बहुत सुनम्य

नहीं होता, यद्यपि सुनम्यकारकों के डालने से सुनम्यता बहुत बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार से प्राप्त रबर वैसी उच्च कोटि का नहीं होता। पर यह विधि सफलता के साथ कहीं-कहीं उपयुक्त हुई है।

यद्यपि इन विधियों से मुक्त गन्धक रबर से निकल जाता है; पर संयुक्त रबर नहीं निकलता। संयुक्त रबर निकालने की चेष्टाएँ निष्फल हुई हैं। सोडियम और एनिलीन के साथ गरम करके संयुक्त गन्धक निकालने की चेष्टाएँ हुई हैं। ऐसा कहा जाता है कि इस विधि से संयुक्त गन्धक का प्रायः ८० प्रतिशत गन्धक निकल जाता है। पर निकालने की परिस्थिति ऐसी है कि इससे रबर का बहुत कुछ विच्छेदन हो जाता है।

उपादेयकरण में क्षारों के साथ यद्यपि मुक्त गन्धक बहुत कुछ निकल जाता है; पर संयुक्त गन्धक की मात्रा बढ़ जाती है। इससे मालूम होता है कि कुछ सीमा तक इससे रबर का वल्कनीकरण भी हो जाता है।

जिस मशीन में क्षार के साथ मिला कर जीर्ण रबर का पुनर्ग्रहण होता है, उसका चित्र सं० २३ हुआ है। यह मशीन कीमती होती है। इस कारण सब कारखानेवाले इसे काम में यहाँ दिया नहीं ला सकते।

पुनर्ग्रहीत रबर में एकरूपता लाने के लिए उसकी परीक्षाएँ होती हैं और उनमें निम्नलिखित बातों की जाँच होती है—

[१] ऐसिटोन निष्कर्ष
[२] क्लोरोफार्म निष्कर्ष
[३] एलकोहोलीय पोटाश से निष्कर्ष
[४] समस्त और मुक्त गन्धक
[५] सेल्यूलोज़
[६] कार्बनकाल
[७] क्षारीयता
[८] जल-अंश
[९] राख।

इन विधियों का वर्णन विश्लेषण प्रकरण में होगा। ऐसिटोन निष्कर्ष से मुक्त गन्धक का, कोमलकारक का, सुनम्यकारक का और रबर के विच्छेदन का ज्ञान होता है। क्लोराफार्म निष्कर्ष से रबर के विच्छेदन इत्यादि का पता लगता है।

क्षारीय पुनर्ग्रहण से रबर के जल-शोषण की क्षमता बढ़ जाती है, सेल्यूलोज भी पूर्णतः नहीं निकल जाता। पुनर्ग्रहीत रबर के भौतिक गुणों में पर्याप्त परिवर्तन होता है; पर इसका ठीक-ठीक पता लगाना कुछ कठिन है, पुनर्ग्रहीत रबर के निम्नलिखित गुण होते हैं—

विशिष्ट घनत्व	१.१६ से १.२६
जल-अंश	१ प्रतिशत से अधिक नहीं
क्षारीयता (४ घंटा)	०.१५ से अधिक नहीं

ऐसिटोन निष्कर्ष	७ से १० प्रतिशत से अधिक नहीं
एल्कोहोलीय पोटाश निष्कर्ष	२ प्रतिशत से अधिक नहीं
क्लोरोफार्म निष्कर्ष (४८ घंटा)	२० से २८ प्रतिशत से अधिक नहीं
वितान-क्षमता	६०० से १२०० पाउण्ड प्रतिवर्ग इंच
दैर्घ्य	३०० से ५०० प्रतिशत
राख	१८ से २५ प्रतिशत

इन मानों की प्राप्ति के लिए पुनर्ग्रहीत रबर के १०० भाग को ५ भाग गंधक के साथ १४० श० पर २५ मिनटों तक गरम करके तब परीक्षण करते हैं। ऐसे परीक्षण फल में १० प्रतिशत से अधिक अन्तर नहीं आता।

सत्रहवाँ अध्याय

रबर का जीर्णन

हमलोगों का साधारण अनुभव है कि रबर के टायर और ट्यूब रखे रहने पर भी कुछ दिनों में खराब हो जाते हैं। वे पहले कोमल और चिपचिपा हो जाते हैं, फिर धीरे-धीरे कड़े हो जाते हैं और अन्त में फटने लगते हैं। उनकी वितान-क्षमता बहुत-कुछ नष्ट हो जाती है। मजबूत, लचीला, वल्कनीकृत रबर शीघ्र ही कड़ा, भंगुर और दुर्बल हो जाता है। उसकी प्रत्यास्थता नष्ट हो जाती है, वितान-क्षमता कम हो जाती है और वह धीरे-धीरे फटना शुरू होता है। वल्कनीकृत रबर के इस व्यवहार को जीर्णन कहते हैं। जीर्णन के अनेक रूप हो सकते हैं। रबर का ऑक्सीकरण हो जाता है। उसके तन्तुओं में दरारें पड़ जाती है, गरमी और ताँबे या मैंगनीज के संस्पर्श से उसका ह्रास हो जाता है। जीर्णन के अनेक कारण हैं। उनमें ऑक्सिकरण, ताप, सूर्य-प्रकाश, कुछ धातुओं की उपस्थिति और मुक्त गन्धक का रहना प्रमुख है। अति-वल्कनीकरण से भी जीर्णन शीघ्र हो जाता है। जीर्णन रोकने की अनेक चेष्टाएँ हुई हैं।

रबर का सामान शीघ्रता से जीर्ण होता है अथवा देर से, इसके नापने के यन्त्र बने हैं। इन यन्त्रों में रबर की वितान-क्षमता नापी जाती है और उससे जीर्णन का ज्ञान होता है। एक ऐसे यन्त्र का आविष्कार १९२४ ई० में बियेरे और डेविस द्वारा हुआ था। उसका नाम 'ऑक्सिजन बम्ब' है। इस यन्त्र से रबर को ऑक्सिजन के साथ दबाव में गरम करते हैं। उसका ताप ६०° श० और ऑक्सिजन का दबाव ३०० पाउण्ड प्रति वर्ग इंच रहता है।

चित्र संख्या २३

एक दिन से अनेक दिनों तक रबर के समान को इसमें रखकर उसकी वितान-क्षमता को नापते हैं। यन्त्र में एक दिन का रखना बाहर के एक वर्ष के जीवन के बराबर माना जाता है। चूँकि अब रबर में त्वरक और प्रति-ऑक्सीकारक डालते हैं, इससे अब इसमें कई दिनों तक रखने की आवश्यकता होती है। इस कारण इसकी उपयोगिता अब कम हो गई है और इसके स्थान में वायु-बम्ब का उपयोग होता है। इससे परिणाम शीघ्र प्राप्त होते हैं।

वायु-बम्ब में रबर के सामान को कक्ष या बक्स में लटका देते हैं और उच्च ताप पर दबाव में वायु को बहाते हैं। प्रति वर्ग इंच में ८० पाउण्ड दबाव रहता है और ताप १३०° श० तक उपयुक्त हो सकता है। इस यन्त्र में कुछ घंटों में
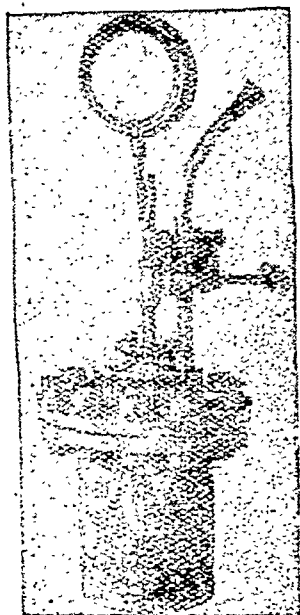
ही परिणाम निकल आता है। गन्धक अधिक रहने से रबर का जीर्णन शीघ्र होता है। २ प्रतिशत से अधिक गन्धक रहने से जीर्णन जल्दी होता है।

ओजोन से रबर का जीर्णन शीघ्र होता है और उसके तल में दरारें शीघ्र पड़ जाती हैं। जहाँ सूर्य-प्रकाश में रबर को खींचकर रखने से उसमें दरारें पड़ने में हफ्तों लग जाता है वहाँ ०·१ प्रतिशत ओजोनवाली वायु में कुछ ही मिनटों में वैसी दरारें दीख पड़ती हैं, दैर्ध्य के अधिक होने से दरारों के विस्तार छोटे होते हैं। दैर्घ्य की डिगरी दरारों की संख्या के अनुपात में होती है। दरारों की संख्या ओजोन के सान्द्रण पर नहीं निर्भर करती, यद्यपि दरारों की गहराई ओजोन के सान्द्रण पर ही निर्भर करती है। ताप का भी दरारों के बनने में पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। आर्द्रता की विभिन्नता से कोई प्रभाव पड़ता नहीं देखा गया है।

ओजोन से ओजोन-प्रतिरोधकता का अच्छे परीक्षण की एक रीति अमेरिका में निकाली गई है। इस यन्त्र में ओजोन की नियमित मात्रा तैयार करते, उस ओजोनयुक्त वायु को आर्द्रता और ताप की विशिष्ट अवस्था में कक्ष में ले जाते, जिसमें परीक्षण के सामान रखे रहते हैं और जहाँ ओजोन सान्द्रण की मात्रा मालूम करने का प्रबन्ध है।

इस उपकरण में कक्षों की श्रेणियों से होकर वायु बहती है। वायु पम्प के द्वारा बहाई जाती है। यह वायु पहले अम्ल-शुष्ककारक में आती है। यह ५०० सी० सी० का एक बोतल होता है, जिसका तृतीयांश सान्द्र सलफ्यूरिक अम्लसे भरा रहता है। उसके बाद वायु एक दूसरे शुष्ककारक में आती है, जिसमें अजल कैलसियम क्लोराइड रखा होता है। वहाँ से वह एक यू-नली में आती है, जिसमें थोड़ा अजल कापरसल्फ़ेट रखा रहता है। इससे पता लगता है कि वायु शुष्क है अथवा नहीं। एक पतली यू-नली बहाव-मापी का काम करती है। यहाँ से वायु ऑजोन-जनक में आती है और वहाँ से परीक्षण कक्ष में। परीक्षण कक्ष ऐसे पदार्थ का बना रहना चाहिए जो ओज़ान से आक्रान्त नहीं होता, और इतना बड़ा होता है कि परीक्षण पदार्थ उसमें अँट सके।

कक्ष के पेंदे में एक छनना होता है, जिसमें दो सछिद्र पट्टों के बीच ऊन रखा रहता है। ओज़ोन पहले यहाँ ही आता है और उससे छनकर कक्ष में प्रविष्ट करता है। इसमें एक ताप मापी रखा रहता है जिसका बल्ब परीक्षण पदार्थ के सन्निकट में रहता है। परीक्षणकक्ष के साथ एक दबाव-मापी भी लगा रहता है, जिससे कक्ष का दबाव सूचित होता है। ओज़ोन का सान्द्रण मालूम करने के लिए कक्ष में एक नमूने का बोतल लगा रहता है, जिसे शिखिपिधा से बन्द कर समय-समय पर निकाल कर ओज़ोन की मात्रा निर्धारित कर सकते हैं।

रबर की नलियों का इसमें इस्तेमाल नहीं होता; क्योंकि रबर ओज़ोन से शीघ्र आक्रान्त होता है।

उपकरण में वायु को पहले प्रवाहित करते हैं। प्रति घंटा १० से २० घनफुट वायु का बहाव रहना चाहिए। परीक्षण कक्ष में वायु-मण्डल से थोड़ा ऊँचा दबाव रहना चाहिए। ओज़ोन का उत्पादन ऐसा होना चाहिए कि वायु में आयतन में ०·०१० प्रतिशत से कम और ०·०१५ प्रतिशत से अधिक ओज़ोन नहीं रहे। कक्ष का ताप स्थाई रहना चाहिए। जब परिस्थिति स्थाई हो जाय तब परीक्षण नमूनों को कक्ष में एक घंटा तक रखे रहने देना चाहिए।

ओज़ोन पोटैसियम आयोडाइड से आयोडीन मुक्त करता है। आयोडीन को सोडियम थायोसलफेट के साथ अनुमापन कर ओज़ोन की मात्रा निर्धारित करते हैं। इसमें स्टार्च के विलयन की कुछ बूदें सूचक के रूप में उपयुक्त होती हैं।

वल्कनीकृत रबर के जीर्णन में ऑक्सिजन का भी हाथ रहता है। ऑक्सिजन के कारण जीर्ण रबर का भार बढ़ जाता है। जीर्ण रबर में वाष्पशील गंधक के यौगिक भी पाये गये हैं। कम गंधित रबर शनैःशनै, अति-गंधित रबर अधिक शीघ्रता से ऑक्सीकृत होते हैं। ऑक्सिजन की क्रिया दो रीतियों से होती है। एक में ऑक्सिजन से रबर विच्छेदित हो जाता है, दूसरे में रबर में ऑक्सिजन मिल (जुट) कर पेरोक्साइड बनता है। यदि ५ प्रतिशत आक्सिजन भी गंधकी रबर में अवशोपित हो जाय तो वितान-क्षमता आधी हो जाती है।

वल्कनीकृत रबर का आक्सिकरण जम्बुकोत्तर प्रकाश में अँधेरे से तिगुना अधिक होता है।

कुछ धातुओं के लवणों की अल्प मात्रा से रबर का जीर्णन शीघ्रता से हो जाता है। रबर पहले चिपचिपा और पीछे कड़ा हो जाता है। ऐसे लवणों में ताँबे, कोबाल्ट और मैंगनीज के लवण हैं। सम्भवतः ये लवण रबर के अम्लों के साथ धातुओं के साबुन बनते हैं और ये साबुन ऑक्सिजन के वाहक का काम कर रबर को शीघ्र जीर्ण बना देते हैं।

यदि रबर तनाव में हो तो ऐसा रबर शीघ्रता से जीर्ण हो जाता है। अधिक गंधकवाला रबर इसमें जल्दी जीर्ण हो जाता है।

रबर के जीर्णन को रोकने के लिए कुछ पदार्थ रबर में डाले जाते हैं। ऐसे पदार्थों को प्रति-ऑक्सिकारक कहते हैं। कुछ त्वरक भी जीर्णन को रोकते हैं।

प्रति-ऑक्सिकारकों से रबर का जीर्णन ही नहीं रोका जाता, वरन् उससे अन्य लाभ भी होते हैं। प्रति-ऑक्सीकारक ऐसा होना चाहिए कि (१) वह सरलता से रबर में परिक्षिप्त हो सके; (२) वल्कनीकरण में वह बाधा न पहुँचावे; (३) वल्कनीकृत रबर के रंग पर उसका कोई प्रभाव न हो; (४) वह विषाक्त न हो और (५) वल्कनीकृत रबर पर उसका लाभकारी प्रभाव पड़े।

प्रति-ऑक्सीकारकों में निम्नलिखित वर्ग के पदार्थ इस्तेमाल होते हैं। ये प्रकाश और ओज़ोन से बचाते हैं।

(१) मोम, (२) फीनोल लचक—अवरोधकता प्रदान करते हैं, (३) प्राथमिक सौरभिक ऐमिन—ये रंग प्रदान करते और विषाक्त होते हैं। (४) एमिन फीनोल और फीनोल-एमिन लवण, (५) एल्डीहाइड अमोनिया, (६) द्वितीयिक एल्केरिल एमिन, (७) प्रतिस्थापित डाइफेनिल, (८) द्वितीयिक नैफ्थलिन एमिन, (९) डाइहाइड्रो क्विनोलिन और (१०) मरकप्टो बेंजिमिडेजोल—इससे रबर का स्वाद बहुत तीता हो जाता है।

कुछ प्रमुख प्रति-ऑक्सीकारक

मोम

हेलियोज़ोन	पाराहाइड्रोकार्बन
सनप्रूफ	”
एज़ेराइटजेल	”

वी० ए० एक्स०	किटोन-एमिन	संघनक उत्पाद

फीनोल

हाइड्रौक्विनोन	
पैराज़ोन	हाइड्रौक्सी बाइफीनोल
आर आर ५	इन्डेनिल-रिसोर्सिनोल

प्राथमिक सौरभिक ऐमिन

रेजिस्टौक्स	पारा-पारा डाइएमिनो डाइफेनिल मिथेन
टोनौक्स	"
नियोजोन	मिटा टोल्बिन डाइएमिन (२५सैं०)
" बी	" (४५सैं०)
" सी	" (८सैं०)
औक्सीनोन	२:४-डाइएमिनो फेनिलएमिन

एमिनो-फीनोल

एन्टौक्स	पारा अमिनो फीनोल (५०सैं०)
सोलक्स	पारा हाइड्रौक्सी-नाइट्रोजन फेनिल पेराफ़िन

फीनोलएमिन लवण

जल्वा	अल्फ़ानैफथोल का एनिलिन लवण

एल्डीहाइड एमिन

रेजिस्टौक्स	क्रोनल्डी हाइड-एनिलिन
एज़ेराइट रेज़िन	एल्डोल-अल्फा-नैफथिल एमिन
नोनौक्स	एसिटल्डीहाइड और अल्फ़ा और बीटा नैफथलिन एमिन प्रतिक्रिया फल

द्वितीयिक एल्केरिल एमिन

स्टेबिलाइट	नाइट्रोजन नाइट्रोजन डाइफेमिल एथिलिन डायमिन

प्रतिस्थापित डाइफेनिल एमिन

एज़ेराइटतेल	मिश्रित टाइटोलिल-एमिन
औक्सीनोन	२:४-डाइएमिनो डाइफेनिल-एमिन
थर्मोफ्लेक्स	पारा पारा-डाइमेथौक्सी डाइफेनिल एमिन

द्वितीयिक नैपथिल एमिन

एज़ेराइ चूर्ण	फेनिल-नैफथिल-एमिन

नियोज़ोन ए	फेनिल-नफथिल-एमिन (५० सें०)
,, बी	,, ,, (१० सैं०)
,, सी	,, ,, (६२ सैं०)
एसिटोन-एनिज़िन प्रतिक्रिया	
एज़ेराइट रीरा	
फ्लेक्टोल ए	२:२:५—ट्राइमेथिल—१:२—डाइहाड्रोक्लिनोलिन
बेंजिमिडेजोल	
प्रति ऑक्सीकारक एमवी	२ मरकैप्टो बेंजिमिडेज़ोल

अठारहवाँ अध्याय

कृत्रिम रबर

कृत्रिम रबर क्या है? इस संबन्ध में कोई सर्वसम्मत मत नहीं है। अँग्रेजी में इसके लिए दो शब्द उपयुक्त होते हैं। एक है सिन्थेटिक और दूसरा आर्टिफिशियल। इन दोनों अंग्रेजी शब्दों के लिए हिन्दी में कृत्रिम शब्द का ही उपयोग होता है। अतः कृत्रिम शब्द दो अर्थों में उपयुक्त होता है। जब हम कहते हैं कि यह कपूर कृत्रिम है, तब उसका अर्थ यही होता है कि यह कपूर, कपूर के पेड़ से न प्राप्त होकर, प्रयोगशालाओं में रासायनिक द्रव्यों से प्राप्त हुआ है। इस कृत्रिम कपूर और पेड़ों से प्राप्त प्राकृतिक कपूर में रसायनतः कोई भेद नहीं है। दोनों के भौतिक और रासायनिक गुण एक-से हैं और उनके संघटन में भी कोई अन्तर नहीं है। कृत्रिम रबर इस कृत्रिम अर्थ में नहीं प्रयुक्त होता। कृत्रिम शब्द का दूसरा अर्थ है ऐसे पदार्थ, जो प्राकृतिक पदार्थों से गुणों में बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं; पर उनके संघटन एक से नहीं हैं। कृत्रिम रबर इसी अर्थ में उपयुक्त होता है। प्राकृतिक रबर और कृत्रिम रबर एक-से संघटन के नहीं होते। प्राकृतिक रबर भी बिलकुल एक-सा गुण का नहीं होता। कृत्रिम रबर भी सब एक से गुण के नहीं होते और संघटन में प्राकृतिक रबर से बिलकुल भिन्न होते हैं। यद्यपि इनमें कुछ ऐसे गुण अवश्य होते हैं, जो प्राकृतिक रबर के गुण से मिलते-जुलते हैं। इस कारण कुछ लोगों ने कृत्रिम रबर के भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। कोई इन पदार्थों को 'एथिनायड रेजिन' कहता है। कोई इन्हें 'थायोप्लास्ट' कहता है। साधारण बोली में आज जितने पदार्थ रबर-से गुण के होते हैं उन्हें कृत्रिम रबर ही कहते हैं। इसके लिए अधिक उपयुक्त शब्द तो होगा संश्लिष्ट रबर; पर यह शब्द कुछ क्लिष्ट है। इस कारण इसका उपयोग मैं यहाँ नहीं कर रहा हूँ।

आज रबर के सदृश अनेक पदार्थ बनाये गये हैं। इनमें अनेक गरम करने से सुनम्य से प्रत्यास्थ तक हो जाते हैं। कुछ पदार्थों में तो गन्धक के अतिरिक्त अन्य पदार्थों से भी यह परिवर्तन हो जाता है। कुछ ऐसे रबर-सदृश पदार्थ भी हैं जिनमें यह परिवर्तन नहीं होता। वे सदा ताप-सुनम्य ही रहते हैं।

यदि कृत्रिम रबर हम उन्हीं पदार्थों के लिए उपयुक्त करें जिनके संघटन प्राकृतिक रबर से मिलते-जुलते हैं तो इसमें केवल एक प्रकार का रबर 'मेथिल ब्यूटाडीन' रबर ही आता है। यदि हम कृत्रिम रबर उन्हें भी कहें, जिनमें प्राकृतिक रबर के प्रमुख भौतिक गुण विद्यमान हैं तो वे सभी पदार्थ आ जाते हैं जो रबर के सदृश होते हैं।

कृत्रिम रवर या संश्लिष्ट रवर के स्थान में इनके अनेक नाम भिन्न-भिन्न लोगों ने प्रस्तावित किये हैं। किसीने इसका नाम कोलास्टिक, लास्टिक, इलास्टोप्लास्ट दिया है तो किसीने इलास्टोप्लैस्टिक, सिनकायड या कुचायड। जो नाम अधिकमान्य समझा जाता है वह है एलास्टोमर। जिस पदार्थ में प्रत्यास्थता का गुण नहीं होता उसे प्लास्टोमर नाम दिया गया है।

एलास्टोमर के निम्नलिखित वर्ग होते हैं—

एलास्टोप्रीन	१ व्यूटाडीन रवर, व्यूना रवर
	२ पिपरीलिन रवर
	३ आइसो-प्रीन रवर
	४–५ डाइमेथिल व्यूटिडिन रवर, मेथिल रवर एच मेथिल रवर डवलू
	६ हैलोप्रीन रवर, नियोप्रीन रवर
लास्टोलीन	पोलिआइसो-व्युटिडीन
	विस्टानेकस, ओपैनोल वी
इलास्टो थायोमर	थायोकोल
इलास्टो प्लैस्टिक	
	प्लौस्टोमर
तापीय प्लैस्टिक	लाह, सेल्युलायड, सेल्युलोज एसिटेट
	वेकेलाइट, ग्लिपटल, फार्मल्डीहाइड यूरिया,
	एक्रिलिक रेजिन

जैकोव ने कृत्रिम रवर को चार वर्गों (१) हैलो-रवर, (२) को-रवर, (३) थायो रवर और (४) प्लास्टो-रवर या रेजो-रवर में विभक्त किया है। दैरोन का प्रस्ताव है कि रवर को इस प्रकार विभक्त करना चाहिए—

१ प्राकृतिक रवर	१ रवर—पेड़ों या लताओं से निकले सव रवर इसमें आ जाते हैं।
	२ रवर के प्राकृतिक समावयव गाटापरचा और वलाट इसमें आ जाते हैं।
२ कृत्रिम रवर	१ एलास्टोमर—इसमें व्यूना-एस, परवुनान, हैकार, चेमीगम नियोप्रीन आ जाते हैं।
	२ इलारिटन—इसमें व्यूटिल रवर आ जाते हैं।
	३ इथेनायड—इसमें पोलिविलीन क्लोराइड, एक्रिलिक एस्टर आ जाते हैं।
	४ थायोप्लास्ट—इसमें गन्धकवाले रवर आ जाते हैं।
	५ इलास्टो प्लास्ट—इसमें वे प्लैस्टिक आ जाते हैं जिनकी प्रत्यास्थता सीमित होती है।

कृत्रिम रवर के निर्माण में निम्नलिखित प्रमुख कार्वनिक पदार्थ इस्तेमाल होते हैं—

१ आइसोप्रीन
२ ब्यूटाडीन
३ डाइमेथिल ब्यूटाडीन
४ क्लोरोप्रीन
५ पिपरिलीन
६ साइक्लोपेन्टाडीन
७ स्टाइरिन
८ मिथाक्रिलिक अम्ल
९ मेथिल मेथाक्रीलेट

आइसोप्रीन—रबर के भंजक आसवन से आइसोप्रीन प्राप्त होता है। आइसोप्रीन को संश्लेषण द्वारा प्राप्त करने की सब चेष्टाएँ अबतक असफल हुई हैं। केवल एक आइसो-एमिल एलकोहल से आइसोप्रीन प्राप्त हो सकता है। आइसो-एमिल एलकोहल किरवन से एथिल एलकोहल तैयार करने की विधि में फ्यूजेल तेल के रूप में प्राप्त होता है। फ्यूजेल तेल के आंशिक आसवन से पृथक् किया जा सकता है। आइसो-एमिल एलकोहल पर हाइड्रोजन क्लोराइड से आइसो-एमिल क्लोराइड बनता है। इसके क्लोरीकरण से डाइमेथिल-ट्राइमेथिलिन क्लोराइड बनता है जो ४७०° ताप पर सोडा-चूना के ऊपर ले जाने से आइसोप्रीन में विच्छेदित हो जाता है।

$$(CH_3)_2\ CH.CH_2CH_2OH \xrightarrow{HCl} (CH_3)_2\ CH\ CH_2\ CH_2Cl \xrightarrow{Cl_2}$$
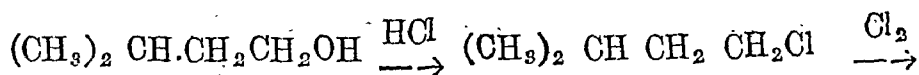
आइसो-एमिल एलकोहल — आइसो-एमिल क्लोराइड

$$(CH_3)_2\ CCl\ CH_2\ CH_2Cl$$

डाइमेथिल-ट्राइमेथिलिन क्लोराइड

$$\longrightarrow CH = \underset{\displaystyle CH_3}{\underset{|}{C}} - CH = CH_2$$
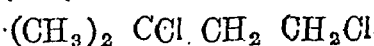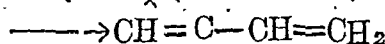
आइसोप्रीन

ब्यूटाडीन—ब्यूटाडीन एलकोहल से प्राप्त हो सकता है। एलकोहल प्राप्त करने की अनेक विधियाँ हैं। भारत में छोये के किण्वन से एलकोहल प्राप्त होता है। यह पर्याप्त सस्ता पड़ता है। अमेरिका में पर्याप्त एथिलिन मिलता है। यह पेट्रोलियम या कोयले के भंजक आसवन से प्राप्त होता है। एथिलिन को सलफ्यूरिक अम्ल के साथ की प्रतिक्रिया से एथिल हाइड्रोजन सलफ़ेट बनता है। इस एथिल हाइड्रोजन सल्फेट के जल-विच्छेदन से एथिल एलकोहल प्राप्त होता है। एथिलिन को अन्य तरीकों से भी एलकोहल में परिणत करने की चेष्टाएँ हुई हैं, जिसमें अविराम रूप में एलकोहल प्राप्त हो सके। एक ऐसी रीति उच्च ताप और दबाव पर एथिलीन को तनु सलफ्युरिक अम्ल की क्रिया से है।

एलकोहल से ब्यूटाडीन—एथिल एलकोहल को ऑक्सीकरण से एसिटल्डीहाइड

में परिणत करते। एसिटल्डीहाइड को फिर एल्डोल संघनन से क्षार की अल्प मात्रा में 'एल्डोल' में परिणत करते हैं।

$$CH_3 CH_2OH + O_2 = CH_3 CHO + H_2O$$

$$CH_3 CHO + CH_3 CHO = CH_3CH(OH)CH_2 CHO$$
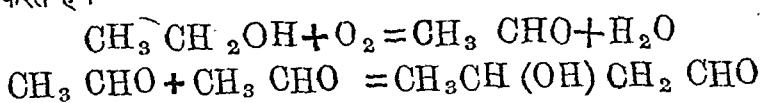
एल्डोल को फिर अवकृत कर ब्यूटिलीन ग्लाइकोल में परिणत करते हैं जिसके निर्जलीकरण से ब्यूटाडीन प्राप्त होता है।

$$CH_3 CH(OH)CH_2CHO \xrightarrow{\text{अवकरण}} CH_3 CH(OH)CH_2CHOH$$

ब्यूटिलीन ग्लाइकोल

$$CH_3 CH(OH) CH_2 CHOH \xrightarrow{\text{निर्जलीकरण}} CH_2 = CH - CH = CH_2$$

ब्यूटिलीन ग्याइकोल ब्यूटाडीन
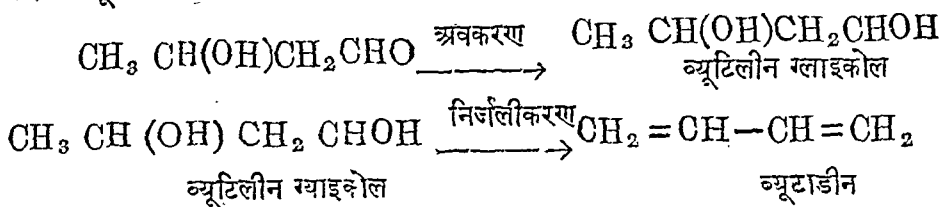
एक दूसरी रीति से भी एथिल एलकोहल ब्यूटाडीन में परिणत हो सकता है। यदि एलकोहल को अलुमिना और जिंक ऑक्साइड उत्प्रेरकों पर ले जायँ तो एलकोहल के निर्जलीकरण और विहाइड्रोजनीकरण से ४००° श० पर और उत्पाद को शीतल करने से ४१ प्रतिशत ब्यूटाडीन प्राप्त हो सकता हैं। तारपीन या पेट्रोल से धोने से ब्यूटाडीन निकाल लिया जाता है। आसवन से पृथक् कर इसका संशोधन किया जाता है।

एक दूसरी विधि में एलकोहल और ऐसिटल्डीहाइड को केओलिन उत्प्रेरक की उपस्थिति में संघनन से ब्यूटाडीन प्राप्त होता है। ब्यूटाडीन से प्रायः २४०,००० टन कृत्रिम रबर प्रति वर्ष बनता है।

पर्वालकर विधि—इस विधि में एलकोहल को युरेनियम लवण के उत्प्रेरक पर ४००° श० पर गरम करने से वह वाष्पीभूत हो ब्यूटाडीन में परिणत हो जाता है। कुछ समय बाद उत्प्रेरक पर कार्बन के निक्षेप से उत्प्रेरण क्रिया नष्ट हो जाती है। उत्प्रेरक को वायु के प्रवाह में जलाकर पुनर्जीवित कर लेते हैं। यहाँ केवल एक क्रम में एलकोहल ब्यूटाडीन में परिणत हो जाता है। ७५ प्रतिशत तक परिवर्तन होता है। ९५ प्रतिशत एलकोहल के एक गैलन से २-३ पाउण्ड ब्यूटाडीन प्राप्त होता है। ब्यूटाडीन की शुद्धता प्रायः ८० प्रतिशत होती है और शोधन से ९९.५ प्रतिशत तक प्राप्त होता है। इसमें अन्य उत्पाद एथिलिन, ब्यूटिलिन और जल हैं। एथिलिन से एथिलबेंजीन प्राप्त हो सकता है जो स्टाइरिन को प्रस्तुत करने में लगता है। ब्यूना-एस के लिए ब्यूटाडीन ९८.५ प्रतिशत शुद्ध रहना चाहिए।

एसिटिलिन से ब्यूटाडीन—ऐसिटिलिन कैलसियम कारबाइड पर जल की क्रिया से अथवा कोयले के हाइड्रोजनीकरण से अथवा पेट्रोलियम उच्छिष्ट से प्राप्त हो सकता है। मिथेन के ताप-विच्छेदन से भी एसिटिलिन प्राप्त हो सकता है।

कैलसियम कारबाइड कोयले और चूना-पत्थर के योग से विद्युत् भट्ठी में बनती है। इसके लिए बिजली सस्ती चाहिए। जलबल से ही सस्ती बिजली प्राप्त हो सकती है। जल-विद्युत्-बल अब बिहार में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकता है। दामोदर नदी में जो बाँध बाँधा गया है, उससे पर्याप्त जल-विद्युत् उत्पन्न होगी। कैलसियम कारबाइड के तैयार करने का प्रयत्न

होना चाहिए। चूना-पत्थर को उच्च ताप पर चूने की भट्ठी में गरम करने से चूना प्राप्त होता है। इस चूने को १ से २ इंच के टुकड़े बनाकर कोयले के चूर्ण $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ इंच-अप्ति के साथ विद्युत्-भट्ठे में गरम करते हैं। प्रत्येक १०० भाग चूने में ६५ भाग कोयला रहता है। भट्ठी ऐसे पदार्थों से बनी होती है जो ३०००° श० ताप को सहन कर सके। २२ वर्ग इंच के बड़े-बड़े विद्युत्-द्वार रहते हैं। ऐसा ऊँचा ताप विद्युत्-चाप से प्राप्त होता है। इसमें बहुत उच्च विद्युत्-धारा आवश्यक होती है। जब ताप ३०००° श० पर पहुँच जाता है, तब कारबाइड बनता और निकाल लिया जाता है। एक बार में ४० टन तक बनता है। सबसे बड़े कारखाने में २०० टन प्रतिदिन तैयार होता है। एक टन कारबाइड के लिए ४२५० मात्रक विद्युत्-धारा लगती है। इसमें पत्थर का तोड़ना, पीसना इत्यादि सब क्रियाएँ सम्मिलित हैं।

ऐसिटिलिन से ब्यूटाडीन—एसिटिलिन को पारद के लवणों की उपस्थिति में तनु सलफ्यूरिक अम्ल के द्वारा ऐसिटल्टीहाइड में परिणत करते हैं। क्षार के तनु विलयन की उपस्थिति में एसिटल्डीहाइड एल्डोल में पुरुभाजित हो जाता है। एल्डोल को फिर निकेल-अलुमिना की उपस्थिति में १००° श० ताप में दबाव पर हाइड्रोजन द्वारा हाइड्रोजनी-करण करते हैं। इससे ब्यूटिलिन ग्लाइकोल बनता है। इसके निर्जलीकरण से ब्यूटाडीन प्राप्त होता है।

एक दूसरी रीति से भी निर्जलीकरण हो सकता है। इस रीति में उसके वाष्प को प्रायः २००° श० पर कैलसियम या सोडियम फास्फेट की उपस्थिति में गरम करने से और उत्पाद के हिमीकरण से ब्यूटाडीन प्राप्त होता है। इस रीति से उपलब्धि अच्छी ऊँची मात्रा में होती है।

एक दूसरी रीति से भी ऐसिटिलिन और एथिलिन को ५० वायु-मण्डल के दबाव पर ५००° श० पर ऐसी नली में जाने से जिसमें अलकली धातु के ऑक्साइड रखे हों, ब्यूटाडीन प्राप्त हो सकता है।

ब्यूटिलिन ग्लाइकोल से ब्यूटाडीन प्राप्त करने की जर्मन रीति यह है। ८० भाग ग्लाइकोल को २० भाग जल में घुलाकर उसे तनु सलफ्यूरिक अम्ल में प्रवाहित करते हैं। इसके लिए एक प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल को दबाव-तापक में प्रायः २००° तक गरम करके २००० भाग विलयन में प्रति घंटा लगभग ८०० मान की गति से प्रवाहित करते हैं। ज्यों ही ब्यूटाडीन बनता है, उसे निकाल लेते हैं। इस क्रिया में जो जल बनता है, उसे पृथक्कारक द्वारा निकाल लेते हैं।

ब्यूटिलिन से ब्यूटाडीन प्राप्त करने की एक रीति में ब्यूटिलिन को किसी निष्क्रिय गैस—नाइट्रोजन, कार्बन डायक्साइड, भाप इत्यादि के साथ मिलाकर ६८०°–७१०° श० पर ग्रेफाइट या चमकीले कार्बन पर ऐसी तीव्र गति से ले जाते हैं कि ब्यूटिलिन कार्बन के संसर्ग में एक सेकण्ड से अधिक नहीं रहे। कार्बन लोहे और क्षारों से मुक्त होना चाहिए। यदि यह सिलिका जेल, एल्युमिनियम या मैगनिसियम ऑक्साइड पर स्थित हो तो अच्छा होता है।

डाइमेथिल व्यूटाडीन—यह यौगिक ऐसिटोन से प्राप्त होता है। ऐसिटोन या तो काष्ठ के प्रभंजक आसवन से अथवा स्टार्च के किण्वन से प्राप्त होता है। ऐसिटोन कैलसियम कारवाइड से भी प्राप्त हो सकता है। ऐसिटोन को मैगनीसियम—पारद मिश्रण के द्वारा अवकरण से पिनेकोन प्राप्त होता है और पिनेकोन के पोटैसियम-बाइसलफेट अथवा मिट्टी द्वारा निर्जलीकरण से डाइमेथिल व्यूटाडीन प्राप्त होता है।

$$CH_3\,CO\,CH_3 \xrightarrow[\text{पारद मिश्रण}]{\text{मैगानीसियम}} CH_3-\underset{\underset{CH_3}{|}}{\overset{\overset{OH}{|}}{C}}-\underset{\underset{CH_3}{|}}{\overset{\overset{OH}{|}}{C}}-CH_3 \xrightarrow{\text{निर्जलीकरण}}$$

पिनेकोन

$$CH_2=\underset{\underset{CH_3}{|}}{C}-\underset{\underset{CH_3}{|}}{C}=CH_2$$

डाइमेथिल व्यूटाडीन
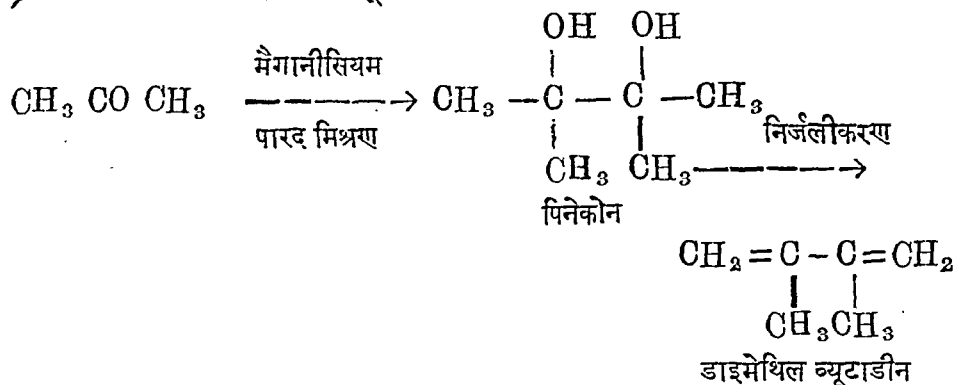
इससे मेथिल-एच रवर और मेथिल-डवलू रवर तैयार होते हैं।

क्लोरोप्रीन—एसिथिलिन के क्यूप्रस क्लोराइड और अमोनियम क्लोराइड उत्प्रेरकों के सान्द्र विलियन पर प्रवाहित करने से मोनोविनील ऐसिटिलिन और डाइविनील ऐसिटिलिन वनते हैं। मोनोविनील ऐसिटिलिन वड़ी शीघ्रता से और सरलता से २-क्लोरो १ः ३-व्यूटाडीन में परिणत हो जाते हैं। इसी का नाम क्लोरोप्रीन है। विनील एसिटिलिन पर क्यूप्रस् क्लोराइड की उपस्थिति में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ उपचार से क्लोरोप्रीन वनता है।

$$CH\equiv CH+CH\equiv CH=CH\equiv C-CH=CH_2$$

मोनोविनील एसिटिलिन

$$CH\equiv C-CH=CH_2+HCl=CH_2=Cl-CH=CH_2$$
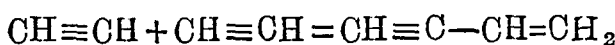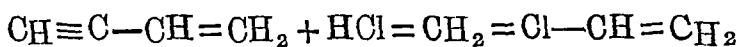
क्लोरोप्रीन

या

२—क्लोरो—१ः३—व्यूटाडीन

क्लोरोप्रीन तीक्ष्ण गन्धवाला रंगहीन द्रव है, जो ५६.४° श० पर उवलता है। इसका विशिष्ट घनत्व २०° श० पर ०.६५८३ और वर्तनांक १.४५८३ है। यह वड़ी शीघ्रता से रवर में परिणत हो जाता है।

एस्टाइरिन—एस्टाइरिन से व्यूना-एस तैयार होता है। एस्टाइरिन एथिल वेंज़ीन से तैयार होता है। पेट्रोलियम के संशोधन में उपफल के रूपमें अल्पमात्रा में एथिल वेंज़ीन प्राप्त होता है। यह वेंज़ीन और एथिल हाइड्रोक्लोराइड से साधारणतया वनता है। एल्युमिनियम क्लोराइड की क्रिया से वेंजीन और एथिलीन से भी यह प्राप्त होता है। एथिल वेंजीन के ८००से ९५०° श० के उच्च ताप पर गरम करने से इसके विहाइड्रोजनीकरण या प्रभञ्जन से एस्टाइरिन वनता है। उपयुक्त उत्प्रेरक की उपस्थिति में ५०० से ६००° श० के वीच भी इसकी ३५ प्रतिशत मात्रा प्राप्त होती है।

डो ने एक विधि में फास्फरिक अम्ल उत्प्रेरक की उपस्थिति में प्रति वर्ग इंच पर २५० पाउण्ड दवाव में बेंज़ीन और ६५ प्रतिशत एलकोहल से एस्टाइरिन प्राप्त किया था। यहाँ बेंजीन शुद्ध होना चाहिए। एक दूसरी विधि में डो ने ३० प्रतिशतवाले एथिलिन से १६०° फ० पर प्रति वर्ग इंच पर १५ पाउण्ड के निम्न दवाव पर एल्युमिनियम क्लोराइड उत्प्रेरक से प्रति एक पाउण्ड उत्प्रेरक से १०० पाउण्ड एथिल बेंज़ीन प्राप्त किया था। यहाँ शुद्ध बेंजीन अत्यावश्यक नहीं है। यह विधि अविराम कार्य करती हुई एथिल बेंज़ीन की उतनी मात्रा प्रदान करती है जितनी समीकरण के अनुसार आना चाहिए। एल्युमिनियम क्लाराइड का ८० प्रतिशत पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

एस्टाइरिन रंगहीन तीक्ष्ण गन्धवाला द्रव है जो १४३° श० पर उवलता है। इसका विशिष्ट घनत्व ०·९०४ है। १००० टन व्यूना-एस बनाने के लिए प्रायः ३०० टन एस्टाइरिन आवश्यक है।

मिथाक्रिलिक अम्ल और मेथिल मिथाक्रिलेट—इनसे व्यूनान, हायकर, चेमिगम इत्यादि वनते हैं। यह एथिलिन क्लोरहाइड्रिन से प्राप्त होता है। एथिलीन क्लोरहाइड्रिन के सोडियम सायनाइड की क्रिया से एथिलिन स्यानहाइड्रिन बनाते हैं। पेट्रोलियम हाइड्रोजन सलफेट के साथ गरम करने से यह एक्रिलिक नाइट्राइल में परिणत हो जाता है।

$$\begin{matrix} CH_2OH \\ | \\ CH_2Cl \end{matrix} + NaCN \longrightarrow \begin{matrix} CH_2OH \\ | \\ CH_2CN \end{matrix} + NaCl \xrightarrow{KHSO_4} CH_2=\begin{matrix} CN \\ | \\ C \\ | \\ H \end{matrix}$$
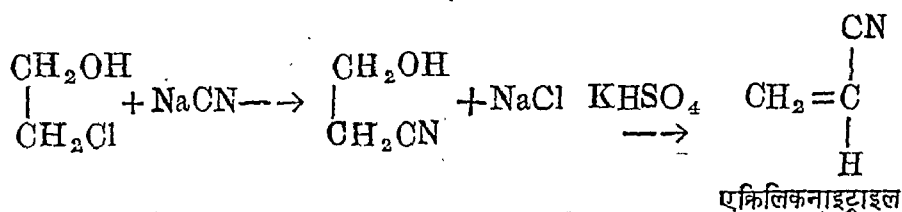
एक्रिलिकनाइट्राइल

एक्रिलिक नाइट्राइल अन्य रीतियों से भी प्राप्त हो सकता है। इनमें एक रीति सीधे ऐथिलिन ऑक्साइड और हाइड्रोजन सायनाइड से प्राप्त करना है।

$$\begin{matrix} CH_2- \\ | \\ CH_2- \end{matrix} 0 + H\ CN_2 = CH_2 = \begin{matrix} CN \\ | \\ C \end{matrix} - H + H_2 0$$
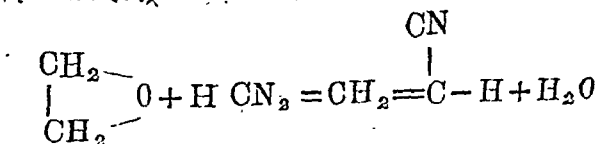
एक दूसरी रीति में $CH_3\ COO\ CH_2\ CH_2\ CN$ के गरम करने से नाइट्राइल प्राप्त होता है

$$CH_3\ COO\ CH_2\ CH_2\ CN \longrightarrow CH_2 = \begin{matrix} CN \\ | \\ C \\ | \\ H \end{matrix} + CH_3\ COOH$$
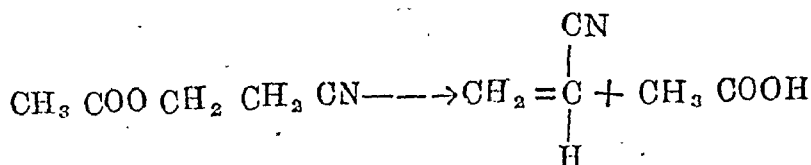
एक्रिलिक नाइट्राइल रंगहीन द्रव है जो ७७° पर उवलता है। इसमें मन्द मधुर गंध होती है।

एसिटिलिन से एसिटोन प्राप्त होता है और उससे एसिटोन सायनहाइड्रिन। इसे सलफ्यूरिक अम्ल और मेथिल एलकोहल से मेथिल मिथाक्रिलेट प्राप्त होता है।

$$(CH_3)_2\, C(OH)\, CN + H_2\, SO_4 + CH_3OH$$
$$CH_2 = C(CH_3)\, COO\, CH_3 + NH_4HSO_4$$
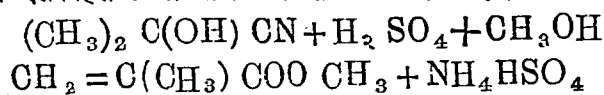
मेथिल मिथाक्रिलेट

मेथिल मेथाक्रिलेट रंगहीन द्रव है जो १००° पर उबलता है। इसका विशिष्ट घनत्व १६°श० पर ०·६४६७ हैं और वर्तनांक १·४१६६८। यह जल में अविलेय है; पर सब कार्बनिक विलायकों में विलेय है।

पेट्रोलियम से रबर—अमेरिका में पेट्रोलियम बहुत अधिक मात्रा में निकलता है। पेट्रोलियम के उत्पादन में अमेरिका का स्थान प्रथम है। अमेरिका में पेट्रोलियम से उन पदार्थों के उत्पादन की चेष्टाएँ अधिक मात्रा में प्राप्त हुई हैं जिनसे कृत्रिम रबर प्राप्त हो सकता है। जिस प्रकार कोयले से सैकड़ों उपयोगी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं, उसी प्रकार पेट्रोलियम से भी अनेक उपयोगी पदार्थों की प्राप्ति की चेष्टाएँ अमेरिका में हुई हैं। इसके फलस्वरूप पेट्रोलियम से निम्नलिखित पदार्थ प्राप्त हुए हैं।

१ रेज़िन
२ पोलिएस्टाइरिन, एस्टाइरिन के पुरुभाजन से
३ पोलि-ब्यूटिलिन
४ बुना रबर
५ नियोप्रीन रबर
६ थायोकोल रबर
७ विनील रेज़िन
८ बेकेलाइट
९ एल्किड रेज़िन
१० एथिल सेल्यूलोस
११ सेल्यूलोस एसिटेट
१२ एक्रिलेट और मेथाक्रिलेट रेज़िन

पहले-पहल जब पेट्रोलियम का आविष्कार हुआ, इसका उपयोग केवल किरासन तेल के लिए था। शेष अंश अधिक वाष्पशील अथवा न्यून वाष्पशील निरर्थक समझे जाते थे। पर आज इंजन में व्यवहृत होने के कारण पेट्रोलियम के अधिक वाष्पशील अंश का उपयोग बहुत विस्तृत हो गया है और किरासन के अंश का महत्व अपेक्षाकृत कम हो गया है। अमेरिका में पेट्रोलियम का मूल्य आज चार-पाँच आने प्रति गेलन से अधिक नहीं है जहाँ भारत में प्रायः ३ रु० गैलन पेट्रोल बिकता है।

पेट्रोल की माँग पीछे इतनी बढ़ गई और उत्पादन की कमी हो गई कि न्यून वाष्पशील अंश को प्रभंजन द्वारा पेट्रोल में परिणत करने की आवश्यकता पड़ी। पीछे प्रभंजन के सिवाय हाइड्रोजनीकरण, उत्प्रेरक क्रियाओं इत्यादि द्वारा निरर्थक पदार्थों को उपयोग में लाकर उनको नष्ट होने से बचने की अनेक चेष्टाएँ हुई हैं।

पेट्रोलियम से प्राकृतिक गैस प्राप्त होती है। प्राकृतिक गैस का संघटन निम्नलिखित है—

	द्रवणांक ०°श	क्वथनांक ०°श
मिथेन	—१८२	—१६१
ईथेन	—१७२	—८६
प्रोपेन	—१८७	—४२
नार्मल-ब्यूटेन	—१३५	—०'६
आइसो-ब्यूटेन	—१४५	—१०
नार्मल-पेन्टेन	—	+३७

प्राकृतिक गैस जलावन के लिए, कृत्रिम रबर और कृत्रिम रेज़िन के लिए इस्तेमाल होती है। इसके अंशतः जलने से गैस-कार्बन बनता है, जिसका ५०४० लाख पाउण्ड केवल १९४१ ई० में अमेरिका में बना था। मोटर के टायर बनाने में सबसे अधिक गैस-कार्बन खपता है। गैस कार्बन से रबर टायर का जीवन कई सौ गुना बढ़ गया है। इसके कार्बन का उपयोग छापने की स्याही में भी अधिक मात्रा में होता है। इन उपयोगों के होते हुए भी प्राकृतिक गैस बहुत बड़ी मात्रा में नष्ट हो जाती है।

तेल का प्रभंजन—उच्च क्वथनांकवाले तेल को प्रभंजन द्वारा निम्न क्वथनांकवाले तेल में परिणत करते हैं ताकि मोटर इंजिनों में इस्तेमाल हो सके। प्रभंजन से बड़ी मात्रा में असंतृप्त गैसें भी, ओलिफिन और डाइओलिफिन, प्राप्त होती हैं। १०० गैलन तेल के प्रभंजन से प्रायः ६० गैलन पेट्रोल प्राप्त होता है।

गैस का प्रभंजन—गैसों के प्रभंजन से असंतृप्त गैसें प्राप्त होती हैं ४००° श० पर प्रभंजन में घंटों लगते हैं जब ८००° श० पर कुछ सेकंडों में ही हो जाता है। उत्प्रेरकों की उपस्थिति में प्रभंजन और भी सरलता से हो जाता है। क्रोमियम ऑक्साइड, मोलिबडेन ऑक्साइड, वैनेडियम ऑक्साइड, अलुमिन। मैगनीशिया, सक्रिय कोयला, जिंक-क्रोमियम मिश्र धातु इत्यादि से प्रभंजन अथवा विहाइड्रोजनीकरण३५०° श० पर ही हो जाता है।

प्रभंजन से संतृप्त हाइड्रोकार्बन असंतृप्त हाइड्रो-कार्बनों में परिणत हो जाते हैं। ये प्राकृतिक रबर बनाने अथवा पुरुप्रभाजन से पेट्रोल तेल बनाने में उपयुक्त हो सकते हैं।

ब्यूटेन से ब्यूटाडीन—पेट्रोलियम प्रभंजन से ब्यूटिलिन प्राप्त होता है। ब्यूटिलिन पेट्रोल में लग जाता है। ब्यूटाडीन के लिए बचता नहीं। ब्यूटेन से ब्यूटाडीन प्राप्त हो सकता है। १९४१ में १७५,००० बैरेल ब्यूटेन प्राप्य था, ९२,००० बैरेल प्राकृतिक गैस से, ३३७०० बैरेल प्रभंजन से, ५०४०० बैरेल कच्चे (या अपरिष्कृत) तेल से।

हाउड्री विधि में दो क्रमों में ब्यूटेन का विहाइड्रोजनीकरण करते हैं। पहले क्रम में, ब्यूटिलिन और हलकी गैसें प्राप्त होती हैं। ब्यूटेन और ब्यूटिलिन अंश को सांद्रित करते हैं और उसे फिर दूसरे क्रम में उपयोग करते हैं। यहाँ ब्यूटाडीन बनता है। ब्यूटेन और ब्यूटिलिन को तप्त विशिष्ट उत्प्रेरकों पर प्रवाहित; करने से यह क्रिया होती है। विहाइड्रोजनीकरण से उत्प्रेरक पर कार्बन का निक्षेप बनता है पर इसे जलाकर उत्प्रेरक को पुनर्जीवित कर लेते हैं। इसी कार्बन के निक्षेप से आवश्यक ताप ब्यूटेन को ब्यूटिलिन में परिणत करने में

प्राप्त होता है। ब्यूटाडीन को फिर पृथक् कर और संशोधित कर शुद्ध रूप प्राप्त करते हैं। हाउड्री विधि में कहा जाता है कि प्रायः ७० प्रतिशत ब्यूटाडीन प्राप्त होता है। ऐसे ब्यूटाडीन का मूल्य प्रायः ४ से ५ आना प्रति पाउण्ड पड़ता है।

एथिलिन—पेट्रोलियम के प्रभंजन से एथिलिन प्राप्त होता है। एथिलिन पर क्लोरीन की क्रिया से एथिलिन क्लोराइड प्राप्त होता है। यह बड़ा उपयोगी विलायक है। एथिलिन क्लोराइड के मेथिल एलकोहल की उपस्थिति में गरम करने और उसमें जलीय सोडियम हाइड्रॉक्साइड के डालने से विनील क्लोराइड प्राप्त होता है।

एथिलिन और हाइड्रोजन क्लोराइड की क्रिया से एथिल क्लोराइड बनता है। एल्युमिनियम क्लोराइड के प्रभाव से बेंजीन एथिल क्लोराइड के साथ एथिल बेंजीन बनता है जिससे स्टाइरिन प्राप्त होता है। ब्यूना-एस रबर के लिए स्टाइरिन आवश्यक है।

ब्यूटाडीन—पेट्रोलियम में ब्यूटाडीन अल्प मात्र में रहता है। इससे ब्यूटाडीन प्राप्त करने की चेष्टाएँ १६३३ ई० में हुईं। इसका पृथक् करना कठिन होता है।

इसके पृथक् करने की एक रीति में ब्यूटाडीन को क्यूप्रस क्लोराइड या हाइड्रोजन क्लोराइड के साथ एक पीत ठोस यौगिक तैयार करते हैं। इस यौगिक के ३०°–१००° श० तक गरम करने ने अच्छी मात्रा में शुद्ध ब्यूटाडीन प्राप्त होता है। अनेक पदार्थों जैसे अमोनियम क्लोराइड, स्टैनस क्लोराइड, सोडियम क्लोराइड, एथिलिन ग्लाइकोल से क्यूप्रस क्लोराइड की सक्रियता बढ़ जाती है।

ओलिफिन को उत्प्रेरकों की उपस्थिति में विहाइड्रोजनीकरण से डाइओलिफिन प्राप्त होते हैं। ऐसे उत्प्रेरकों में अलुमिना पर क्रोमियम, मोलिबडेनम या वैनेडियम के ऑक्साइड अथवा टंगस्टेन, टाइटेनियम, ज़िरकोनियम, सीरियम और थोरियम के ऑक्साइड हैं।

अमेरिका में ब्यूटाडीन उत्पन्न करने की रीतियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार का है।

$$\text{पेट्रोलियम} \xrightarrow[\text{प्रभंजन}]{\text{सामान्य}} \underset{\text{ब्यूटाडीन}}{CH_2{=}CH{-}CH{=}CH_2} \ (\tfrac{1}{2} \text{ से } \tfrac{3}{4} \text{ प्रतिशत})$$

$$\text{पेट्रोलियम} \xrightarrow[\text{प्रभंजन}]{\text{विशेष}} \underset{\text{ब्यूटाडीन}}{CH_2{=}CH{-}CH{=}CH_2} \ (\text{५ से १२ प्रतिशत})$$

३. $$\underset{\text{ब्यूटिलिन}}{CH_3\ CH{=}CH\ CH_3} \xrightarrow{Cl_2} CH_3\ CHCl{-}CH\ Cl\ CH_3$$

$$\downarrow \text{ बेरियम क्लोराइड से गरम करने से}$$

$$\underset{\text{ब्यूटाडीन}}{CH_2{=}CH{-}CH{=}CH_2} + 2HCl$$
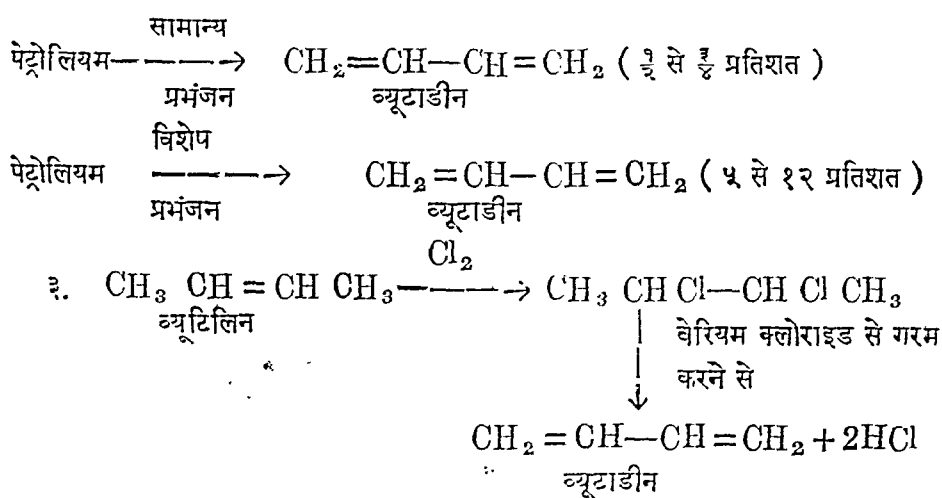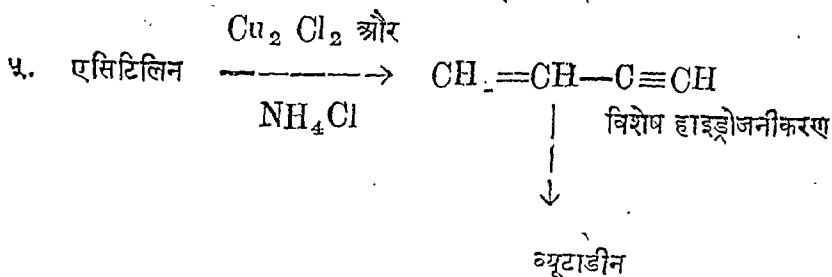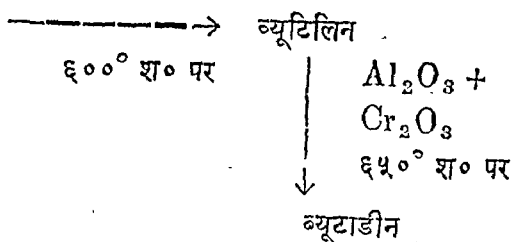
इन रीतियों से आज बहुत बड़ी मात्रा में ब्यूटाडीन तैयार होता है।

असंतृत हाइड्रोकार्बनों को एक-भाज कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'मोनोमर' कहते हैं। ब्यूटाडीन, आइसोप्रीन, क्लोरोप्रीन, विनील क्लोराइड, स्टाइरीन, विनील ऐसिटेट, मेथिल मेथाक्रिलेट एकावयव हैं। पुरुभाजन द्वारा इन्हें बहुत बड़े अणु में परिणत करने से विभिन्न लम्बाई की शृंखलाएँ बनती हैं। कितना पुरुभाजन हुआ है इसका ज्ञान हमें उत्पाद की श्यानता से पता लगता है। उत्पाद के अणुभार से भी पुरुभाजन का ज्ञान होता है। पुरुभाजन की लम्बाई जैसे-जैसे बढ़ती है, उसके बहुमूल्य भौतिक गुण अधिक स्पष्ट होते जाते हैं।

अधिकांश एक-भाज द्रव होते हैं। धीरे-धीरे ये अधिकाधिक श्यान होते जाते हैं और फिर ठोस हो जाते हैं। अनेक एक-भाजीय ब्यूटाडीन रबर सदृश्य ठोस में परिणत हो जाते हैं। द्रव स्टाइरिन अन्त में रबर सदृश ठोस में परिणत हो जाता है जो कांच-सा होता और जिसे पोलिस्टाइरिन कहते हैं। इसमें अद्‌भुत वैद्युत्-गुण होता है।

गैसीय विनील क्लोराइड जो —१४° श० पर उबलता है और चीमड़ मजबूत पोलिविनील क्लोराइड बनता है। एथिल एक्रिलेट कुछ कोमल पर कांच-सा ठोस लचीला पदार्थ बनता है; पर इसमें विशेष रूप से यांत्रिक-बल होता है। मेथिल एक्रिलेट पुरुभाजित हो बहुत कठोर पारदर्शी ठोस बनता है जिसमें प्रकाश-प्रेषण का अद्‌भुत गुण होता है।

पुरुभाज—पुरुभाजन से जो पुरुभाज बनते हैं उनमें हजारों लाखों परमाणु बँधकर बहुत ही बड़े-बड़े अणु बनते हैं। इनमें अधिकांश अणु लम्बी शृंखलाओं में रहते हैं। इनमें रेखित बन्धन अपेक्षया कम होता है। परमाणुओं के समूह जो पुरुभाजन में सहायक होते हैं, वे निम्नलिखित प्रकार के हैं।
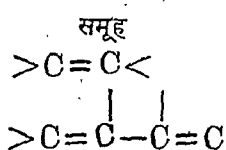
समूह	यौगिक
$>C=C<$	एथिलिन, विनील क्लोराइड
$>C=\overset{\vert}{C}-\overset{\vert}{C}=C$	ब्यूटाडीन, क्लोरोप्रीन
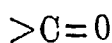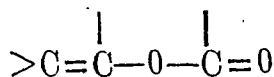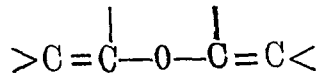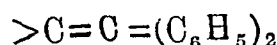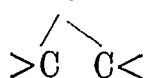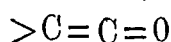
$>C=0$	एल्डीहाइड
$>C=\overset{\vert}{C}-0-\overset{\vert}{C}=0$	विनील एसिटेट
$>C=\overset{\vert}{C}-0-\overset{\vert}{C}=C<$	डाइ विनील ईथर
$>C=C=(C_6H_5)_2$	स्टाइरिन
$>C\overset{0}{\diagup\diagdown}C<$	इथिलिन ऑक्साइड
$>C=C=0$	किटीन

इनके अतरिक्त कुछ और भी कम महत्व के समूह हैं।

पुरुभाजन में दो प्रकार की क्रियाएँ होती हैं। एक में विवृत्त शृंखलाएँ बनती हैं। दूसरे में संवृत्त चक्रिक) शृंखलाएँ। किसी-किसी में दोनों प्रकार की शृंखलाएँ वनती हैं। विवृत्त शृंखलाएँ अधिक सरलता से वनती है। संवृत्त शृंखलाओं के वनने में कुछ कठिनताएँ होती हैं या हो सकती हैं। साधारणतया जिन यौगिकों में केवल पुरुभाजित होनेवाले एक समूह होते हैं जैसे युग्म या त्रि-बन्धवाले यौगिक उनसे विवृत्त शृंखलाएँ वनती हैं और जिनमें एक से अधिक पुरुभाजित होनेवाले समूह होते हैं, उनसे अन्य यौगिक वनते या वन सकते हैं। पहले प्रकार के यौगिकों को एक-प्रकार्य पदार्थ और दूसरे प्रकार के यौगिकों को द्वि या वहु-प्रकार्य पदार्थ कहते हैं।

युग्मबन्धवाले यौगिकों में यदि कोई प्रतिस्थापक हो तो पुरुभाजन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ता है।

पुरुभाजन की रीतियाँ—साधारणतया चार प्रमुख रीतियों से पुरुभाजन होता है।

१. विना विलायक के एक-भाज के सीधे पुरुभाजन से
२. किसी विलायक में एक-भाज के पुरुभाजन से
३. किसी अमिश्रणीय विलायक में परिक्षिप्त एक-भाज के पुरुभाजन स
४. गैसीय कला में पुरुभाजन से

पहली रीति का उपयोग कृत्रिम रेज़िन के उत्पादन में प्रचुरता से होता है। एस्टाइरिन और मेथाक्रिलिक एस्टर का पुरुभाजन इसी रीति से होता है।

दूसरी रीति का उपयोग विनील क्लोराइड और एस्टाइरिन के साथ होता है। इन क्रियाओं का सम्पादन प्रायः निम्न ताप पर ही १५०° श० तक ही और सामान्य दवाव में होता है। आइसो-ब्यूटिलीन का पुरुभाजन और भी निम्न ताप पर होता है। एथिलीन का पुरुभाजन उच्च दवाव पर होता है।

अनेक वर्षों तक यही दोनों रीतियाँ प्रचलित थी; पर इधर कुछ वर्षों से तीसरी रीति का उपयोग अधिकाधिक बढ़ रहा है और ऐसा मालूम होता है कि अब यही रीति सबसे अधिक उपयुक्त होगी। इस रीति को पायस पुरुभाजन कहते हैं। यहाँ विलायक साधारणतया जल

होता है और चूंकि अधिकांश एक-भाज द्रव होते हैं, अतः वे जल के साथ पायस बनते हैं।

एक-भाज, विनील एसिटेट, जल में विलेय है। अतः आरम्भ में दूसरी रीतिवाला पुरु-भाजन होता है; पर उससे जो उत्पाद बनता है, वह जल में अविलेय होने के कारण पायस बनता है और तब तीसरी रीति ही उपयुक्त होती है।

पायस रूप में पुरुभाजन अधिक शीघ्रता से होता है। और उससे पुरुभाज के अणुभार में भी बहुत अन्तर आ जाता है जो निम्नलिखित अंकों से स्पष्ट हो जाता है।

	पुरुभाज का अणुभार	
एस्टाइरिन का पुरुभाजन	शुद्ध एस्टाइरिन से	पायस में एस्टाइरिन से
३०° श०	६००,०००	७५०,०००
६०° श०	३५०,०००	४००,०००
१००° श०	१२०,०००	१७५,०००

एलास्टोमर के तैयार करने में आज पायस रीति का ही उपयोग अधिकता से होता है। इसका एक दूसरा प्रभाव यह पड़ता है कि अलग-अलग मात्रा में उत्पादन के स्थान में सततउत्पादन अधिक हो गया है।

एक समय में पुरुभाजन के लिए सोडियम धातु का उपयोग होता था; पर आज सोडियम के स्थान में पायस रीति का उपयोग होता है। सोडियम रीति प्रायः पूर्णतया त्याग दी गई है। सोडियम रीति में लाभ यह था कि यह सान्द्र दशा में सम्पादित होता था। इस विधि का उपयोग आज भी रूस में हो रहा है, यद्यपि पायस विधि का उपयोग वहाँ भी धीरे-धीरे बढ़ता जा है।

पायस विधि का लाभ यह है कि पुरुभाजन के ताप पर नियंत्रण रह सकता है और उत्पाद आक्षीर दशा में जिसका उपयोग अब अधिकाधिक हो रहा है, प्राप्त हो सकता है।

ताप पुरुभाजन—पहले-पहल देखा गया था कि सामान्य ताप पर आइसोप्रीन और डाइमेथिल ब्युटाडीन केवल रखे रहने से भी पुरुभाजित हो रबर-सा पदार्थ बनाते हैं। पीछे देखा गया कि उनका पुरुभाजन ताप के ऊँचा होने से और शीघ्रता से होता है। आइसो-प्रीन का ताप से पुरुभाजन का पेटेन्ट १९०९ में लिया गया था। पीछे देखा गया कि ब्यूटाडीन और डाइमेथिल ब्यूटाडीन भी पुरुभाजन से तेल से द्वि-भाज उत्पाद के साथ-साथ रबर-सा पदार्थ बनते हैं। इस कारण १५०° श० पर अनेक डाइओलिफिन को गरम कर उनके पुरुभाजन का अध्ययन हुआ।

पर शुद्ध डाइन के पुरुभाजन में कुछ कठिनताएँ भी हैं। यह कठिनताएँ उच्च ताप पर हैं। पहली कठिनता यह है कि डाइओलिफिन रबर के साथ-साथ तेलसा द्विभाज उप-उत्पाद भी बनते हैं और तेल से उत्पाद का अनुपात ताप जितना ही ऊँचा हो उतना ही अधिक होता है।

दूसरी कठिनता यह है कि पुरुभाजन की गति ऊँची नहीं होती और उच्चतर ताप से

उत्पाद का अणुभार कम होता है। इन कठिनताओं के दूर करने के लिए रवर के निर्माण में उत्प्रेरकों की आवश्यकता होती है।

उत्प्रेरक—प्रत्येक पुरुभाजन प्रक्रिया में उत्प्रेरक का व्यवहार होता है। उत्प्रेरकों में बेंजायल पेरौक्साइड, हाइड्रोजन पेरौक्साइड सदृश्य ऑक्सीकारक, सोडियम, बोरन, एल्युमिनियम और टाइटेनियम आदि के हैलाइड हैं। पुरुभाजन कार्य में ताप, प्रकाश, उद्दि-किरण और कुछ दशाओं में विशेषतया गैसीय कला में दवाव से उत्तेजना मिलती है।

नियंत्रण में कठिनता—डाइओलिफिन बड़े क्रियाशील होते हैं। वे बड़ी सरलता से पुरुभाजित हो जाते हैं। कुछ दशा में तो स्वयं बिना किसी बाह्य पदार्थ के सहारे वे पुरुभाजित हो जाते हैं। कुछ दशा में पुरुभाजन ऐसा हो सकता है कि उससे अनावश्यक पदार्थ बन सकते हैं। इससे आवश्यक उत्पाद की मात्रा कम हो जाती है। इस कारण पुरुभाजन प्रक्रिया के नियंत्रण की आवश्यकता होती है। एक्स-किरण परीक्षण से पता लगता है कि प्राकृतिक रवर का संगठन कृत्रिम रवर से बिलकुल भिन्न होता है। शृंखला में उनके परस्पर बन्धन से सम्भवतः प्रत्यास्थता का गुण उनमें आता है। उत्प्रेरकों की उपस्थिति से उप-उत्पादों का बनना बहुत कुछ रोका जा सकता है।

सोडियम उत्प्रेरक—कृत्रिम रवर के निर्माण में उत्प्रेरक के रूप में सोडियम का उपयोग पुराना है। पर इसके उपयोग में कठिनताएँ थीं। इससे जो रवर बनता था, वह बहुत चीमड़ होता था। उसे सुनम्य दशा में लाना कुछ कठिन था। उसका अभिसाधन भी बहुत कठिन था। पुरुभाजन अनियमित रूप में होता था और प्रक्रिया का नियंत्रण कठिन होता था। पीछे विस्तृत अध्ययन से ये कठिनताएँ बहुत कुछ दूर हो गई हैं।

पहले-पहल तार के रूप में सोडियम का व्यवहार होता था। पीछे चूर्ण के रूप में या बहुत महीन कण के रूप में इसका व्यवहार हुआ। फिर किसी तरल में परिक्षिप्त करके इसका व्यवहार शुरू हुआ और इसमें बड़ी सफलता मिली।

पेराफिन में परिक्षिप्त करके सोडियम से ६३ घंटे में ९९ प्रतिशत उपलब्धि हुई, कोलायड सोडियम के साथ १०-१५° श० पर ०.३ प्रतिशत सोडियम के उपयोग से ३६ घंटे से कम में ब्युटाडीन से रवर प्राप्त हुआ।

निष्क्रिय विलायकों के उपयोग से प्रक्रिया का नियंत्रण बहुत सरल हो गया है। स्थायी, निष्क्रिय विलायक कम ताप पर उबलने वाले हाइड्रोकार्बन, जैसे साइक्लोहेक्सेन, पेट्रोलियम ईथर, बेंजीन इत्यादि के १० से २० प्रतिशत के अनुपात में उपयोग से क्रियाएँ बड़ी सरलता से सम्पादित होती हैं और आवश्यक उत्पाद प्राप्त होते हैं।

एथिल सेल्यूलोस की उपस्थिति में भी कोमल प्रत्यास्थ रवर प्राप्त हुआ है। १०० भाग आइसोप्रीन, २ भाग सोडियम टुकड़े, १ भाग सेल्यूलोस से हाइड्रोजन की उपस्थिति में ७०° श० पर दवाव-तापक में १२ घंटे में ऐसा रवर प्राप्त होता है।

विनील क्लोराइड से भी पुरुभाजन प्रक्रिया का नियंत्रण होता है। १०० भाग ब्यूटाडीन, ०.३ भाग सोडियम, १ भाग विनील-क्लोराइड से ६०° श० पर ३० घंटे में रवर प्राप्त होता है।

चक्रिक डाइ-ईथर, एमोनिया और एमिन से भी प्रक्रिया का नियंत्रण हो सकता है। अभी भी सोडियम की सहायता से ब्यूना रबर, ब्यूना ८५ और ब्यूना ११५ तैयार होता है। ब्यूना ८५ कठोर रबर है और विशेष कामों के लिए व्यवहृत होता है।

धातुओं के हैलाइड—एल्यूमिनियम क्लोराइड, बोरन क्लोराइड, बोरन फ्लोराइड और टिन क्लोराइड की सहायता से आइसो-ब्यूटिलीन का पुरुभाजन हुआ है और उससे ५,००,००० अणुभार के रबर प्राप्त हुए हैं।

उच्च दबाव—उच्च दबाव से भी डाइओलिफिन का पुरुभाजन हुआ है। आइसोप्रीन का पुरुभाजन १८०० वायुमण्डल के दबाव पर २३° श० पर २० मिनट में १० प्रतिशत और ३ घंटे में ७६ प्रतिशत होता है। उच्च दबाव से तैयार रबर अभिसाधित रबर सा अविलेय और अ-सुनम्य होता है। एथिलीन को १००–३००° श० पर १२०० वायुमण्डल के दबाव पर गरम करने से ठोस अथवा अर्ध-ठोस पदार्थ प्राप्त होता है जिसे पोलिथीन कहते हैं।

प्रकाश—सूर्यप्रकाश और जम्बुकोत्तर प्रकाश से विनील क्लोराइड का पुरुभाजन बड़ी सरलता से होता है। इस प्रकार से प्रस्तुत उत्पाद में अल्फा, बीटा, गामा और डेल्टा पोलि-विनील क्लोरोइड रहते हैं। अल्फा-विनील क्लोराइड ऐसिटोन में, और बीटा-विनील क्लो-राइड क्लोरोबेंजीन में विलेय होते हैं। गामा-और डेल्टा-विनील क्लोराइड क्लोरो-बेंजील में अविलेय होते हैं। जम्बुकोत्तर किरणों से पुरुभाजन बड़ी तीव्रता से होता है।

सह-पुरुभाजन—पुरुभाजन से जो उत्पाद बनते हैं, वे अच्छे गुण के रहते हैं। पर उनके गुण सह-पुरुभाजन से और भी अच्छे हो जाते हैं। केवल आइसोप्रीन या ब्यूटाडीन से अच्छे रबर प्राप्त होते हैं, पर उनसे भी अच्छे रबर प्राप्त हो सकते हैं यदि उनके साथ एस्टा-इरिन, एक्रिलोनाइट्राइल, विनीलिडिन क्लोराइड, मेथिल विनील किटोन, मेथिल मेथाक्रिलेट या अन्य इसी प्रकार के पदार्थ मिला दिये जायँ। ब्यूटाडिन के साथ आइसो-ब्यूटिलिन के मिला देने से भी अच्छे रबर प्राप्त होते हैं। ब्यूटाडिन के साथ क्लोरोप्रीन के मिलने से भी उत्कृष्ट कोटि का रबर प्राप्त हुआ है।

इस प्रक्रिया को सह-पुरुभाजन, अन्तर-पुरुभाजन या मिश्रित पुरुभाजन कहते हैं। सह-पुरु-भाजन इन शब्दों में सबसे अच्छा समझा गया है। एक-भाजकों के मिश्रण के साथ यह प्रक्रिया विलयन में अथवा पायस दशा में सम्पादित की जा सकती है।

इस प्रक्रिया से भिन्न-भिन्न एक से अधिक उत्पाद नहीं बनते। सब मिलकर एक ही उत्पाद बनते हैं जिससे दोनों एक-भाज साथ-साथ विद्यमान रहते हैं। सह-पुरुभाजन से प्राप्त उत्पादों के गुण पुरुभाजन से प्राप्त उत्पादों को मिलाकर मिश्रित उत्पाद के गुणों से बहुत कुछ भिन्न होते हैं।

विनील ऐसिटेट के पुरुभाजन से पोलिविनील एसिटेट प्राप्त होता है। यह बड़ा उपयोगी पदार्थ है। गोंद के रूप में चिपकाने के लिए उपयुक्त होता है। यह भंगुर होता है। ३०-४०° श० के बीच कोमल हो जाता है। ताप और प्रकाश का विशेष रूप से अवरोधक होता है। कोमल हो जाने के कारण इसके सामान नहीं बन सकते। इसमें पानी के अधिशोषण की क्षमता अपेक्षया बहुत अधिक होती है। रसायनतः यह बहुत क्रियाशील होता है। क्षारों की

उपस्थिति में इसका साबुनीकरण होता है। यह एलकोहल, कीटोन, एस्टर और क्लोरीन युक्त सौरभिक हाइड्रो-कार्बनों में विलेय है।

पोलि-विनील क्लोराइड गुण में इसके बिलकुल विभिन्न होता है। इसके कोमल होने का ताप ऊँचा होता है। रसायनतः यह निष्क्रिय होता है। यह जल्दी जलता नहीं, न इसमें कोई स्वाद और गन्ध ही होती है। इसका चारण नहीं होता। सलफ्यूरिक, नाइट्रिक और हाइड्रोक्लोरिक अम्लों से भी यह आक्रांत नहीं होता। चारों की भी इस पर कोई क्रिया नहीं होती। जल-शोषण की चमता भी इसमें बहुत अल्प होती है। ठंढे में, विलायकों में यह प्रायः अविलेय होता है; पर गरम एथिलिन क्लोराइड सदृश क्लोरीनयुक्त हाइड्रोकार्बनों में शीघ्र घुल जाता है। प्रकाश और ताप में यह विशेषतः स्थायी नहीं होता। जल और रसायनों का अवरोधक होता है। गरम करने से धीरे-धीरे कोमल होना शुरू होता है और ताप की वृद्धि से विच्छेदित होना शुरू होता है।

उपर्युक्त दोनों विनील यौगिकों के गुणों से ऐसा मालूम होता है कि यदि इन दोनों के गुण मिल जायँ तो उत्तम उत्पाद प्राप्त हो सकता है। पोलिविनील ऐसिटेट और पोलिविनील क्लोराइड को मिलाकर उत्तम बनाने की चेष्टाएँ असफल सिद्ध हुई हैं; पर विनील ऐसिटेट और विनील क्लोराइड के सह-पुरुभाजन से उत्तम कोटि का उत्पाद प्राप्त हुआ है। ऐसा उत्पाद गंधहीन, स्वादहीन, अदाह्य और ताप-सुनम्य होता है। इनके यांत्रिक गुण भी उत्तम कोटि के होते हैं। उनका तन्यबल बहुत ऊँचा होता है, और वे बहुत ही चीमड़ होते हैं। उनके विद्युत् गुण भी सन्तोषप्रद हैं। जल का अवरोध बहुत ऊँचा होता है। रसायनों से आक्रान्त नहीं होता और साबुन, अम्लो, चारों, तेलों और एलकोहल का इसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

सह-पुरुभाजन से अनेक नये कृत्रिम रबर बने हैं। इन रबरों में रबरों के गुणों के सिवा कुछ और भी विशेषताएँ पाई गई हैं जिनसे इनका मूल्य अधिक बढ़ गया है। पर-ब्यूनान, हाइकर, चेमिगम, थायोकोल-आरडी, ब्यूना-एस, ब्यूटिल रबर सह-पुरुभाजन से प्राप्त रबर हैं।

सहपुरु-भाजन रबर के गुण विभिन्न अवयवों की मात्रा से कैसे बदल जाते हैं, इसका कुछ आभास निम्न आँकड़ों से मिलता है—

ब्यूटाडिन प्रतिशत	मेथिलमेथाक्रिलेट प्रतिशत	गुण
४	९६	विलेय रेज़िन, अधिक आनम्य
६	९४	और अधिक आनम्य
८	९२	पर्याप्त चीमड़ विलेय रेज़िन
१०	९०	पर्याप्त चीमड़ विलेय रेज़िन
१२	८८	चीमड़ विलेय रेज़िन
१६	८४	कुछ कोमलतर अधिक नम्य रेज़िन
२०	८०	अविलेय और कोमल नम्य रेज़िन
३०	७०	अविलेय और कोमल रबर-सा पुरुभाज

पुरु-भाजन प्रक्रिया विशिष्ट होती है। इसका आशय यही है कि सब एक-भाज से पुरु-भाज नहीं बन सकता है।

पायस पुरुभाजन—पायस पुरुभाजन से रबर कुछ ही घंटों में प्राप्त हो सकता है। प्राकृतिक रबर सूर्य की शक्ति के द्वारा जल, वायु और कार्बन डायक्साइड से पौधों में बनता है। पेड़ ऐसी प्राकृतिक दशा में कृत्रिम रबर प्राप्त करने की चेष्टाएँ हुई हैं। उसके परिणाम-स्वरूप पायस पुरुभाजन का अविर्भाव हुआ है।

पुरुभाजन में प्रक्रिया का नियंत्रण सरल होता है और आवश्यकतानुसार जब चाहे तब प्रक्रिया को बन्द कर सकते हैं। इसमें अन्य पदार्थों के डालने की भी सुविधा रहती है। ऐसे पदार्थ जिनसे पुरुभाजन में सहायता मिलती है और प्रस्तुत रबर के गुण में सुधार होता है। कितना पुरुभाजन हुआ है, यह प्रक्रिया के ताप, उत्प्रेरक की प्रकृति और प्रक्रिया के समय पर निर्भर करता है।

पायस पुरुभाजन में विलायक की आवश्यकता नहीं होती। यह अच्छा है; क्योंकि विलायक साधारणतया विषैला, कीमती और शीघ्र जलनेवाला होता है।

प्रक्रिया साधारणतया निम्नताप पर सुचारु रूप से चलती है और उस पर नियंत्रण हो सकता है। इसमें भिन्न-भिन्न धानियों से प्राप्त उत्पाद विभिन्न होते हैं।

ब्यूटाडिन, आइसोप्रीन, क्लोरोप्रीन के पायस तैयार करने में कोई कठिनता नहीं होती है। इनके बहुत सान्द्र पायस प्राप्त हो सकते हैं। पर साधारणतया ४० प्रतिशत डाइओलिफिन का रहना अच्छा समझा जाता है। इस प्रक्रिया से जो उत्पाद प्राप्त होता है, वह बहुत महीन परिक्षिप्त दशा में या आक्षीर में होता है। यदि इसमें परिरक्षक प्रतिकारक डाला जाय तो उसे अनिश्चित काल तक रख सकते हैं।

इस प्रक्रिया से ऐसा उत्पाद भी प्राप्त हो सकता है जिसका पुरुभाजन मध्यम अवस्था तक हुआ है। इनसे वास्तविक रबर प्राप्त करने के लिए आक्षीर को स्कंधित करने की आवश्यकता होती है। यह स्कंधन वैसे ही होता है जैसे वृक्ष से प्राप्त आक्षीर का स्कंधन होता है।

कृत्रिम रबर के उत्पादन में अनेक पायस प्रतिकारकों का उपयोग हुआ है। उनमें सोडियम ओलिएट, सोडियम स्टियरेट, सल्फोनित खनिज तेल, सलफोनित कार्बनिक अम्ल। सैपोनिन इत्यादि पदार्थ उल्लेखनीय हैं। जिन कोलायड (श्लेपी) पदार्थों का उपयोग आक्षीर के रबर में हुआ है, उन सबका उपयोग कृत्रिम रबर में भी हुआ है। इनमें अंडे के एलब्युमिन, बबूल के गोंद, जिलेटिन, सरेस, केसीन, दूध, स्टार्च, डेक्स्ट्रिन, कारागीन काई इत्यादि है। इनसे उष्मा-पुरुभाजन में स्थायीपन बढ़ जाता है और समय कम लगता है।

विद्युत् विश्लेष्य के डालने से अन्तिम उत्पाद के गुण अच्छे होते हैं और उनमें प्रबलता आ जाती है। ऐसे पदार्थों में सोडियम फास्फेट, ऐसिटिक अम्ल, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, फास्फरिक अम्ल आदि हैं।

४०० भाग (आयतनमें) आइसोप्रीन के ५०० भाग जल, १५ भाग अमोनियम ओलिएट, १० भाग ट्राइसोडियम फास्फेट, ५ भाग ३० प्रतिशत हाइड्रोजन पेरोक्साइड विलयन और २५ भाग ५ प्रतिशत सरेस के विलयन के पायस बनाने में १६० घंटा कमरे के ताप पर रखे

रहने से एक श्यान समावयव का आक्षीर प्राप्त होता है जो स्कंधित कर सुनम्य और लचीला रवर में प्राप्त किया जा सकता है।

पायस दशा में पुरुभाजन उत्प्रेरकों की अनुपस्थिति में भी हो सकता है, पर उत्प्रेरकों से प्रतिक्रिया की गति वढ़ जाती है। ऐसे उत्प्रेरकों में हाइड्रोजन पेरौक्साइड, यूरिया पेरौक्साइड, वेंज़ोयेल पेरोक्साइड, परवोरेट, परसल्फ़ेट, परकार्वोनेट, ओज़ोन, धातुओं, मैंगनीज़, सीसा, चाँदी, निकेल, कोवाल्ट, और क्रोमियम के महीन ऑक्साइड और लवण हैं। अल्प मात्रा में हैलोजन यौगिकों की उपस्थिति से—कार्वन टेट्राक्लोराइड, हेक्साक्लोरो-ईथेन, ट्राइक्लोरो ऐसिटिक अम्ल आदि से वहुत सुविधा होती है।

एक पेटेंट में इसका वर्णन इस प्रकार किया है।

भार में १५० भाग व्यूटाडिन और १५ भाग हेक्साक्लोरोईथेन को १५० भाग जल में १५ भाग सोडियम ओलिएट के विलयन में पायस वनाकर सामान्य ताप अथवा कुछ ऊँचे ताप पर रखने से ५ दिन में पर्याप्त मात्रा में कृत्रिम रवर प्राप्त होता है। हेक्साक्लोरोईथेन की अनुपस्थिति में रवर केवल ४५ प्रतिशत प्राप्त होता है और समय की वृद्धि से इस मात्रा में विशेष वृद्धि नहीं होती।

एक आदर्श पायस प्रतिक्रियावाला मिश्रण यह है।

व्यूटाडिन	६०–७५ भाग
एस्टाइरिन	४०–२५ भाग
पायस प्रतिकारक	१–५ भाग
पुरुभाजन उत्प्रेरक	०·१–१·०० भाग
सुधारक प्रतिकारक	०·१–१·०० भाग
जल	१००–२५० भाग

पायस पुरुभाजन में निम्नलिखित पदार्थों के योग से आवश्यक पायस वनता है।

जल—पायस वनाने के लिए समस्त भार का ६० से ८० प्रतिशत पानी उपयुक्त होता है। पानी में लोहा, चूना और कार्वनिक अपद्रव्य नहीं रहना चाहिए।

प्रधान एक-भाज—पुरुभाजन के लिए व्यूटाडीन, विनील क्लोराइड आदि एक-भाज रहना चाहिए। इस एक-भाज की मात्रा १५–३० प्रतिशत रहती है।

गौण एक-भाज—एस्टाइरिन, एक्रिलिनाइट्राइल, एक्रिलिक एस्टर, विलीनऐसिटेट आदि एक-भाज भी रहते हैं, यदि सह-पुरुभाज वनाना होता है। ऐसे एक-भाज की मात्रा अन्तिम सह-पुरुभाज के २० से ४० प्रतिशत अथवा प्रारम्भिक कोलायड का ५–१५ प्रतिशत रहती है।

पायस प्रतिकारक—पुरुभाज प्राप्त होने की मात्रा का ०·२ से २·० प्रतिशत यह प्रतिकारक रहता है। इन प्रतिकारकों का वर्णन ऊपर हो चुका है।

स्थायीकारक—संरक्षक कोलायड इस कारण डाले जाते हैं कि पायस का असामयिक अवक्षेपन न हो जाय। इसके लिए जिलेटिन, सरेस, केसीन, स्टार्च, डेक्स्ट्रिन, मेथिल सेल्यूलोस,

पोलिविनील एलकोहल आदि डाले जाते हैं। इसकी मात्रा भार में पुरुभाज के २ से ५ प्रतिशत रहती है।

तल तनाव के नियंत्रक—देखा गया है कि पाँच कार्बन से ८ कार्बन परमाणुवाले वसा, एलकोहल और सौरभिक एलकोहल और ऐमिन इसके लिए उपयुक्त हैं। इनका कार्य कैसे होता है, इसका पूरा ज्ञान हमें नहीं है। पुरुभाज की मात्रा की ०.१ से ०.५ प्रतिशत मात्रा की आवश्यकता पड़ती है।

उत्प्रेरक—ये पुरुभाजन की गति को बढ़ाते हैं; पर इनकी अधिक मात्रा से उत्पाद का अणुभार कम हो जाता है। इस कारण इनकी मात्रा ०.१ से १.० प्रतिशत रहनी चाहिए। इनके नामों का वर्णन ऊपर हो चुका है। उनमें किसी का व्यवहार हो सकता है।

नियंत्रक—इनके कार्य कैसे होते हैं, इसका ठीक ठीक पता नहीं है। इनकी मात्रा २ से ५ प्रतिशत रहनी चाहिए। ऐसे पदार्थों में क्लोरीनवाले वसा-हाइड्रोकार्बन, कार्बन टेट्राक्लोराइड, एथिलिन क्लोराइड, हेक्सा-क्लोरो-ईथेन और इसी प्रकार के अन्य पदार्थ हैं।

पी-एच-व्यवस्थापक या बफर—पायस पर हाइड्रोजन आयन का बहुत प्रभाव पड़ता है। अतः पी-एच मान का ठीक-ठीक रहना बहुत आवश्यक है। बफ़र डालकर पी-एच का मान ठीक रखते हैं। फ़ास्फेट, कार्बोनेट औ ऐसिटेट इत्यादि इसके लिए उपयुक्त होते हैं। इसकी उपयुक्त मात्रा २ से ४ प्रतिशत रहनी चाहिए।

मुएलर ने ब्यूना-एन पायस बनाने सूत्र यह दिया है।

		भाग
२० पाउण्ड	ब्यूटाडिन	५०
२० पाउण्ड	एक्रिलोनाइट्राइल	५०
५० पाउण्ड	जल	१२५
१७५ ग्राम	सोडियम फ़ास्फ़ेट	१.०
१०० ग्राम	साइट्रिक अम्ल	०.५
२८० ग्राम	एक्वारेक्स-डी	१.५
२० ग्राम	पोटैसियम सायनाइड	०.१
२५० ग्राम	कार्बन टेट्राक्लोराइड	१.५
१५ ग्राम	सोडियम परबोरेट	०.०७५
६० ग्राम	एसिटलडीहाइड	०.३

ब्यूना-एस पायस का सूत्र

२० पाउण्ड	ब्यूटाडिन	५०
२० पाउण्ड	एस्टाइरिन	५०
५० पाउण्ड	जल	१२५
१३०० ग्राम	एक्वारेक्सडी	७.३
६८० ग्राम	सोडियम फ़ास्फ़ेट	३.७५
१३५ ग्राम	सोडियम परबोरट	०.७५
५१० ग्राम	कार्बन टेट्राक्लोराइड	२.८
६० ग्राम	ऐसिटलडीहाइड	०.३

जिन पदार्थों से इसका स्कंधन होता उनमें निम्नलिखित पदार्थ हैं—

ऐसिटिक अम्ल
फार्मिक अम्ल
कैलसियम क्लोराइड
कैलसियम ऐसिटेट
कैलसियम नाइट्रेट
कैलसियम फार्मेट
जिंक क्लोराइड
आमोनियम ऐसिटेट
ऐसिटोन
मेथिल एलकोहल
ऐलम (फिटकिरी)

१०० भाग ब्यूना-एन आक्षीर के अवक्षेपन के लिए स्कंधकों की निम्नलिखित मात्रा लगती है—

	भाग
एल्यूमिनियम क्लोराइड	१·५
फेरिक क्लोराइड	२·०
कैलसियम क्लोराइड	२·५
बेरियम क्लोराइड	५·२
एसिटोन	६८
एथिल एलकोहल	११०

निम्नलिखित प्रतिकारकों से उसका शर बनना हो सकता है—

ट्रैगैन्थ गोंद
कास्टिक सोडा
आइसलैण्ड काई
आइरिश काई
एलगिनिक अम्ल (क्षारीय विलयन)
अमोनियम एलगिनेट

नियोप्रीन का पुरुभाजन पायस पुरुभाजन से होता है।

कृत्रिम रबरों में थायोकोल रबर का स्थान बहुत ऊँचा है। पहले-पहल १६३२ ई० में यह तैयार हुआ था। इसके महत्त्व का कारण यह है कि इसमें पट्रोलियम तेल के प्रति प्रतिरोधकता का गुण बहुत अधिक है। इसकी वितान-क्षमता भी बहुत अधिक होती है। इस कारण पेट्रोल-नल के आस्तर इसीके बनते हैं। पेट्रोलियम टंकियों के आस्तर भी इसीके बनते हैं। बहुत काल तक पेट्रोल के स्पर्श में रहने पर भी उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। अनेक प्रकार के थायोकोल रबर बने हैं।

ऐथिलीन डाइक्लोराइड और सोडियम टेट्रा-सल्फ़ाइड के संघनन से यह बनता है। ऐथिलीन डाइक्लोराइड में सोडियम टेट्रासल्फ़ाइड का विलयन धीरे-धीरे डाला जाता है। सोडियम टेट्रा-सल्फ़ाइड के विलयन में प्रक्षेपण प्रतिकारक के रूप में मैगनीशियम हाइड्रॉक्साइड डालते हैं। प्रक्रिया का ताप ८०°श० रहता है और ५ घण्टे तक उसे ज़ोरों से प्रक्षुब्ध करते रहते हैं। इससे आक्षीर बनता है जिससे ठोस धीरे-धीरे बैठता है। अधिक पानी को बहा लेते हैं और अनेक बार पानी से धोते हैं। अन्त में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के द्वारा रबर का स्कंधन हो जाता है। पात्र के पेंदे में रबर का मोटा स्तर बनता है।

उन्नीसवाँ अध्याय

कृत्रिम रबर के गुण

कृतिम रबर के गुणों के वर्णन करने में हमें प्राकृत्रिक रबर के गुणों का स्मरण रखना चाहिए। साधारणतया प्राकृतिक रबर के गुण निम्नलिखित होते हैं।

	शुद्ध रबर	सान्द्र रबर	मृदुगंध की रबर २०%गन्धक	कठोरगंध की रबर ३२%गन्धक
घनत्व	०.६०६०	०.६११	०.६२३	१.१७३
विशिष्ट ताप (कलारी प्रति डिगरी)	०.४४७	—	०.५१०	०.३४१
दहन ताप (कलारी प्रति ग्राम)	१०८२०	—	१०६३०	७६२०
वर्तनांक	१.५१६०	१.५१६००	१.५३६४	१.६
अधिविद्युतांक (प्रतिसेंकड १००० चक्र)	२.३७	२.४५	२.६८	२.८२
सामर्थ्य गुणक (प्रतिसेंकड १००० चक्र)	०.००१६	०.००१८	०.००१८	०.००५१
चालकता (महम सी एम०)	२३×१०^{-१८}	४२०×१०^{-१८}	१३×१०^{-१८}	१५×१०^{-१८}

विभिन्न रबरों की तुलना के लिए रबर के प्रमुख लक्षण टूटने के समय की वितानक्षमता और टूटने के समय के दैर्घ्य हैं, पदार्थों के मापांक से भी तुलमनात्मक ज्ञान प्राप्त होता है। ३०० प्रतिशत दैर्घ्य पर पदार्थ की वितान-क्षमता को मापांक कहते हैं। मापांकके ऊँचा होने से अधिक दृढ़ता और कठोरता का बोध होता है और निम्न मापांक से मृदुता का बोध होता है। $म_{३००}$ से ३०० प्रतिशत दैर्घ्य पर मापांक का तात्पर्य है।

वलकनीकरण से रबर की कठोरता बढ़ जाती और उससे वितान-क्षमता बढ़ जाती है। वलकनीकरण को, जैसे ऊपर कहा गया है, अभिसाधन भी कहते हैं। वलकनीकरण से वितान-क्षमता बढ़ जाती है। महत्तम पर पहुँच जाने पर उस पर अनेक काल तक वह स्थिर रहती है।

रबर की कठोरता भी एक महत्त्व का गुण है, और इसे शोरे के प्रवेशन उपसाधन से नापते हैं।

स्थायीसम की डिगरी से पदार्थों की प्रत्यास्थता का पता लगता है। इससे पता लगता है कि तान पर रहने के बाद पदार्थ में कितनी विकृति रह जाती है। इसके लिए पदार्थ को एक नियमित सीमातक खींचकर कुछ समय के लिए उसी दशामें रखे रहते हैं। फिर तनाव को ढीलाकर देते और जहाँ तक कम हो सकता है उसे होने देते हैं। लम्बाई में प्रतिशत वृद्धि पदार्थ का स्थायीसम होता है।

प्रत्यास्थ पदार्थों के एक बड़े महत्त्व का गुण उनका प्रलचक है। रवर का प्रलचक सब से अधिक होता है। अन्य किसी पदार्थ का प्रलचक रवर के बरावर नहीं होता। रवर से कितनी शक्ति किसी पदार्थ को प्राप्त होती है यह प्रलचक की माप है। रवर पर गिरकर इस्पात का गेंद कितना ऊँचा उठ सकता है इसी माप से प्रलचक का निर्धारण होता है। ऊपर उठने की प्रतिशतता आघात प्रलचक की माप है।

शैथिल्य भी बड़े महत्त्व का गुण है। शथिल्य से पता लगता है कि ताप के रूप में प्रसार और प्रत्याकर्षण में कितनी शक्ति नष्ट होती है। रवर का शैथिल्य वहुत कम होता है।
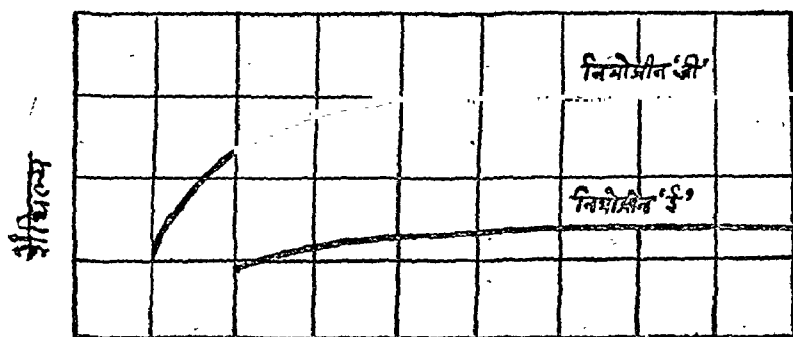
चित्र संख्या २४—अभिसाधन और शैथिल्य का सम्वन्ध

अभिसाधन और शैथिल्य में जो सम्वन्ध है वह चित्र से मालूम होता है। अभिसाधन के समय की वृद्धि से शैथिल्य कुछ समय के वाद प्रायः स्थायी हो जाता है।

कार्वन काल के मिलाने से रवर के गुणों में वहुत परिवर्तन होता है। वहुत महीन कठोर कार्वन काल से रवर का तन्य वल वहुत वढ़ जाता है; पर शैथिल्य और प्रक्षेप घट जाता है। कार्वन के बड़े-बड़े मृदुतर कणों से शैथिल्य उतना अधिक नहीं घटता; पर उससे वितानक्षमता उतनी ऊँची नहीं होती। इससे आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्वन को मिलाकर भिन्न-भिन्न प्रकार के रवर भिन्न-भिन्न कामों के लिए तैयार होते हैं।

कृत्रिम रवर

जर्मनी में कृत्रिम रवर प्रधानतया ब्यूटाडिन से तैयार होते हैं। इससे तैयार रवर को ब्यूना-एस, पर-ब्यूनान और पर-ब्यूनान-एक्सट्रा कहते हैं। ब्यूना-एस के ही टायर वनते हैं। इससे इसकी मात्रा सवसे अधिक तैयार होती है। रूस में ब्यूटाडिन से एस-के ए और एस-के-वी रवर वनते हैं। अमेरिका में ब्यूना-एस, पर-ब्यूनान, हाइकर, चिमिगम और ब्यूटिल रवर ब्यूटाडिन से वनते हैं। रूस में वने रवर और ब्यूटिल रवर को छोड़कर अन्य सव रवर ब्यूटाडिन से सहपुरुभाजन से कृत्रिम रेज़िन एक भाज के सहयोग से वनते हैं। कृत्रिम रेज़िन एक-भाज में सवसे महत्व का पदार्थ एस्टाइरिन है। एस्टाइरिन और ब्यूटाडिन के सहयोग से ब्यूना-एस वनता है। 'नियोप्रीन' और 'थायोकोल' में प्रधानतया ब्यूटाडिन रहता है अन्य रवरों में ब्यूटाडिन के साथ एक्रिलिक नाइट्राइल और अन्य एक्रिलिक प्रसूत रहते हैं।

ब्यूना-एस का निर्माण अव अमेरिका में भी अधिक मात्रा में होने लगा है क्योंकि इस रवर में तैल प्रतिरोध का गुण होता है। ऐसे रवर के वहाँ अनेक नाम दिये गये हैं।

उसे जी-आर-एस, व्यूना-एस, व्यूटाप्रीन-एस, चेमिगमचतुर्थ, हाइकर-टीटी, व्यूटन-एस इत्यादि कहते हैं।

इन सब रवरों के गुण प्राकृतिक रवर से होते हैं और सामान्य रवर की मशीनों के उपयोग से इनका काम चल जाता है।

कुछ गुणों में ये प्राकृतिक रवर के गुणों से श्रेष्ठ होते हैं। कृत्रिम रवर का मूल्य अब धीरे-धीरे कम हो रहा है तो भी प्राकृतिक रवर के मूल्य से अभी कुछ अधिक है।

एस० के० वी० रवर एलकोहल से प्राप्त व्यूटाडिन से बनता है और एस० के० ए० रवर पैटोलियम से प्राप्त व्यूटाडिन से। ये बहुत-कुछ जर्मनी में बने व्यूना ८५ और व्यूना ११५ से मिलते जुलते हैं। व्यूना ८५ से उत्कृष्ट कोटिका कड़ा रवर बनता है।

एस० के० वी० रवर में चिपकने का गुण अपर्याप्त होता है। अतः इस रवर में यह गुण लाने के लिए विशेष उपचार की आवश्यकता पड़ती है। उसे वायु में १४०° श० तक गरम करने अथवा पारा-नाइट्रोसो-डाइमेथिल एनिलिन सदृश प्रतिकारक डालने से यह गुण आ जाता है। ऐसे रवर का अभिसाधन (वलकनीकरण) विनागंधक के होता है। बेंजोल पेरोक्साइड सदृश ऑक्सीकारकों से अभिसाधन में सहूलियत होती है। यदि इसका ३ प्रतिशत रहे तो १५° श० पर १५ मिनटों में अभिसाधन हो जाता है।

व्यूना-एस को अमेरिका में जी० आर० एस० कहते हैं। देखने में यह धुँधला कपिल वर्ण का होता है। और इसमें एस्टाइरिन की स्पष्ट गंध होती है। व्यूटाडिन को २५ प्रतिशत एस्टाइरिन के सहभाजन से यह बनता है। इसका विशिष्ट घनत्व ०.९२ होता है। प्राकृतिक रवर से यह कुछ चीमड़ होता है। इसमें ताप-प्रतिरोध और घर्षण-प्रतिरोध अधिक होता है; पर तैल में विलीन होने में इसमें प्राकृतिक रवर से कोई विशेपता नहीं है। इसके बने टायर का जीवन प्राकृतिक रवर के बने टायर से ३५ प्रतिशत अधिक होता है। इस कारण इसका टायर बनना अमेरिका में भी अच्छा समझा जाता है। उष्ण वायु से इस रवर को सुनम्य बना सकते हैं।

टायर बनाने में व्यूना-एस अच्छा समझा जाता है क्योंकि इसमें चिपकने का गुण उत्कृष्ट कोटिका होता है जिससे टायर बनाने में सरलता होती है। पर-व्यूनान से यह सस्ता भी होता है। इसकी वितानक्षमता ऊँची होती है और श्रान्ति प्रतिरोध उत्तम, लचक प्रतिरोध बहुत सन्तोषप्रद होता है। सूर्य प्रकाश के प्रभाव को यह सहन कर सकता है और जल्दी पुराना भी नहीं होता।

व्यूना-एस शुद्ध हाइड्रोकार्बन है। इसमें वैद्युत् गुण उत्कृष्ट कोटि के होते हैं। इस कारण केवल के पृथक्न्यासन और परिरक्षक धान के लिए यह प्रचुरता से उपयुक्त होता है। प्राकृतिक रवर से अधिक इसमें जल प्रतिरोधकता होती है। और उच्चताप पर भी बहुत समय तक इसके वैद्युत् गुण विद्यमान रहते हैं। ओज़ोन के प्रति भी इसमें अच्छी प्रतिरोधकता होती है।

यह जल्दी जीर्ण भी नहीं होता और ताप का प्रतिरोधक भी होता है। सम्भवतः इसमें फटने का दुर्गुण रहता है।

परब्यूनान और परब्यूनान-एक्स्ट्रा—ब्यूटाडिन और एक्रिलिक नाइट्राइल के सहभाजन से परब्यूनान प्राप्त होता है। इसमें ७ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। ऐसे रबर में प्रायः २५ प्रतिशत एक्रिलिक नाइट्राइल रहता है। एक्रिलिक नाइट्राइल के अनुपात की वृद्धि से तेलों और विलायकों के प्रति प्रतिरोधकता बढ़ जाती है। पर साथ ही रबर अधिक ताप-सुनम्य हो जाता है। इन दोनों के बीच साम्य स्थापन के लिए एक्रिलिक नाइट्राइल की मात्रा प्रायः ३५ प्रतिशत रह सकती है। ऐसे रबर को परब्यूनान-एक्स्ट्रा कहते हैं।

यह रबर हल्के रंग का होता है। इसमें कोई गंध या स्वाद नहीं होता। पेट्रोलियम और अनेक कार्बनिक विलायकों से यह फैलता या फूलता नहीं है। इसके अतिरिक्त यह ताप प्रतिरोधकता अपघर्षण प्रतिरोधकता और जीर्णन में प्राकृतिक रबर से उत्तम होता है।

परब्यूनान कम ताप-सुनम्य होता है। इसमें सुनम्यकारक डालने से सुनम्यता बढ़ जाती है। इससे चिपचिपाहट भी कम हो जाती है। इसमें ५ से १० प्रतिशत सुनम्यकारक डालने की आवश्यकता पड़ती है। विशेष कामों में यह १५० प्रतिशत तक डाला जा सकता है।

डाइबेंजिलईथर, ट्राइफेनिल फ़ास्फेट, थलिक अम्ल ऐस्टर, डाइब्यूटिल सीबेकेट इत्यादि सुनम्यकारक अच्छे हैं। ये सब उत्पाद को कोमल बनादेते पर साथ ही प्रत्यास्थता को भी बढ़ादेते हैं। गंधक के यौगिकों के डालने से तेल प्रतिरोधकता बहुत बढ़ जाती है। फूल जाने की प्रतिरोधकता भी इससे बढ़ जाती है। परब्यूनान के सुनम्यकारक में प्रकृतिक रबर भी है। २० प्रतिशत प्राकृतिक रबर डालने से ऐसे उत्पाद के गुण उत्तम हो जाते हैं। सुनम्यकारक में निम्नलिखित गुण होना अच्छा है—

(१) अवाष्पशीलता और अदहनशीलता;
(२) जल प्रतिरोधकता ;
(३) पेट्रोल और तेल प्रतिरोधकता ;
(४) निम्न हिमांक ;
(५) गंधहीनता, रासायनिक स्थायीत्व, विषैला न होना ;
(६) उत्तम वैद्युत गुण।

बहुत कम पदार्थ है जिनमें उपर्युक्त सब गुण होते हैं।

परब्यूनान में पूरक पदार्थ भी डाले जाते हैं। ऐसे पदार्थों में जिंक ऑक्साइड, चीनीमिट्टी, कैलसियम कार्बोनेट, लिथापोन इत्यादि हैं। महीन कठोर कार्बनकाल के डालने से वितानक्षमता और घर्षण प्रतिरोध बहुत बढ़ जाता है। मैगनीशिया और मैगनीशियम कार्बोनेट इसमें उपयुक्त नहीं होते। १५ प्रतिशत तक जिंक ऑक्साइड उपयुक्त हो सकता है। बेरियम सल्फ़ेट भी उपयुक्त हो सकता है। इसमें प्रायः २ प्रतिशत तक प्रति-ऑक्स कारक फेनिल-बीटा-नैफ्थील ऐमिन उपयुक्त हो सकता। इसके डालने से प्रकाश में खुला रखने से रबर में रंग आ जाता है। इस कारण हल्के रंग के पदार्थों में इसका उपयोग कम-से-कम मात्रा में होता है।

परब्यूनान में कुछ मोम डालने से यह सूर्यप्रकाश के प्रभाव को अधिक रोक सकता है पैराफिन मोम, ओज़ोकेराइट, सीरेसिन, पेट्रोलियम मोम इत्यादि उपयुक्त हो सकते हैं।

परब्यूनान रबर में २ प्रतिशत गंधक के रहने से रबर की कठोरता और मापांक बढ़ जाता
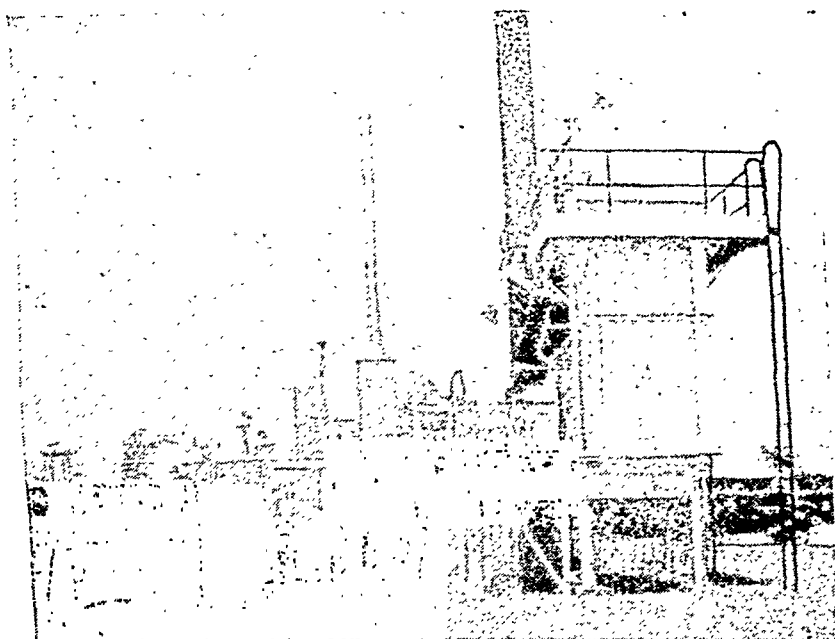
चित्र २५—यह एक कारखाना है, जिसमें व्युटेन से व्युटाडीन वनता है। १६४१ ई० में १७५,००० वैरेल व्युटेन प्राप्य था। कुछ तो प्राकृत गस से, कुछ प्रभंजन से और कुछ कच्चे पेट्रोलियम से प्राप्त हुआ था। विहाइड्रोजनीकरण से व्युटाडीन वनता है। उत्प्रेरकों की उपस्थिति में यह परिवर्तन होता है। उत्प्रेरक पर कार्वन जम जाता है। कार्वन को जलाकर उत्प्रेरक को फिर क्रियाशील वना लेते हैं। हाउड्री विधि में ६६·६ प्रतिशत व्युटाडीन प्राप्त होता है। व्युटाडीन का मूल्य प्रति पाउंड रवर का ६·४२ प्रतिशत पड़ता है।

ऐसे कारखाने के लिए अमेरिका में ३६ लाख ४२ हजार डालर पूँजी लगती है।

विहाइड्रोजनीकरण संयन्त्र का खर्च	१,६०२,००० डालर
संशोधन संयन्त्र का खर्च	६५५,००० ,,
अन्य सामानों के खर्च	५५६,००० ,,
प्रवन्ध के अन्य खर्च	२२२,००० ,,
	३६,४,१००० डालर

ऐसे कारखाने में	विजली प्रति दिन	३३,६०० इकाई
तेल या गैस	प्रति दिन	३०६ वरेल
भाप	,,	२,०००,००० पाउंड
ठण्डा करने के लिए जल	प्रति मिनट	१०,००० गैलन
अन्य जल	,,	३,००० ,,

चित्र २६—ब्यूना-रबर के निर्माण का एक संयन्त्र
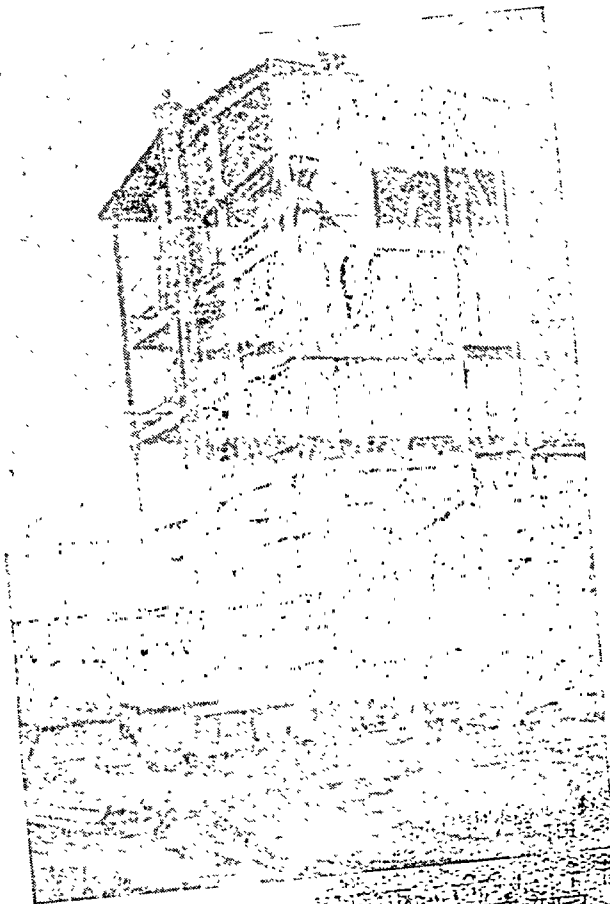
और उसका दैर्घ्य कम हो जाता है। यदि गंधक की मात्रा २ प्रतिशत से अधिक न हो तो वितानक्षमता महत्तम होती।

वलकनीकरण में त्वरक का वही प्रभाव होता है जो प्राकृतिक रबर पर होता है। यदि गंधक की मात्रा ३० प्रतिशत से अधिक हो तो इससे कठोर रबर प्राप्त होता है। ऐसा रबर एवोनाइट से श्रेष्ठ होता है। यह कठोर रबर शीघ्र आक्रान्त नहीं होता। इस कारण रासायनिक प्रतिकारकों के प्रति प्रतिरोधक होता है। इस रबर से सामानों के बनाने में प्रायः वे सब ही यंत्र उपयुक्त हो सकते है जो प्राकृतिक रबर के सामान बनाने में उपयुक्त होते हैं। इसका अभिसाधन दवाव अथवा वाष्प दोनों से समानरूप से हो सकता है। इसकी नलियाँ भी सरलता से बन जाती है, यदि इसमें उपयुक्त सुनम्यकारक डाला गया हो।

यह रबर लोहा, इस्पात और अन्य लोहे की मिश्र-धातुओं से सरलता से चिपक जाता है। इसके लिए क्लोरीनयुक्त रबर का एक लेप लगाकर धातु के तल को पूर्णरूप से साफकर तेल से मुक्तकर क्लोरीनयुक्त रबर के १५ प्रतिशत टोल्विन में विलयन बनाकर उससे तल को दो तीन बार लेपकर रबर के तलको रेत से रगड़ कर कुछ रुखड़ा बनाकर चिपका देते हैं।

परब्यूनान का अधिविद्युत् अंक १५ है। यह विद्युत् का अर्ध-चालक होता है। इस पर तेलों और विलायकों का बहुत अल्प प्रभाव पड़ता है। इन तेलों और विलायकों के संसर्ग में रहने पर भी इसमें वितान-क्षमता बनी रहती है।

एलकोहल और ग्लाइकोल से यह फूलता नहीं है। विलायकों और ताप के प्रति अवरोधक होने पर भी यह अपघर्षण के प्रति बहुत प्रतिरोधक होता है। ३००°फ० तक यह उपयुक्त हो सकता है और −४५°फ० पर यह फटता है। इनजिनियरिंग और मोटरकार के अनेक भाग परब्यूनान के बनते हैं।

खाद्यपदार्थों के रखने के पात्र, दस्ताने, पेट्रोलकी नलियाँ, गठरी बाँधने के सामान, बाँधने की डोरियाँ, टोंटियाँ, चुचूक इत्यादि इसके बनते हैं।

परब्यूनान-एक्स्ट्रा में एक्रिलिक नाइट्राइल अधिक रहने से तेल आदि विलायकों के प्रति प्रतिरोधकता परब्युनान से अधिक रहती है। पर अन्य गुणों में यह परब्यूनान सा ही होता है। इसके फटने का ताप कुछ ऊँचा होता है।

हाइकर—यह ब्यूटाडिन और एक्रिलिक नाइट्राइल (२५ प्रतिशत) के सहयोग से प्राप्त कृत्रिम रबर का व्यवसाय का नाम है। यह अम्बर-सा रबर है जिसका विशिष्ट घनत्व १·०० होता है, इसकी गंध सुहावनी होती है। अन्य रबरों से मिलकर इसे काम में लाते हैं। [illegible] किसिम होते हैं जिसमें हाइकर टी० टी०, हाइकर ओ० आर० और हाइकर [illegible] इनके गुणों में बहुत थोड़ा अन्तर होता है, अन्यथा वे एक दूसरे से बहुत [illegible] से इसका अभिसाधन होता है। मरकप्टोबेंज़थायज़ोल इसके लिए [illegible]ाइड का ५ भाग और लिथार्ज (मुर्दासंख) का १० भाग

[illegible] लियम से प्राप्त ब्यूटाडिन से बनता है। एस्टाइरिन और एक्रिलिक कृत्रिम रेजिन के पुरभाजन से यह प्राप्त होता है। यह अम्बर

के रंग का क्रीप-सा रवर होता है। इसमें सुगन्ध होती है और इसका विशिष्ट घनत्व १.०६ होता है।

यह विभिन्न कठोरता का वन सकता है। यह बहुत चीमड़ होता है। इसमें अन्य रबरों के सदृश पूरक, सुनम्यकारक इत्यादि डाले जा सकते हैं। इससे सामान बड़ी सरलता से बनते हैं। चीड़ का कोलतार इसके लिए अच्छा सुनम्यकारक है।

नियोप्रीन रबर——कृत्रिम रबरों में नियोप्रीन रबर सबसे श्रेष्ठ है। प्रायः १५ वर्षों से ही यह व्यापार में आया है पर इतने ही समय में इसने अपनी श्रेष्ठता स्थापित करली है। प्रायः एक लाख टन नियोप्रीन प्रतिवर्ष बनता है।

नियोप्रीन में क्लोरीन प्रायः ४० प्रतिशत रहता है। इससे यह अदाह्य है। दहन का यह पोषक भी नहीं है। इसी कारण केवल के लिए यह उत्तम समझा जाता है।

इसकी विशेषता तेल और विलायकों के प्रति प्रतिरोधकता है। उद्भिद तेल, खनिज तेल और चर्बी इसमें प्रविष्ट नहीं करती। इनसे यह केवल कुछ फूल जाता है। इससे इसके बल का कुछ विशेष ह्रास नहीं होता। पैराफिन हाइड्रोकार्बन और अन्य अनेक विलायकों का इस पर कोई असर नहीं होता। क्लोरीनयुक्त और सौरभीय हाइड्रोकार्बनों से यह फूलता और घुलजाता है। रासायनिक द्रव्यों से भी यह बहुत अल्प आक्रान्त होता है। प्रवल अम्लों को इस पर कोई असर नहीं होता। इस कारण अम्लों के रखने की टंकियों में आस्तर में यह विस्तार से उपयुक्त होता है।

वैद्युत् गुण इसमें निकृष्ट कोटिका होता है। यह अधिक जल भी सोखता है। इसके साथ मैंगनीशिया, जिंक ऑक्साइड और काष्ठ रोज़िन मिलाये जा सकते हैं। जिंक ऑक्साइड इसका अभिसाधन भी करता है। १०० भाग नियोप्रीन में ५ भाग जिंक आक्साइड उपयुक्त होता है। इसमें १५ भाग मैगनीशिया जिंक ऑक्साइड के झुलसने के अवगुण के रोकने में सहायता करता है। १० भाग काष्ठ रोजिन से इसके भौतिकगुणों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। मैगनीशिया से उत्पाद की वितान-क्षमता भी बढ़ जाती है। मैगनीशिया के स्थान में लिथार्ज उपयुक्त हो सकता है।

मृदुकारक——नियोप्रीन के साथ अलसी, विनौले, सरसो, रेंड़ी सदृश उद्भिद तेल और खनिज तेल, ट्राइक्रिसील-फास्फ़ेट, ट्राइफेनिल फ़ास्फ़ेट, क्लोरीनयुक्त नैफ्थलीन, क्लोरीनयुक्त पैराफिन इत्यादि मृदुकारक के रूप में उपयुक्त हो सकते हैं। पूरक भी इसमें उपयुक्त हो सकते हैं। चीड़ कोलतार भी काम आ सकता है। पैराफिन मोम और स्टियरिक अम्ल भी स्नेहन के लिए काम आ सकता है।

पूरक पदार्थों से उत्पादन का मूल्य घट जाता और उपयोगि[illegible]
सब से महत्व का पूरक है। कोमल कार्बन उत्तम होता है। [illegible]
भी बलवर्धक होते हैं। मिट्टी और बेराइटीज़ भी अच्छे हे[illegible]

इसके अभिसाधन में गंधक की आवश्यकता नहीं [illegible]
चल जाता है। पर गंधक के रहने से लाभ आवश्य होता है। [illegible]
१४१° श० पर ६० मिनट में सम्पादित हो जाता है। कुछ पदा[illegible]
बहुत कुछ बढ़ा देते हैं। ऐसे पदार्थों में रिसोरसिनोल, कैटिचोल और [illegible]
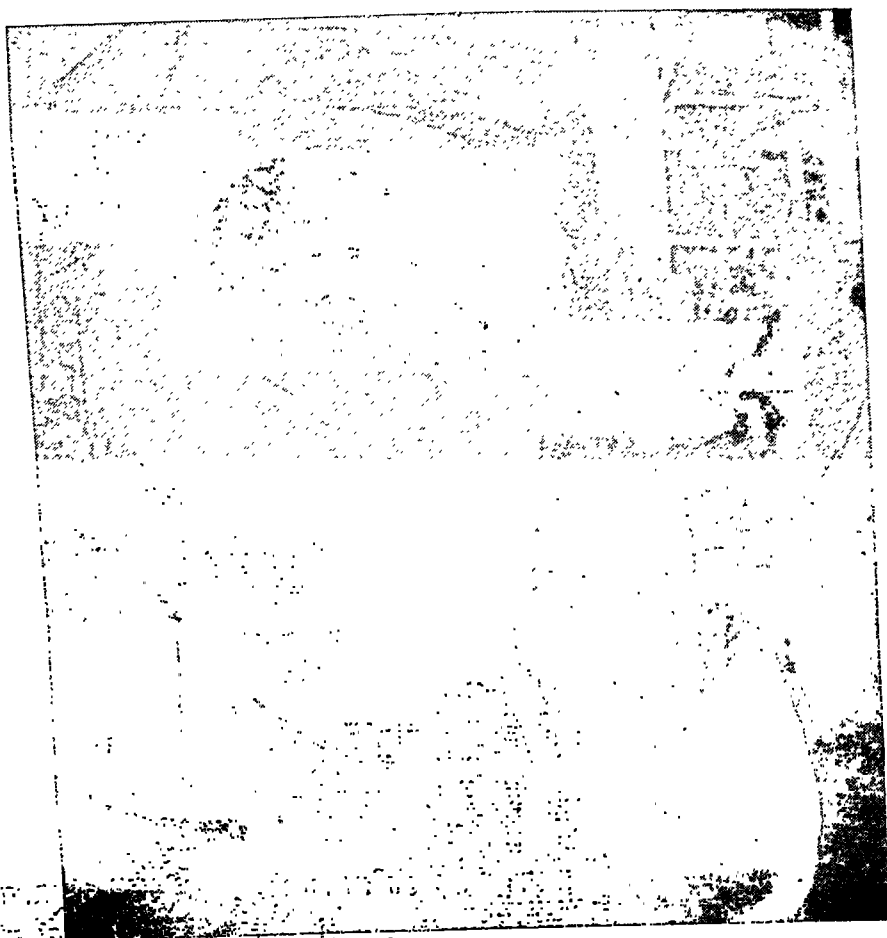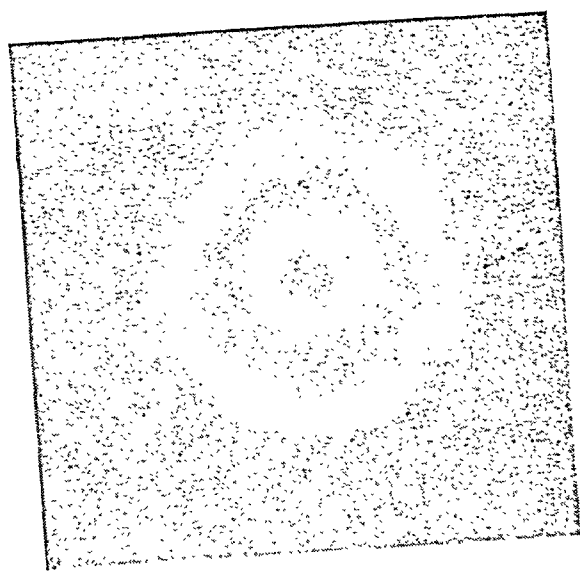
चित्र २७—नियोप्रीन रबर पुरभाजन के वाद

उपर्युक्त गुण नियोप्रीन-ई के हैं। नियोप्रीन-जी के गुण कुछ भिन्न होते हैं। इसमें कोई गंध नहीं होती। इसका अभिसाधन और शीघ्रता से होता है। इसकी वितानक्षमता भी अधिक होती है। इसका लचक-अपघर्षण-प्रतिरोध श्रेष्ठ होता है। इसमें काष्ठ-रेज़िन से कोई लाभ नहीं होता। मेगनीशिया और ज़िंक ऑक्साइड अधिकमात्रा में उपयुक्त होते हैं और उनका अभिसाधन गुण भी श्रेष्ठ होता है। नियोप्रीन में अधिक चिपक होती है। इसमें डाइऑर्थो-टोलिल ग्वेनिडिन सुनम्यकारक का काम देता है। इसके अभिसाधन में १४१°श० पर केवल ३० मिनट लगते हैं। इसमें गन्धक से कोई लाभ नहीं होता। इस कारण यह डाला नहीं जाता है। पूरक पदार्थ और मृदुकारक नियोप्रीन-ई के समान ही उपयुक्त होते हैं। नियोप्रीन-ई से यह कुछ गुणों में श्रेष्ठ होता है।

नियोप्रीन टोल्विन, बेंज़ीन, ट्राइक्लोर-एथिलिन और कार्बन टेट्रा-क्लोराइड में घुल जाता है। इसका विलयन कम श्यान होता है। उष्ण वायु से इसका अभिसाधन होता है। यह रबर सरलता से धातुओं, मिश्रधातुओं, काठ और अन्य तलों से जोड़ा जा सकता है। जोड़ने के लिए क्लोरीनयुक्त रबर का विलयन उपयुक्त होता है।

नियोप्रीन का ऑक्सीकरण अधिक नहीं होता और इसका जीर्णन भी देर से होता है। सूर्य-प्रकाश से यह प्रायः प्रभावित नहीं होता। ओज़ोन भी इसको आक्रान्त नहीं करता। निम्नताप −३०°श० पर यह चमड़े-सा हो जाता और −४०°श० पर भंगुर हो जाता है। पर उपयुक्त सुनम्यकारक के बड़ी मात्रा में डालने से −६०°श० तक इसमें तेल का अवरोध विद्यमान रखा जा सकता है।

पर्याप्त नियोप्रीन का पुनर्ग्रहण आजकल होता है। वल्कनीकृत नियोप्रीन को ५ प्रतिशत साबुन से पीसने से इसका पुनर्ग्रहण हो जाता है। वल्कनीकृत नियोप्रीन में २ प्रतिशत ट्राइ-क्रिसील फ़ास्फ़ेट डालने से भी पुनर्ग्रहण होता है। उसमें अल्प मात्रा में नैफ्थलिन से पुनर्ग्रहण में सहायता मिलती है।

मोटर इंजन, जहाज निर्माण, तेल-शोधन यंत्रों, तेल के नलों, वस्त्रों, ऊपरी वस्त्रों, छदकों (मोटर के छतों), जूतों, छापेखाने के बेलनों और पट्टों, स्पंजों इत्यादि के बनाने में यह लगता है। इसके टायर में कोई विशेषता नहीं होती। सामान्य रबर के टायर से इसका टायर निकृष्ट नहीं होता।

चिपकाने के लिए इसके विलयन उत्तम होते हैं और धातुओं, काठों और वस्त्रों इत्यादि के रबर से चिपकाने में यह उपयुक्त होता है। नियोप्रीन रबर को रूस में 'सोवप्रीन' कहते हैं।

नियोप्रीन की प्राप्ति—एसिटिलिन गैस के अमोनियम क्लोराइड या ऐमिनलवण के सहयोग से प्रस्तुत क्यूप्रस क्लोराइड के सान्द्र विलयन में प्रवाहित करने से एक त्रिभाज प्राप्त चिपकानेवाले सामान इत्यादि बनते हैं। [illegible] ($CH_2 : C : C . CH : CH_2$) कहते हैं। मिला देने से उसके ओज़ोन और अम्ल-अवरोधकों [illegible] सरलता से होकर एक स्वच्छ ६० से ६५ भाग विस्टानेक्स और ४०-३५ भाग [illegible] विलायकों से आक्रान्त नहीं इसके रहने से अम्लों, क्षारों और अन्[illegible]इड से [illegible] उपयुक्त [illegible] एसिटिलिन, जाता है। [illegible]°श० पर उबलता है। इसके पुरुभाजन से शीघ्र [illegible] ठोस में परिणत हो जाता है।

क्यूप्रस् क्लोराइड की उपस्थिति में मोनोविनिल एसिटिलिन पर हाइड्रोजन क्लोराइड की क्रिया से २ – क्लोरो – १:३ – ब्यूटाडिन प्राप्त हो जाता है, जिसे क्लोरोप्रीन कहते हैं।

क्लोरोप्रीन एक रंगहीन द्रव है जिसमें एथिल ब्रोमाइड-सी विशिष्ट गंध होती है। यह ५९.४°श० पर उबलता है। इसका विशिष्ट घनत्व ०.९५८ है। इसका पुरु-भाजन शीघ्रता से होकर वलकनी रबर-सा पदार्थ प्राप्त होता है। रबर में गंध होती है और इसका रंग सन्तोषप्रद नहीं होता; पर पायस पुरुभाजन से ऐसा उत्पाद प्राप्त होता है जिसमें अरुचिकर गंध नहीं होती और जिसका रंग भी हल्का होता है। इसमें कई प्रकार के रबर प्राप्त हुए हैं। ऐसे एक रबर को नियोप्रीन-ई, दूसरे को नियोप्रीन-जी और तीसरे को नियोप्रीन-जी-एन कहते हैं।

पायस पुरुभाजन से नियोप्रीन आक्षीर भी प्राप्त होता है। इस नियोप्रीन आक्षीर से ठोस नियोप्रीन उसी प्रकार प्राप्त होता है जैसे आक्षीर से रबर। इस रबर का भी वलकनीकरण हो सकता है और उसमें अनेक पदार्थों को डालकर उसके गुणों को परिवर्तित कर सकते हैं।

प्रारूपिक नियोप्रीन—

	भाग भार में
नियोप्रीन	१००
लिथोपोन	१०
जिंक ऑक्साइड	५
गंधक	२
फेनिल-बीटा-नैफ्थील एमिन	२
सोडियम डाइब्यूटिल-डाइथायो-कार्बेमेट	०.८

(सब पूरक परिक्षित रहते हैं)

१४°श० पर ३० मिनट में अभिसाधित होता और सूख जाता है।

पोलि-आइसो-ब्यूटिलिन रबर—आइसो-ब्युटिलिन का पुरुभाज पोलि-आइसो-ब्युटिलिन है। आइसो-ब्युटिलिन प्राकृतिक गैस और पेट्रोलियम के प्रभंजन से प्राप्त होता है। इससे जो उत्पाद प्राप्त होता है, उसे अमेरिका में विस्टानेक्स, जर्मनी में ओपेनोल और इंगलैंड में आइसो-लिन कहते हैं।

यदि आइसो-ब्यूटिलिनका पुरुभाजन –५०°श० पर बोरन फ्लोराइड की उपस्थिति में हो तो उससे २५,००० से ४००,००० अणुभार का उत्पाद प्राप्त होता है। आइसो-ब्यूटिलिन में अल्प मात्रा में अपद्रव्य रहने से अणुभार १०,००० तक गिर जाता है।

सलफ्यूरिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल, फार्मल्डीहाइड, फीनोल, क्रीसोल सदृश पदार्थों के ०.५ प्रतिशत की उपस्थिति से प्रतिक्रिया [illegible] बढ़ जाता है और पुरुभाज का अणुभार भी बढ़ जाता है।

ऐसा उत्पाद गंधहीन और स्वादहीन [illegible] ष्ट घनत्व ०.९ होता है। अणुभार के परिवर्तन से विशिष्ट घनत्व में [illegible] परिवर्तन होता है। जिस उत्पाद का अणुभार ८०,००० से कम होता है, उसकी [illegible]-क्षमता कम होती है और जिसका अणुभार १५०,००० से ऊपर होता है उसकी वितान्क्षमता ऊँची होती है।

पोलिआइसो-ब्यूटिलिन संतृप्त हाइड्रोकार्बन है। अन्य रबर असंतृप्त हाइड्रोकार्बन होते हैं। नकी शृंखला लम्बी होती है और बीच-बीच में छोटी-छोटी पार्श्व वसा-शृंखलाएँ लगी हुई । खींचे रबर के एक्स-किरण परीक्षण में यह ठीक रबर-सा व्यवहार करता है। ठीक रबर सा चित्र देता है। इसकी प्रत्यास्थता रबर-सी होती है। संतृप्त पदार्थ की प्रत्यास्थता असंतृप्त पदार्थों सा हो, यह आश्चर्यजनक है।

इसके भौतिक गुण ठीक रबर-से हैं। विस्टानेक्स ठीक रबर-सा है। इसमें रंग नहीं होता। यह स्वच्छ होता है और छूने से रबर-सा मालूम होता है। रबर की अपेक्षा यह कम ताप-सुनम्य होता है। ये गुण १००° श० से नीचे स्पष्ट नहीं होते। २००° श० पर यह किसी आकार में परिणत किया जा सकता है। ३५०° श० पर यह विच्छेदित हो जाता है। यह सूर्य-प्रकाश से बहुत प्रभावित होता है। कुछ समय के बाद यह टूट जाता है। इसके बल और प्रत्यास्थता का ह्रास हो जाता है। कार्बन सदृश पूरक से प्रकाश का प्रभाव बहुत कुछ कम हो जाता है।

रासायनिक द्रव्यों का प्रभाव इसपर सबसे कम होता है। नाइट्रिक अम्ल को छोड़कर अन्य अम्लों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। नाइट्रिक अम्ल का भी प्रभाव बहुत समय के बाद होता है। ८०° श० के ऊपर सल्फ्यूरिक और नाइट्रिक अम्लों का आक्रमण होता है। सान्द्र और तनु क्षारों के प्रति भी इसका प्रभाव ऐसा ही होता है।

ऑक्सीकारकों का प्रभाव भी इसपर नहीं होता। ओज़ोन भी इसे आक्रान्त नहीं करता; क्योंकि इसमें युग्म बन्धन नहीं है। क्लोरीन और ब्रोमीन इसे आक्रान्त करते हैं। इसकी विलेयता रबर-सी होती है। पर एलकोहल, ग्लीसिरोल, ऐसीटोन इत्यादि में यह अविलेय होता है। जल के प्रति यह प्रबल अवरोधक होता है। इस बात में यह प्राकृतिक रबर से बहुत श्रेष्ठ है। चर्बी, वसा और तेलों में यह फूल जाता है। पट्रोल, बेंजीन, टोल्विन, क्लोरीनयुक्त विलायकों इत्यादि में यह फूलता और घुल जाता है। खनिज तेलों, पैराफिन मोम और इसी प्रकार के पदार्थों की इसपर विलायक क्रिया होती है। –७०° श० तक यह भंगुर नहीं होता और १८०° श० तक न कोमल होता है और न पिघलता है।

इसके वैद्युत गुण श्रेष्ठ होते हैं। इसका सामर्थ्य गुणक और अधिविद्युत् अंक बहुत अल्प होता है। इसका अवरोधन बहुत ऊँचा होता है। इसको सरलता से पीस और मिला सकते हैं। पूरक इससे शीघ्र मिल जाते हैं। कोई भी पूरक इस्तेमाल हो सकता है। १००० प्रतिशत तक पूरक इसमें मिला सकते हैं। इसके सामान उन्हीं यंत्रों से बन सकते हैं, जिनसे रबर के सामान बनते हैं। ढाँचे को ठंढा करके तब उनसे सामान निकाल सकते हैं।

आइसो-ब्यूटिलिन के अम्ल-प्रतिरोधक अस्तर, डोरियाँ, बाँधने के सामान, पृथग्न्यास, चिपकानेवाले सामान इत्यादि बनते हैं। प्राकृतिक रबर से यह बड़ी सरलता से मिल जाता है। मिला देने से उसके ओज़ोन और अम्ल-अवरोधक गुण बढ़ जाते हैं। केवल अवरोधन के लिए ६० से ६५ भाग विस्टानेक्स और ४०-३५ भाग रबर से ओज़ोन-प्रतिरोध सर्वश्रेष्ठ होता है।

इसके रहने से अम्लों, क्षारों और अन्य क्षारक लवणों के प्रति रबर का अवरोध बहुत बढ़ जाता है।

ब्यूटिल रबर—ब्यूटिल रबर में असंतृप्ति अल्प, प्रायः पाँच प्रतिशत से कम, होती है। इसका अणुभार ४०,००० और ८०,००० के बीच होता है। इसमें न कोई गंध और न कोई स्वाद होता है। इसका घनत्व ०·९१ होता है। यह सरलता से खींचा जा सकता है।

९० भाग आइसो-ब्युटिलिन के १० भाग ब्युटाडिन के साथ मिलाकर –७८° श० तक ठोस कार्बन डायक्साइड द्वारा ठंढा कर उसमें बोरन ट्राइफ्लोराइड के बुलबुले देने से क्रिया आरम्भ होकर उससे श्वेत ठोस उत्पाद प्राप्त होता है। बोरन फ्लोराइड के स्थान में एथिल क्लोराइड में घुलाकर एल्यूमिनियम क्लोराइड के सहयोग से भी उत्पाद प्राप्त होता है। ८०-९० भाग आइसोब्युटाडिन और २०-१० भाग ब्युटडिन से जो उत्पाद प्राप्त होता है, वह बहुत सुनम्य और प्रत्यास्थ होता है। क्रिया –५०°श० पर सम्पादित होती है। इसका अभिसाधन भी रबर-सा हो जाता है। यह रासायनिक द्रव्यों और ऑक्सीकरण का प्रतिरोधक होता है। ऐसे उत्पाद में ब्युटाडिन का अनुपात ५० से ७५ तक और आइसो-ब्युटाडिन का ५० से ७५ तक रह सकता है। इस क्रिया का सम्पादन बहुत निम्न ताप –९५° श० पर अच्छा होता है।

निम्नलिखित नुस्खे से एक अच्छा ब्युटिल रबर प्राप्त होता है—

	भाग
आइसोब्युटिलिन	१२०
ब्युटाडिन	३०
एथिलिन (विलायक और शीतकारक)	३००
एल्यूमिनियम क्लोराइड	विभिन्न मात्रा
(५ प्रतिशत एथिल क्लोराइड के विलयन में)	
ताप	–९५°श०

इससे सफ़ेद रबर-सा पदार्थ प्राप्त होता है। इससे वास्तविक रबर निम्नलिखित मिश्रण से प्राप्त होता है।

सह-पुरुभाज (उपरोक्त पदार्थ)	१००
जिंक ऑक्साइड	१०
गन्धक	२
स्टियरिक अम्ल	३
जिंक डाइमेथिल-डाइ-थायो-कारबेमेट	१
मर्कैप्टो बेंजथायजोल	०·५
कार्बन काल	२५

१३०° श० पर ५ घंटे तक के वल्कनीकरण से अच्छी प्रत्यास्थता का रबर प्राप्त होता है। इसकी वितान-क्षमता प्रति वर्ग इञ्च २५६० पाउण्ड और टूटने पर दैर्घ्य ११०० प्रतिशत होता है। बेंजीन, एथिलिन, डाइक्लोराइड और प्रबल अम्लों का प्रतिरोधक होता है।

वितान क्षमता की दृष्टि से ब्युटिल रबर भिन्न भिन्न [illegible] हैं। ब्युटिल रबर में १०० भाग में ५ भाग जिंक ऑक्साइड और १५ [illegible] होता है। जि[illegible] सब ही पूरक उपयुक्त होते हैं जो प्राकृति[illegible] [illegible]न-क्षमता कम होती है और जिसका अणुभार को छोड़कर अन्य सब गुण अच्छे हो जा[illegible] ऊँची होती है।
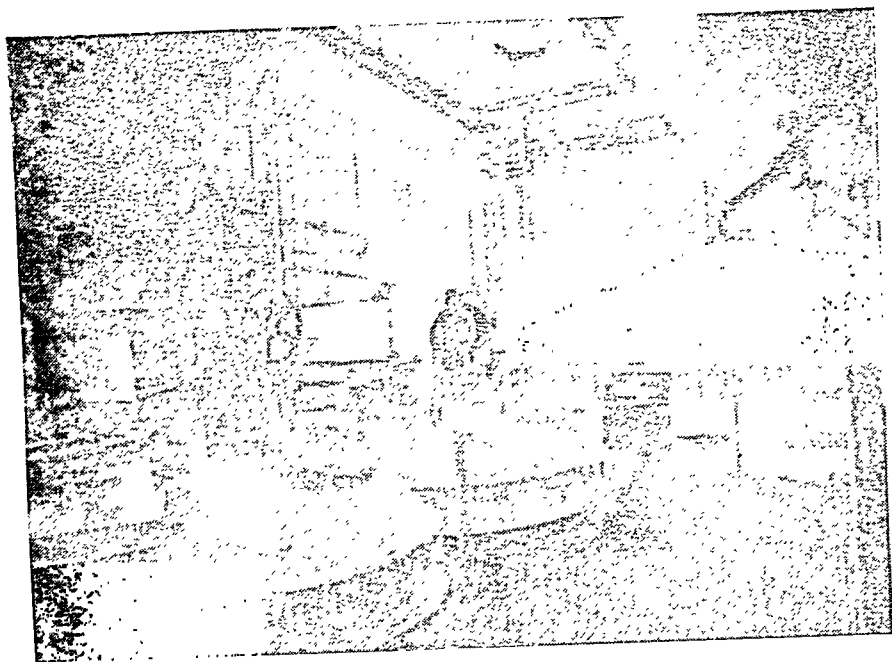
चित्र ३०—पोलीविनील ब्युटिराल के निर्माण में उपयुक्त होनेवाला संयन्त्र

...निकर

इसके रहने से अम्लों, क्षारों और...

जाता है।
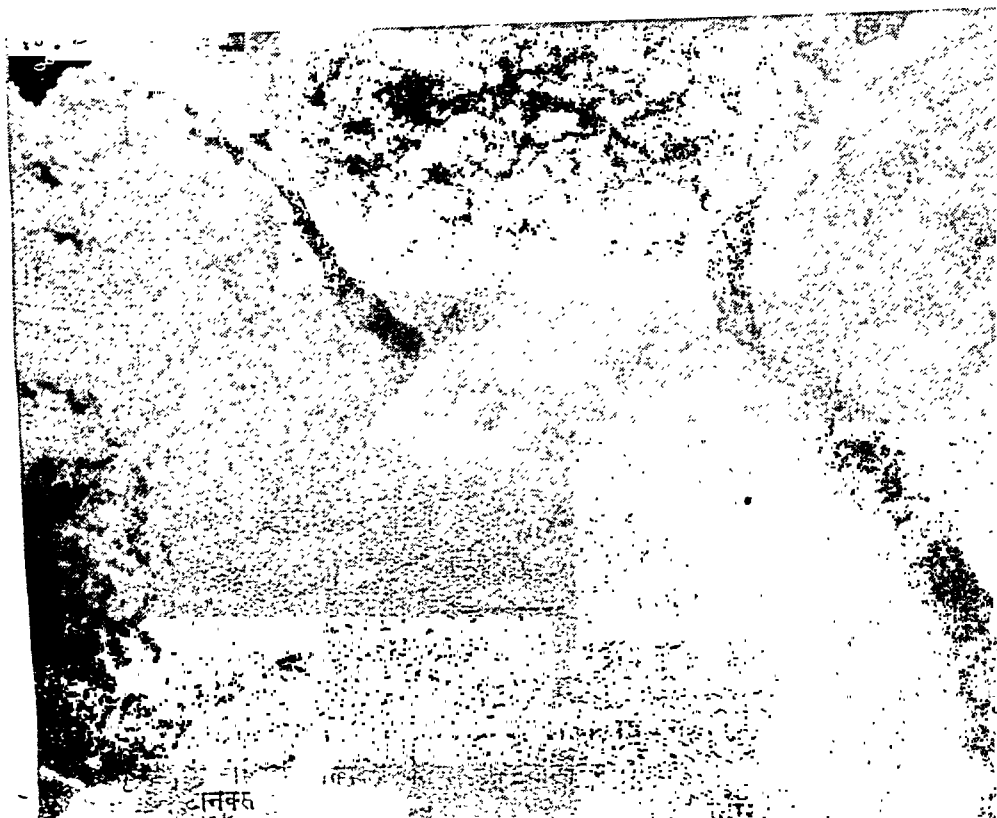
...यल्लि रबर (अपरिष्कृत)

बढ़ जाता है। इसका वलकनीकरण भी होता है। गन्धक, जिंक ऑक्साइड इत्यादि से इसका वलकनीकरण होता है। वेगवर्द्धकों का वलकनीकरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। नीचे के नुस्खे से अच्छा रबर प्राप्त होता है—

ब्युटिल रबर	१००
जिंक ऑक्साइड	५
स्टियरिक अम्ल	३
टेट्रामेथिल-थायुरियम-डाइसल्फाइड	१

रबर का जीर्णन असंतृप्ति के कारण होता है। चूंकि ब्युटिल रबर में असंतृप्ति नहीं होती, इस कारण इसका जीर्णन जल्दी नहीं होता। इसमें प्रति-ऑक्सीकारक की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

यह विलायकों में घुल जाता और घुलकर श्यान विलयन बनता है। ऐसा विलयन सीमेन्ट में उपयुक्त होता है। पेट्रोलियम नैफ्था इसका सर्वश्रेष्ठ विलायक है। वल्कनीकृत रबर बेंजीन और टोल्विन सदृश सौरभित हाइड्रोकार्बनों में जल्द नहीं घुलता। नाइट्रोबेंजीन और एनिलिन में यह बिलकुल नहीं घुलता। उद्भिद् और जान्तव तेलों के प्रति प्रबल अवरोधक होता है। हैलोजनी विलायकों से अपेक्षया प्रभावित नहीं होता। ईथर, एलकोहल और एस्टरों से भी आक्रान्त नहीं होता है। यह जल भी कम सोखता है। इसके वैद्युत गुण भी अच्छे होते हैं। इसमें गैसें भी प्रविष्ट नहीं करतीं।

इसके टैंक, बैलून, नावें, गैस-मास्क, टायर, ट्यूब, यांत्रिक सामान इत्यादि बनते हैं। इसके टायर २०,००० मील तक ४० मील से कम प्रति घंटा के वेग से चल सकते हैं। इससे अधिक मील के वेग से उनका जीवन कम हो जाता है।

थायोकोल रबर—थायोकोल रबर में गन्धक रहता है। अमेरिका में इस कृत्रिम रबर को 'थायोकोल', जर्मनी में 'परड्यूरेन' और बेलजियम में 'इथेनाइट' कहते हैं।

थायोकोल रबर कार्बनिक विलायकों, तेलों और वसा के प्रति अद्भुत अवरोधक होता है। इसके तैयार करने में एथिलिन, गन्धक और लवण, सभी सस्ती वस्तुएँ लगती हैं।

५०० ग्राम सोडियम सलफाइड को जल में घुलाकर २०० ग्राम गन्धक के साथ उबालते हैं। इससे सोडियम टेट्रासलफाइड का विलयन प्राप्त होता है। इसे तनु बना कर, ३५० सी० सी० एथिलिन डाइक्लोराइड [illegible] ७० से० पर कुछ घंटे उबालते हैं। इससे एथिलिन पोली-सलफाइड [illegible] रबर-सा [illegible] पदार्थ प्राप्त होता है।

एथिलिन डाइक्लोराइड और [illegible] को [illegible] करके गरम करते और बहुत प्रक्षुब्ध करते हैं। [illegible] आक्षीर बन जाता है। इसमें प्रायः [illegible] प्रतिशत [illegible] को निकाल देते हैं। [illegible] स्कंधित आक्षीर को निकालकर, छानकर और धोकर पानी को बहा देते हैं [illegible] निचोड़-बेलन में रखकर शुष्ककारक [illegible] सुखाकर पट्टी से काटकर बाजारों में भेजते [illegible]

थायोकोल रवर भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। एथिलिन डाइक्लोराइड और सोडियम पोलिसल्फाइड के बने रवर को थायोकोल-ए कहते हैं, इसमें तीखी गन्ध होती है जो तपाने पर आँखों में लगती है। इसमें मुक्त गंधक रहता है। डाइक्लोरोएथिल ईथर और सोडियम पोलिसल्फाइड से थायोकोल-बी प्राप्त होता है। यह अधिक रवर-सा मटमैले रंग का होता है। इसमें गंध प्रायः नहीं होती। इससे धूम भी नहीं निकलता। यदि थायोकोल-बी का कुछ गंधक निकाल लिया जाय तो इससे थायोकल-डी प्राप्त होता है। थायोकोल-एफ में कोई मुक्त गंधक नहीं होता। इसमें भी बड़ा अल्प गंधक रहता है और यह अम्बर के रंग का होता है। थायोकोल-एफ-ए में और भी कम गंध होती है। इससे पेट्रोल द्वारा कोई पार्थ नहीं निकाला जा सकता। परड्यूरेन भी कई प्रकार के होते हैं—परड्यूरेन-जी और परड्यूरेन-एच। ग्लीसिरिन डाइक्लोर-हाइड्रिन से वलकेपास और नोवोप्लास-ए प्राप्त होते हैं।

थायोकोल के संगठन— ऐसा समझा जाता है कि हैलोजन यौगिक अकार्बनिक पोलिसल्फाइड के साथ मिलकर लम्बी श्रृंखला के उच्च अणुभार के यौगिक बनते हैं। इनकी श्रृंखलाएँ निम्न प्रकार की होती हैं।

$$Cl\,C_2\,H_4\,Cl + Na\,Sx\,Na \rightarrow C_2\,H_4\,Sx\,C_2\,H_4\,Sx\,C_2H_4\,Sx\cdots\cdots$$
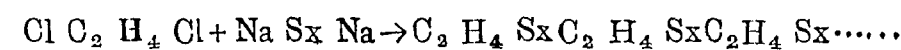
मार्टिन और पैट्रिक के अनुसार इनके संगठन इस प्रकार के हैं।

```
-R-S-S-R-S-S-R-
   || ||   || ||
   S  S    S  S
```
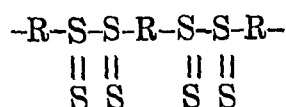
थायोकोल के उपयोग—थायोकोल रवर चद्दर, पट्टी और आवीर के रूप में प्राप्त होता है। यह चूर्ण के रूप में भी प्राप्त होता है। यह रवर-सा पटिया के रूप होता है और सामान्य रवर के यंत्रों से इसका काम लिया जा सकता है। यह ताप-सुनम्य नहीं होता। इससे इसमें सुनम्य-कारक के डालने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए डाइफेनिल ग्वेनिडिन, डाइबेंज थायज़िल-डाइसलफाइड, थायुरम डाइसलफाइड अच्छे सुनम्यकारक हैं। भिन्न-भिन्न थायोकोल के लिए भिन्न-भिन्न सुनम्यकारक अच्छे होते हैं। कार्बन काल से इसके भौतिक गुण उन्नत हो जाते हैं। साधारणतया १०० भाग रवर में १०० भाग कार्बनकाल डाला जाता है; पर कार्बनकाल का २०० भाग तक डाला जा सकता है। इससे इसकी वितान-क्षमता बहुत बढ़ जाती है। कार्बनकाल के परिक्षेपण के लिए एक प्रतिशत स्टियरिक अम्ल डालते हैं। अन्य मृदुकारक या सुनम्यकारक नहीं उपयुक्त होते। इसके अच्छे रवर निम्नलिखित पदार्थों से बनते हैं।

	भाग	भाग	भाग
थायोकोल-ए	१००	१००	१००
रवर	५		५
डाइफेनिलग्वनिडिन	·२		
टेट्रामेथिल-थायरम-डाइसलफाइड			
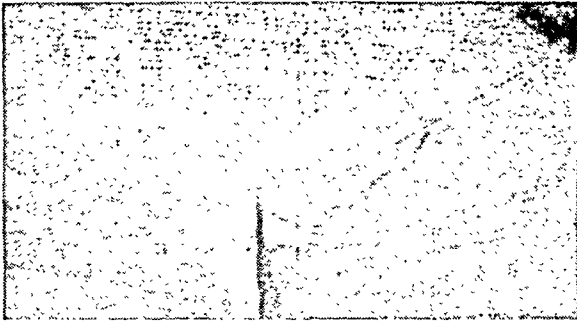
चित्र ३२—थायोकोल आक्षीर, जिसमें ८० प्रतिशत जल और २० प्रतिशत थायोप्लास्ट है।
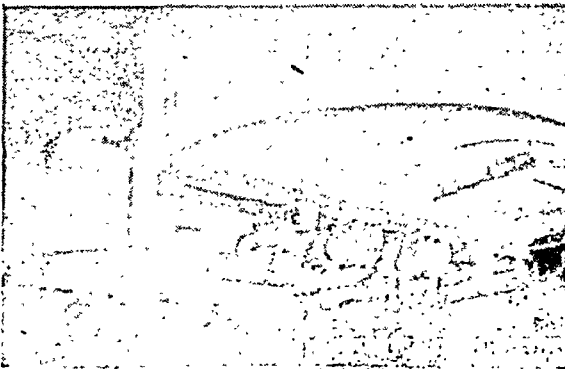
चित्र ३३—थायोकाल धोने की टंकी

जिंक ऑक्साइड	१०	१०	१०
कार्बनकाल	१०	२५	४५
स्टियरिक अम्ल	०·५	०·५	०·५

१४१°श० पर ५० मिनट में अभिसाधित हो जाता है। इसके गुण ये होते हैं—

वितान-क्षमता पाउंड प्रति वर्ग इंच	७२०	७५०	६५०
दैर्घ्य प्रतिशत	४३५	३०५	२००
शैथिल्य	६४	७५	८४
५०°श० पर ७२ घंटे के बाद प्रतिशत फुलाव			
पेट्रोल	कुछ नहीं	कुछ नहीं	कुछ नहीं
बेंजीन	४	२·२	१·४

थायोकोल का सबसे अधिक उपयोग वहाँ होता है, जहाँ पेट्रोल और तेलों का सम्बन्ध हो। इसके पेट्रोल के नल बनते, केबुल के आवरण बनते, पेट्रोल टंकियों के जोड़ बनते, वायुयान की पेट्रोल टंकियाँ बनतीं, पट्टियाँ और वस्त्र बनते और छापेखाने के बेलन, ब्लॉक इत्यादि सैकड़ों उपयोगी सामान बनते हैं। थायोकोल रबर अन्य रबरों के साथ मिलाकर भी प्रचुरता से उपयुक्त होता है।

थायोकोल के गुण—इसमें रबर के गुण होते हैं। इसकी वितान-क्षमता रबर-सी अच्छी नहीं होती। पर तेलों का यह बहुत प्रतिरोधक होता है। अतः तेलों के संस्पर्श में भी इसकी प्रबलता बनी रहती है। सामान्य ताप पर इसमें प्रलचक कम होती है; पर ऑक्सिजन, ओज़ोन और सूर्य-प्रकाश से कम आक्रान्त होता है। सामान्य दशा में इसका लचक-अवरोध और अपघर्षण-अवरोध सामान्य रबर-सा ही होता है। पर तेलों की उपस्थिति में बहुत बढ़ जाता है। निम्न ताप पर थायोकोल अनम्य होता है; पर उच्च ताप पर बहुत समय के व्यक्तीकरण के बाद कठोर होता है।

थायोकोल की सर्वोच्च विशेषता यह है कि किसी विलायक की इस पर कोई क्रिया नहीं होती। उन सभी विलायकों का यह अवरोध करता है जो अन्य कृत्रिम रबरों को आक्रान्त करते हैं। पेट्रोल, किरासन, स्नेहनतैल, बेंज़ीन, टोल्विन, ज़ाइलिन क्लोरीनयुक्त विलायकों इत्यादि का प्रबल अवरोधक होता है। होज़ के लिए यह कृत्रिम रबर सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है। जल, एलकोहल और तनु अम्लों से भी यह विकृत नहीं होता। पर प्रबल अम्लों और प्रबल क्षारों से आक्रान्त हो जाता है।

इसका चूर्ण भी प्राप्त होता है जो काला और ताप-सुनम्य होता है। ३००°श० और ७०० पाउण्ड प्रतिवर्ग इंच दबाव पर जिस आकार में चाहें, इसे ढाल सकते हैं। ढाँचे में यह सिकुड़ता है; पर सिकुड़न सदा एक-सा होता है। इससे सिकुड़न से कोई क्षति नहीं है। इस रबर में सबसे बड़ा दोष यह है कि सामान्य ताप और दबाव पर भी कुछ समय के बाद इसके सामान आकार में विकृत हो जाते हैं। इसमें वैद्युत गुण सामान्य होते हैं। इस रबर में गैसें भी ...वेश्य होती हैं। इस कारण बैलून के वस्त्रों के निर्माण में इसका उपयोग अधिकता से होता है।

हाइड्रोजन के प्रति भिन्न-भिन्न रबरों की भेद्यता इस प्रकार है—

रबर	२२.८
परब्युनान	१४.४
नियोप्रीन-जी	५.४
विस्टानेक्स	२.६
थायोकोल डी-एक्स	१.६
प्लायोफिल्म	०.४

एथिनायड रबर—कुछ एथिनायड हाइड्रोकार्बन पुरुभाजन से रबर से पदार्थ में परिणत हो जाते हैं। ऐसे पदार्थों में विनिल क्लोराइड से प्राप्त कृत्रिम रबर है।

विनिल क्लोराइड एसिटिलिन पर हाइड्रोजन क्लोराइड से उत्प्रेरकों की उपस्थिति में प्राप्त होता है। डाइक्लोर ईथेन पर एलकोहोलिक कॉस्टिक सोडा की क्रिया से भी विनिल क्लोराइड प्राप्त होता है। लगभग ६०° श० के ताप पर चार घंटे में प्रतिक्रिया पूर्ण हो जाती है। ७५ से ८५ प्रतिशत उत्पाद प्राप्त होता है।

विनिल क्लोराइड एक गैस है, जो −१४° श० पर उबलता है। प्रतिकारकों की उपस्थिति में यह शीघ्रता से पुरुभाजित हो जाता है। पुरुभाजन विलयन में अथवा पायस दोनों दशाओं में सम्पन्न हो सकता है। प्रकाश अथवा ताप से पुरुभाजन में सहायता मिलती है। इसके पुरुभाजन से रबर-सा अथवा कठोर ठोस प्राप्त हो सकता है। भिन्न-भिन्न उत्प्रेरकों और भिन्न-भिन्न विलायकों में पुरुभाजन हो सकता है।

पोलिविनिल क्लोराइड गन्धहीन, स्वादहीन, रसायनतः निष्क्रिय और अदाह्य है। इसमें ताप-सुनम्य गुण होते हैं। ठण्डे विलायकों में यह अविलेय होता है; पर उष्ण क्लोरीनयुक्त विलायकों में शीघ्र विलेय होता है। ताप और प्रकाश में स्थायित्व अच्छा नहीं है। ऊँच मृदुकरण ताप से पीसना और डालना कुछ कठिन होता है। इसकी वितान और आघात-क्षमता सन्तोषप्रद नहीं है। अन्य पदार्थों के सहयोग से इससे अनेक कृत्रिम रबर बनते हैं, जिनमें माइपोलाम और विनिडुर अधिक महत्त्व के हैं।

पोलिविनिल एलकोहल—पोलिविनिल ऐसिटेट के जलांशन से पोलिविनिल एलकोहल प्राप्त होता है। यह जलांशन अम्लों और क्षारों दोनों के द्वारा होता है। पोलिविनिल एलकोहल से रेजिस्टोपलेक्स नामक कृत्रिम रबर प्राप्त होता है। यह कच्चा रबर सफ़ेद चूर्ण के रूप में प्राप्त होता है जिसमें न गंध और न स्वाद होता है और जो जल में घुल जाता है।

इसमें थोड़ी मात्रा में पोलिविनिल ऐसिटेट मिला देने से और कुछ प्रतीकारकों जैसे फार्मेल्डिहाइड, क्रोमियम यौगिकों, द्विभास्मिक अम्लों इत्यादि की प्रतिक्रिया से यह जल का अवरोधक हो जाता है। इसको सुनम्य बनाया जा सकता है और सामान्य ताप और दवाब से इसे ढाँचे में ढालकर नलियाँ इत्यादि बनाई जा सकती हैं। इ[illegible]
वाशर, डोरियां और डायफ्राम इत्यादि बनते हैं। यह तेलों
कार्बनिक विलायकों, कार्बन टेट्राक्लोराइड, [illegible]
एस्टर, ईथर, कीटोन इत्यादि का अवरोधक [illegible]

अवरोधक होता है। १६०° फ० पर ३०० पाउण्ड दवाव पर १० दिन तक रखे रहने पर भी इसमें कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। इसका जीर्णन नहीं होता है। इसकी वितान-क्षमता ऊँची होती है और यह प्रदोलन और लचक को सहन कर सकता है। इसकी नालियाँ न्यूनतम विकार से ध्वनि को प्रसारित करती है और इसकी दीवारों में ध्वनि का शोषण नहीं होता। अपघर्षण का भी यह उत्तम अवरोधक है। प्राकृतिक रवर से बीसवाँ अंश गैसों और द्रवों से प्रवेश्य होता है।

पोलिविनिल एलकोहल एल्डिहाइड के साथ सलफ्यूरिक या हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की उपस्थिति में गरम करने पर ऐसिटल वनता है जिसमें सुनम्यकारकों की उपस्थिति से अच्छा रवर प्राप्त होता है। साधारणतया पोलिविनिल व्युटिराल इस प्रकार प्राप्त होता है।

पोलिविनिल ऐसिटेट के १०० भाग को हिम्य ऐसिटिक अम्ल के १८५ भाग में घुलाकर उसमें प्रायः ८० भाग व्युटिरल्डिहाइड और ७ भाग सलफ्यूरिक अम्ल डालकर इनेमल पात्र में ७०°श० पर गरम करते हैं। इससे जलांशन होता है। समय-समय पर उसमें से नमूना निकाल कर एल्डिहाइड की मात्रा मालूम करते हैं। जव क्रिया समाप्त हो जाती है तव उसमें प्रायः १४ भाग सान्द्र अमोनिया डालकर उसे पतली धार में पानी में ढाल देते हैं। इससे जो उत्पाद प्राप्त होता है, उसे धोकर सुखा लेते हैं। इसमें ट्राइक्रीसिल फ़ास्फ़ेट के डालने से रवर-सी सुनम्यता आ जाती है। यह पारदर्शी भी होता है। खींचने से ३०० प्रतिशत वढ़ जाता है। व्युटिराल में वितान-क्षमता सवसे अधिक होती है।

पोलिविनिल व्युटिरल एलकोहल, एस्टर, एथिलिन डाइक्लोराइड इत्यादि में विलीन होता है; पर हाइड्रोकार्वन और तेलों में अविलीन होता है। ट्राइक्रीसिल फ़ास्फ़ेट, डाइब्युटिल फ़ास्फ़ेट, डाइव्युटिल सिवाकेट इत्यादि से यह सुनम्य हो जाता है। इससे इसकी प्रत्यास्थता वहुत वढ़ जाती है। इसका दैर्घ्य ४०० प्रतिशत तक पहुँच जाता है। इसके कोमल होने का ताप ६०° और ७०° श० के वीच है। इसकी वितान-क्षमता ४०० प्रतिशत दैर्घ्य पर वहुत ऊँची, २५०० पाउण्ड प्रतिवर्ग इंच और २० प्रतिशत दैर्घ्य पर ८००० पाउण्ड होती है। निम्न ताप पर इसकी लचक वनी रहती है।

इसका जीर्णन शीघ्र नहीं होता। सूर्यप्रकाश का कोई असर नहीं होता। जल वहुत कम सोखता है। वर्तनांक १·४८८ है। ६० प्रतिशत प्रकाश को यह संचारित करता है। अन्य रवरों की भाँति इसमें भी पूरक डाले जा सकते हैं। दो काँचों के पट्टों को इससे जोड़ने से वे टूटते नहीं। इस कारण अभय काँच के निर्माण में इसका अधिकता से उपयोग होता है। वस्त्रों पर इसे फैलाकर लगाते हैं। इससे वरसाती कोट, पानी के थैले, पंतून-नावें, खाद्य वाँधने के सामान, पानी और तेल के नलों में इसका उपयोग होता है।

एथिल सेल्युलोस—एथिल सेल्युलोस रवर-सा और प्रत्यास्थ होता है। इसे एथिल रवर कहते हैं। यह अनेक देशों, जर्मनी, अमेरिका इत्यादि में वड़ी मात्रा में वनता है। ईथर होने के कारण यह अधिक स्थायी होता है।

उत्पादन—काठ के सेल्युलोस अथवा कपास रोएँ और एथिल क्लोराइड अथवा एथिल सलफ़ेट की प्रतिक्रिया से यह वनता है। सेल्युलोस में हाइड्रोक्सिल मूलक (–OH) होते हैं। इनमें हाइड्रोजन के स्थान में एथिल के प्रवेश से एथिल सेल्युलोस वनता है। प्रत्येक ग्लूकोस एकांक

में २ से २·५ इथौक्सिल-मूलक रहते हैं। सेल्युलोस को क्षार के साथ साधकर उसमें दबाव में गैसीय एथिल क्लोराइड प्रवाहित करते हैं। इस प्रतिक्रिया में सावधानी की आवश्यकता होती है ताकि क्षार से सेल्युलोस टूट न जाय। प्रतिक्रिया की समाप्ति पर पानी से धोकर जल-विलेय पदार्थों को पूर्णतया निकाल लेते हैं। सेल्युलोस में ४४ से ५० प्रतिशत तक इथौक्सिल रहता है। ४८ से ५० प्रतिशत इथौक्सिलवाले सेल्युलोस में जल अवरोध उच्चतर होता, विलायकों में अधिक विलेय, निम्न मृदुकरण तापवाला होता है; पर कम चीमड़ होता है। उत्पाद की श्यानता विभिन्न होती है।

गुण—इसका विशिष्ट घनत्व १·४ होता है। इसके फिल्म विशेष रूप से चीमड़ होते हैं। इसके वैद्युत गुण विशेष रूप से अच्छे होते हैं। इसका सामर्थ्य गुणक बहुत अल्प होता है। यह बहुत कम पानी सोखता है। अम्लों और क्षारों से जल्द आक्रान्त नहीं होता।

अधिकांश कार्बनिक द्रवों में यह विलेय है। केवल पेट्रोलियम हाइड्रो-कार्बन में यह विलेय नहीं है। ७० से ८० भाग टोल्विन अथवा विलायक नफ़्था और ३० से २० भाग एथिल एलकोहल में यह सबसे अच्छा घुलता है।

सुनम्यकारकों के साथ मिलकर यह –७०° श० तक लचकदार रहता है।

एथिल सेल्युलोस के प्रलाक्ष वार्निश और चिपकानेवाले सामान बनते हैं। मोम और रेज़िन के गुणों के सुधारने में भी यह लगता है। अच्छे वैद्युत गुणों उच्च लचक और चीमड़पन के कारण तारों के पृथग्न्यास में यह उपयुक्त होता है। इसमें भी पूरक, रंग और सुनम्यकारक उपयुक्त हो सकते हैं। ३० प्रतिशत तक जिंक ऑक्साइड उपयुक्त हो सकता है। एथिल सेल्युलोस रबर स्वयं पारदर्शी होता है; पर इसमें कोई भी वर्णक डालकर पारदर्शी, अर्ध-पारदर्शी और अपारदर्शी बना सकते हैं। इसमें वल्कनीकरण की आवश्यकता नहीं होती। इसमें लचक कम होती है।

विभिन्न कच्चे रबरों का तुलनात्मक अध्ययन

घनत्व

	घनत्व ग्राम प्रति सी· सी·
प्राकृतिक रबर	०·९११
नियोप्रीन	१·२५
परब्युनान	०·९६
परब्युनान-एक्स्ट्रा	०·९७
ब्यूना-एस	०·९
हाइकर–ओ-आर	१·००
चेमिगम	१·०६
थायोकोल-ए	१·६०
थायोकोल-एफ	१·३८
थायोकोल-जी	१·६८
परड्यूरेन-एच	१·५६
विस्टानेक्स (२५° श०)	०·९१२
विनिल क्लोराइड ६०%	१·२५
पोलिविनिल ब्युटरल	१·११

कच्चे रबर का वर्तनांक

	ताप °श०	वर्तनांक
प्राकृतिक रबर	२५	१ ·५१९०
नियोप्रीन	२५	१ ·५५८०
परब्यूनान	२५	१ ·५२१३
विस्टानेक्स	२५	१ ·५०८६
विनिल क्लोराइड	४०	१ ·५६५
पोलिविनिल ब्युटरल	२६	१ ·४८८

महत्तम वितानक्षमता और दैर्ध्य

	वितानक्षमता अवल्कनीकृत रबर	वितानक्षमता वल्कनीकृत रबर किलोग्राम सेंटीमीटर	दैर्ध्य
प्राकृतिक रबर	२५	२९०	७१०
नियोप्रीन	३०	३००	८२०
परब्यूनान	—	१५०	६००
हाइकर	—	४८	५४०
ब्युटिल रबर	—	२५०	१०००
थायोकोल "डी"	७	३५	७५०
विस्टानेक्स	—	२०	१०००
पोलिविनिल क्लोराइड (५०% ट्राइक्रिसिल फ़ास्फेट)	—	१६०,	३५०
पोलिविनिल ब्युटरल	—	१७५	४००

	ताप प्रभाव	अपघर्षण अवरोध	सूर्य-प्रकाश प्रभाव	जीर्णन	मशीन
ब्यूना-एस	कड़ा होता है	रबर-सा	अल्प	रबर-सा	पीसा जाता है
ब्युटिल रबर	कुछ मृदु होता है	अच्छा	नहीं	रबर से अच्छा	,,
चेमिगम	कड़ा होता है	उत्तम	ह्रास होता है	नहीं	—
हाइकर	,,	,,	अल्प	अति प्रतिरोध	पीसा जाता है
नियोप्रीन	कुछ मृदु होता है	,,	नहीं	,,	,,
परब्यूनान	,,	,,	अल्प	,,	,,
रेजिस्टोफ्लेक्स	,,	अच्छा	नहीं	नहीं	—
विस्टानेक्स	—	—	,,	रबर से उत्तम	मशीन नहीं चल सकती
प्राकृतिक रबर (मृदु)	मृदु होता है	उत्तम	ह्रास होता है	अतिप्रतिरोधक	पीसा जा सकता है

गर्म तेल में डुबाकर रखने से रबर की वितानक्षमता, दारण अवरोध और आयतन में परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन विभिन्न रबरों में विभिन्न होता है। नियोप्रीन रबर के २१

दिनों तक गर्म तेल में रखने से जो परिवर्तन होते हैं, वे चित्र ३७ से मालूम होते हैं, वितानक्षमता कम हो जाती है। दारुण अवरोध भी कम हो जाता है, पर आयतन में वृद्धि होती है।
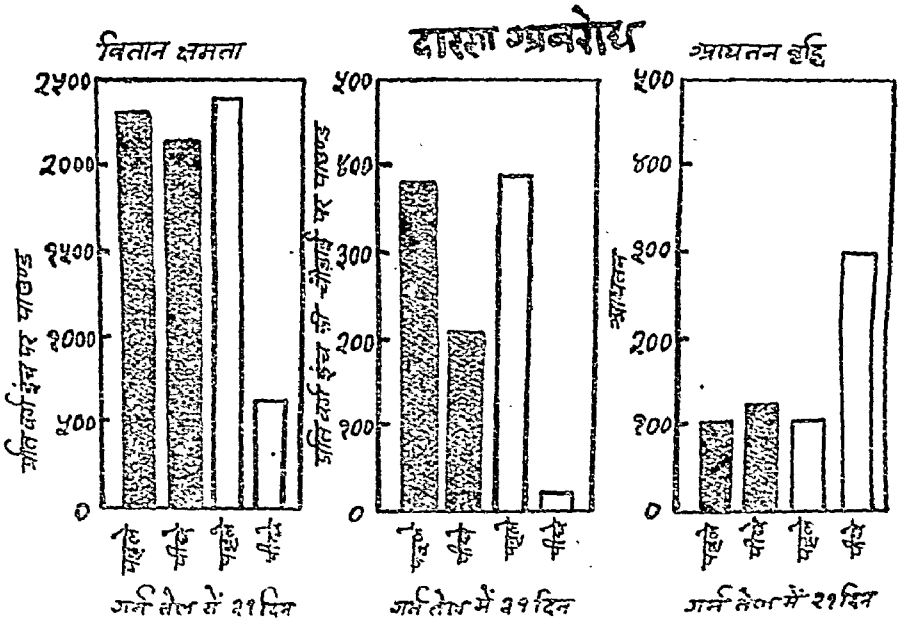
चित्र ३७

इसी प्रकार ८ सप्ताह तक तारपीन के तेल में डुबाए रखने से वितानक्षमता में परिवर्तन होता है। प्रत्येक दशा में वितानक्षमता कम हो जाती है; पर कम होने की डिगरी विभिन्न रबरों में विभिन्न प्रकार की होती है। प्राकृतिक रबर की वितानक्षमता बहुत ही अल्प हो जाती है। अन्य रबरों की वितानक्षमता भी कम हो जाती है; पर उतनी अधिक नहीं। परब्यूनान एक्स्ट्रा की वितानक्षमता जैसे चित्र ३८ से मालूम होती है, उतनी कम नहीं होती। इससे परब्यूनान एक्स्ट्रा अन्य रबरों से श्रेष्ठ समझा जाता है।

चित्र ३८
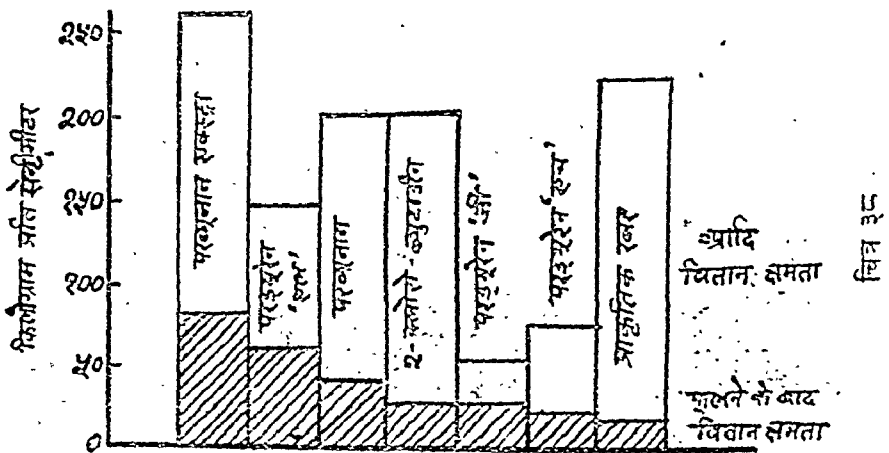
कच्चे रबर के गुण	वल्कनीकृत रबर के गुण
निम्न वितानक्षमता	उच्च वितानक्षमता
सीमित प्रत्यास्थता	विस्तृत प्रत्यास्थता
निम्न प्राप्ति	उच्च प्राप्ति
उच्च प्रतिधारिता	निम्न प्रतिधारिता
उच्च वहाव	निम्न वहाव
सीमित ताप-विस्तार	विस्तृत ताप-विस्तार
तापसुनम्य	तापसुनम्य नहीं
विलेय	अल्प विलेय
चिपक अच्छी	चिपक की कमी

बीसवाँ अध्याय

साँचे और साँचे में बने सामान

रबर के अनेक सामान साँचे में बनते हैं। साँचे में ही टायर, जूते के तलवे और एड़ियाँ, बफर (धक्का रोकने के यंत्र), गेंद, साइकिल के पावदान, गरम जल की बोतलें, बर्फ की बोतलें, स्नान की टोपियाँ इत्यादि बनते हैं।

ऐसे सामानों का निर्माण साँचे की प्रकृति, साँचों में ढालने के तरीके और रबर मिश्रण पर बहुत कुछ निर्भर करता है। साँचा गरम करने और ठंढा होने से बढ़ता घटता है। रबर के सामान भी साँचों से निकाल लेने पर सिकुड़ते हैं। इन सब बातों का भी पूरा ध्यान रखना आवश्यक होता है। ऐसे सामान साधारणतया रबर की चादरों से बनते हैं। आवश्यक मोटाई की चादरों से अनुकूल आकार और विस्तार के रबर के टुकड़े को काट लेते और तब उसे प्रेस में गरम कर दबाते हैं। इससे रबर सुनम्य हो जाता, आवश्यकता से अधिक रबर साँचे की गाँठों से निकल जाता है और रबर साँचों में ठीक बैठ जाता है। गरम करने पर रबर सुनम्य होकर साँचे के सारे स्थान को पूर्णतया घेर लेता है। यदि रबर में भिन्न-भिन्न रंग के रबर डाले गये हो तो ऐसा बना सामान रंग-बिरंग का हो जाता है। ऐसे सामान एक-एक अथवा अनेक एक साथ साँचों में बनाये जा सकते हैं।

साँचा कैसा होना चाहिए, यह अनेक बातों पर निर्भर करता है।

यदि रबर पर सुन्दर छाप देना चाहते हैं, तब साँचे की बनावट सूक्ष्म होनी चाहिए। साँचों में फन्नी आलपीन लगा रहता है। साँचे में वलय भी लगे रहते हैं। अनेक दशाओं में सीकड़ी से जुटे हुए सांचे उपयुक्त होते हैं। पार्श्व से ये निकाल लिये जाते और खोलकर सामान को बाहर निकाल कर फिर रबर से भरकर रख दिये जाते हैं। इससे काम में शीघ्रता होती है। साँचों का खोलना कुछ कठिन होता है। जहाँ तक सम्भव हो, खोलने का पेंच रहना आवश्यक है। जहाँ सामानों के दो भाग जोड़े जाते हैं, वहाँ कोई कठिनता नहीं होती; पर अनेक सामान शून्य साँचों में रखकर बनाये जाते हैं।

साँचे साधारणतया इस्पात के बनते हैं। इसके लिए इस्पात कठोर होना चाहिए और कार्बन की मात्रा उनमें अधिक रहनी चाहिए। मुर्चा न लगनेवाला इस्पात अच्छा होता है; क्योंकि इसमें मोरचा नहीं लगता और उसका क्षय शीघ्र नहीं होता; पर ऐसे इस्पात पर मशीनें कठिनता से चलती हैं। इस काम के लिए निम्नलिखित इस्पात उपयुक्त हो सकते हैं—

	वितान क्षमता	दैर्घ्य	कार्बन
मृदु इस्पात	२५।२८	२०	०·१३
मृदु इस्पात अच्छी श्रेणी का	३५।४०	२५।२८	०·२
विशेष इस्पात	५०।६०	२०।२२	०·६
मिश्र इस्पात (विकृत होनेवाला नहीं)	८०।१००	—	१·०

मिश्र इस्पात के बने फन्नी आलपीन और ब्रश सर्वश्रेष्ठ होते हैं। इसमें कार्बन २·१ से २·५ और निकेल, मैंगनीज या क्रोमियम १५ प्रतिशत रहते हैं। फन्नी आल्पीन को उच्च ताप वाले उपस्नेह से चिकना लेना अच्छा होता है।

प्रति डिगरी फाहरेनहाइट इस्पात का प्रसार ०·००००००६१ से ०·०००००७३ होना चाहिए। न्यूनतम प्रसार मृदु धातु का और महत्तम प्रसार कठोर धातु का होता है। इसका तात्पर्य यह है कि २५०°फ० की वृद्धि से फन्नी आल्पीन की वृद्धि होती है ०·००००००६१× २५० × १" व्यास=१·००१५। साँचे के रखने में इस बात का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए।

रबर के सामान की सिकुड़न का भी ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। इस्पात का बीस गुना रबर का प्रसार गुणक होता है। मिश्र रबर का प्रसार गुणक कुछ कम होता है। जिस सामान में रबर की मात्रा अधिक हो, उसमें १·५ प्रतिशत सिकुड़न और जिसमें अन्य पदार्थ अधिक मिले हों, उनमें कम सिकुड़न का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है।

कुछ सामानों के तैयार करने में अनेक साँचों की आवश्यकता पड़ती है। साँचे जल्दी-जल्दी बन सकें और सस्ते हों यह बहुत आवश्यक है। जहाँ सामानों को बड़ी संख्या में तैयार करना पड़ता है, वहाँ साँचा जल्दी और सस्ता बननेवाला बड़े महत्त्व का हो जाता है।

इस्पात के अतिरिक्त साँचे एल्यूमिनियम मिश्र-धातु या सफेद धातु के भी बन सकते हैं। जल्दी और सस्ता बनने की दृष्टि से सफेद धातु ही अच्छी होती और काम में आती है। ऐसी सफेदी धातु में सीस ८० प्रतिशत, टिन १० प्रतिशत और एन्टीमनी ५ प्रतिशत रहती है। ऐसी ही सफेद धातु के साँचे जूते के तलवे, एड़ियाँ, बोतलें, साइकिल की मुठियाँ इत्यादि बनाने में उपयुक्त होते हैं। ऐसे साँचों से प्रायः २५० छापें ली जा सकती हैं। उसके बाद उन्हें गलाकर फिर उसीसे दूसरा साँचा बनाते हैं। कोमल इस्पात से भी साँचा बनाकर उन्हें पीछे कठोर कर सकते हैं।

साँचों में रबर चिपकें नहीं और सरलता से अलग किया जा सके, इसके लिए उपस्नेह का उपयोग बहुत अधिकता से होता है। ऐसे उपस्नेहों में आइसिंग्लास, साबुन, ग्लूकोस विलयन, सल्फोनेटेड तेल इत्यादि हैं।

साँचों को समय-समय पर साफ करने की भी आवश्यकता होती है। नहीं तो उनका क्षय शीघ्रता से हो जाता है। साफ करने की अनेक रीतियाँ हैं। रेत से उन्हें रगड़ सकते हैं। परिभ्रामक तार के ब्रश और खुरचने के औजार भी उपयुक्त कर सकते हैं।

कॉस्टिक सोडा का प्रबल विलयन भी उपयुक्त हो सकता है। साँचे पर एसिटिलीन की ज्वाला भी चलाकर उसे साफ कर सकते हैं। वैद्युत रीतियाँ भी उपयुक्त होती हैं और अच्छी समझी जाती हैं। वैद्युत तापन पात्र में साँचे को एक विद्युतद्वार बनाकर विद्युत्-धारा के प्रवाह से साँचे पर गैसें उत्पन्न कर सब मैल को ढीला कर देते हैं। तब कोमल धातु के ब्रश से मैलों को सरलता से हटा लेते हैं।

जूते के तलवे और एड़ियों के बनाने में साँचों का उपयोग होता है। जूतों के निर्माण का वर्णन आगे 'रबर के जूते' प्रकरण में मिलेगा।

साँचेवाले सामान बहानेवाले मशीनों में बनते हैं। इन मशीनों में रबर दबाव से बहाया जाता है। इस मशीन के कार्य का ज्ञान निम्नांकित चित्र ३९ से होता है। इसमें साँचे रखने, साँचे के पकड़नेवाला, पेंचें, वायु या खड़िया इत्यादि के मार्ग रहते हैं। उसीमें साँचे को रखकर दबाया जाता है।

चित्र ३९
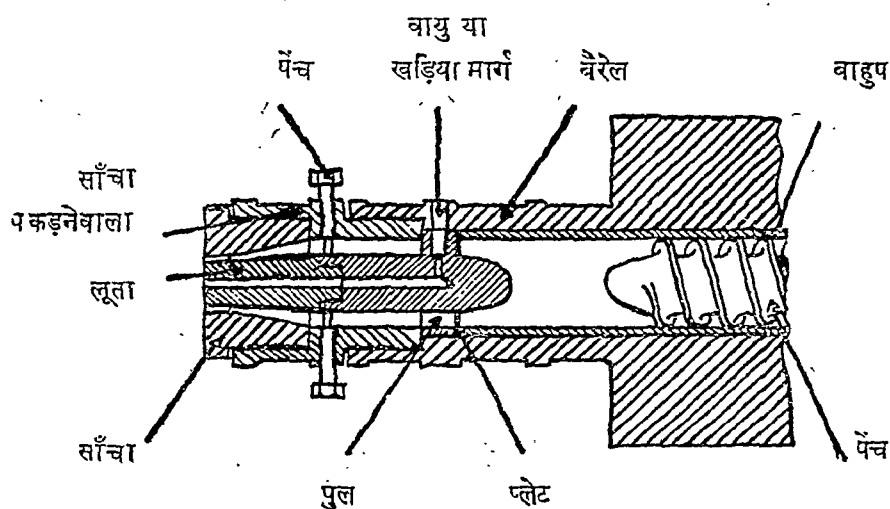
रबर की चादर को काट कर भी साँचे में डाला जाता है। इसके लिए काटने की मशीन की आवश्यकता होती है। एक ऐसे काटने की मशीन 'बायस की मशीन' है, जिसका चित्र यहाँ दिया हुआ है।

साँचे के बननेवाले सामानों में एक महत्त्व का सामान उष्ण जल बोतल है। ये बोतल रबर की चादरों से बनते हैं। आवश्यक मोटाई की चादर को लेकर उसको छोटे-छोटे टुकड़ों में काटते हैं। तब उस साँचे में रखकर उष्मा और दबाव में प्रेस में दबाते हैं। इससे अब रबर सुनम्य हो जाता है। अधिक रबर गाँठों से निकल जाता और तब रबर जम जाता है। इसके लिए रबर के टुकड़ों को भी इस्तेमाल कर सकते हैं। रबर सुनम्य होकर साँचे के सारे स्थान को भर देता है। यदि इनमें रंगीन रबर भी डाल दिया जाय तो विभिन्न
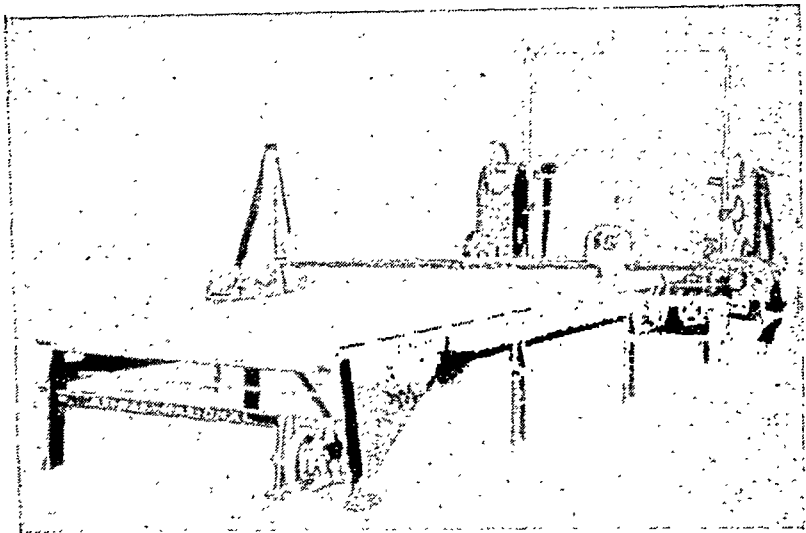
चित्र ४०—काटने के वायस की मशीन

चित्र ४१—गरम और उष्णजल बोतल

रंगों के सामान वन सकते हैं। ऐसी मशीन में एक या अनेक सामान एक साथ ही वन सकते हैं।

इस रीति से वनी हुई उष्ण जल की वोतल कैसे वनती है, इसका ज्ञान चित्र ४१ से होता है।

साँचे में बने पदार्थों की संख्या आज बहुत बढ़ गई है। ऐसे पदार्थों को उच्च कोटि के होने के लिए साँचा अच्छी धातु का और रबर की प्रकृति उत्तम कोटि की होनी चाहिए। मिश्रित रबर इसके लिए अच्छा समझा जाता है। इसके लिए चादर की आवश्यकता होती है। आवश्यक मोटाई की चादर होनी चाहिए। साधारणतया चादर बहुत मोटी नहीं होती। साँचे में एक वार एक अथवा एक ही बार अनेक वस्तुओं का निर्माण हो सकता है।

जिस वस्तु को साँचे में ढालना पड़ता है, उसमें निम्नलिखित वातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए:—

१. किस ताप पर रबर सुनम्य हो जाता है; ऐसा सुनम्य होने में कितना समय लगता है?
२. सुनम्य हो जाने के पूर्व पदार्थ पर दबाव क्या रहता है?
३. साँचे की ढलाई में प्रारम्भिक बहाव में क्या रुकावटें पड़ती हैं?
४. सुनम्य हो जाने पर वहाव में क्या रुकावटें पड़ती हैं?
५. पदार्थ का प्रसार-गुणक क्या रहता है?
६. पदार्थ का सिकुड़न कैसा होता है?
७. पदार्थ पर स्नेह का क्या प्रभाव पड़ता है?

———

इक्कीसवाँ अध्याय

रबर की चादरें

रबर की चादरों से अनेक सामान बनते हैं। ऐसी चादर प्ररम्भ मशीन में बनाई जाती है। इनसे ही गच ढ़ँकी जाती हैं, दीवारें ढँकी जाती हैं, खिलौने बनाये जाते, दिखौए तथा अन्य कई प्रकार के दूसरे सामान बनाये जाते हैं। प्ररम्भ मशीन में ऐसी चादर बन सकती है जिसकी मोटाई इंच के सहस्रवें भाग से ०·२ इंच तक की हो सकती है। ऐसी चादरों से जिस विस्तार के और आकार के चाहे टुकड़े काट सकते हैं। काटना तेज चाकू से, ठप्पे-मशीन से अथवा पंच करनेवाली मशीन से हो सकता है। विशेष प्रकार की कैंचियों से टेढ़े-मेढ़े किनारेवाले टुकड़े काट कर उन्हें चिपका सकते हैं। इन चादरों से मंडल, वलय तथा अन्य आकार के पदार्थ प्राप्त कर सकते हैं। यदि उसे मोटा बनाना हो तो कई चादरों को चिपका कर मोटा बना सकते हैं। दो तलों को चिपकाने में सरलता होती है।

ऐसी चादरों को पर्याप्त लम्बा काट कर तारों, बेलनों, होज़ों इत्यादि पर मढ़ सकते हैं।

चदरों को काठ के गोलकों पर लपेटते हैं। एक स्तर दूसरे से चिपक न जाय, इसको रोकने के लिए प्रत्येक स्तर के बाद कपड़े का अन्तर दे-देते हैं।

प्ररम्भ मशीन

प्ररम्भ मशीनें कई विस्तार की होती हैं। कुछ प्ररम्भ में २, कुछ में ३, कुछ में ४ या ४ से अधिक गोलक रहते हैं। ऐसी कुछ मशीनों के चित्र (४२ और चित्र ४३) यहाँ दिये हुए हैं।

जब बहुत पतली चादर—५।१००० वाँ इंच मोटाई की तैयार करनी होती है, तब उत्पादन अपेक्षाकृत कम होता है। जितना ही अधिक बार चादर प्ररम्भ में जाती है, उतनी ही अधिक वायु निकलकर उत्कृष्ट कोटि की चादरें देती है। इस कारण बहु-गोलक प्ररम्भ उत्तम होता है। पांच गोलकवाला प्ररम्भ भी उपयुक्त हुआ है और उससे उत्कृष्ट कोटि की चादरें प्राप्त होती हैं। कई स्तरवाली चादरों के तैयार करने में तो बहु-गोलक प्ररम्भ अनिवार्य हैं।

गोलक में आकुञ्जन होते हैं। वस्तुतः एक प्ररम्भ में एक ही आकुञ्जन होता है पर भिन्न-भिन्न आकुञ्जन के प्ररम्भ उपयुक्त हो सकते हैं। यदि किसी प्ररम्भ में पतली चादर

बनानी है तो गोलक बहुत ही यथार्थता से घिसा हुआ होना चाहिए। यदि मोटी चादर तैयार करनी है तो आकुञ्जन का व्यवस्थापन बहुत यथार्थता से होना चाहिए।

चादर मिश्रण

रबर	१००
आपाचयिता	४
प्रति-ऑक्सीकारक	१
स्टियरिक अम्ल	१
जिंक ऑक्साइड	४
टेट्रामेथिलथायरम डाइसल्फाइड	१ २
गंधक	०·८

अभिसाधन—उष्ण वायु अथवा भाप से ३० से ६० मिनटों में १२५°श० पर होता है।

चादर की मोटाई—चादर की मोटाई हाथ से छू कर मालूम की जाती है। मोटाई मापन के यंत्र भी बने हैं जिनसे मोटाई सरलता से मापी जा सकती है।

ताप—चादर बनने के ताप का चादर की प्रकृति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि ताप नीचा है तो चादर की सतह पर दाग पड़ जाते हैं और यदि ताप ऊँचा है तो गोलक पर रबर के चिपक जाने की सम्भावना रहती है।

चादर पर दाने—चादर पर दाना-दाना बनना अच्छा नहीं है। प्ररम्भ का ताप ऊँचा रहे तो दाना बनने की सम्भावना कम हो जाती है। उष्ण मेज पर चादर के रखने से भी दाने हट जाते हैं।

डिंडिम पर चादर में कपड़ा लपेट कर आधे घण्टे तक उष्ण जल (जिसका ताप ८०°श० से ऊपर न रहे) में रखने से भी दाने हट जाते हैं। चादर को अधोरक्त चूल्हे में ले जाने से भी दाने दूर हो जाते हैं।

चादरों पर विभिन्न रंग भी दिये जाते हैं। उनपर रगड़ देकर चिकना और चमकीला भी बनाया जाता है। रबर की चादरों पर चित्रकारी का काम भी होता है।

रबर की गच भी बनती है। गच कुछ महँगी होती है; पर देखने में आकर्षक, सब प्रकार के रंगों और विभिन्न रंगों और चित्रकारी का होता है। यह बहुत टिकाऊ होता है। इस पर पैर फिसलता नहीं और चलने से जूते की आवाज भी नहीं होती है। गच का निर्माण सरल होता है।

गच का निर्माण यंत्रों से होता है। इसकी चादर ६ फीट तक चौड़ी होती है। उसमें पूरक अधिक मात्रा में डाले जाते हैं। रबर का लगभग २५ प्रतिशत तक पूरक रहता है।

गच के लिए चादर बनाने में रबर मिश्रण को पहले मिलाना पड़ता है। यह क्रिया वैसी ही है जैसे रबर के अन्य मिश्रणों के मिलने में होती है। भेद केवल यही है कि मिलाने का पात्र बड़ा होना चाहिए ताकि रबर का मिश्रण अधिक मात्रा में मिलाया जा सके।

यदि उसमें एक रंग मिलाना है, तो उसमें कोई कठिनाई नहीं होती; पर अनेक रंगों को मिलाकर चित्रित करना होता है तो उसमें बहुत दक्षता की आवश्यकता पड़ती है, नहीं तो सारी चादर एक-सी नहीं बनती। प्ररम्भ में देने के पूर्व विभिन्न रंगों को बड़ी सावधानी से डालना पड़ता है।

प्ररम्भ का काम और भी कठिन होता है। यथार्थता से घिसे हुए बड़े-बड़े गोलकों की यहाँ आवश्यकता होती है। प्ररम्भ का आकुञ्जन ऐसा रहना चाहिए कि एक मोटाई की चादर वने। यदि ऐसा न हो तो चादर की मोटाई एक-सी नहीं होगी। एक-सी मोटाई न होने से वलकनी-करण में भी कठिनता होगी और उससे उसकी सतह एक-सी नहीं होगी जो गच के लिए नितान्त आवश्यक है।

कपड़ों के अस्तर में चादर को लपेटते हैं और तव उसका वलकनीकरण करते हैं।

यदि गच को मोटा करना होता है तो दो या दो से अधिक चादरों को चिपका लेते हैं। जहाँ चादर के कई स्तर होते हैं, वहाँ नीचे के स्तर निम्न कोटि के रवर के और ऊपर के स्तर ऊच कोटि के रवर के होते हैं। नीचे के स्तर में वहुत महीन पीसा हुआ गूदड़ भी मिला दे सकते हैं।

अविराम वलकनी-कारकों में चादर का वलकनीकरण करते हैं। यहाँ डिंडिम वहुत वड़े तीन फीट या इससे अधिक व्यास के भी होते हैं। डिंडिम को भाप से दवाव में गरम करते हैं। भाप का दवाव प्रतिवर्ग इंच ६० पाउण्ड रहता है। डिंडिम पर रवर को वेल्ट से दवाये रखते हैं। प्रतिवर्ग इंच पर १२५ से १३० पाउण्ड दवाव रहता है। अभिसाधन ताप और संघटन के अनुसार ५ से १५ मिनट में होता है। वड़े यंत्रों में प्रति घण्टा १३ से ३६ गज चादर का अभिसाधन होता है।

ऐसी चादर का अभिसाधन अम्भस प्रेस में भी प्रतिवर्ग इंच पर ५०० पाउण्ड दवाव पर होता है। ऐसे प्रेस १५ फीट लम्वे और ४ फीट ६ इंच चौड़े होते हैं। सावधानी रखनी चाहिए कि चादर आवश्यकता से अधिक अभिसाधित न हो जाय।

यदि अभिसाधन के यंत्र न हो तो कपड़े पर लपेटकर गोलक को भाप में भी अभिसाधित कर सकते हैं। निम्न ताप पर भी वेगवर्धकों की सहायता से अभिसाधन हो सकता है। ऐसी चादर कुछ दिनों तक रखने से ही अभिसाधित होती है।

रवर का खपड़ा (टाइल) भी वनाकर उससे गच वना सकते हैं। पटियों को काटकर अलग-अलग वलकनीकृत करके उपयोग में लाते हैं।

निम्न-रवर मिश्रण गच के लिए उपयुक्त हो सकता है।

रवर	६५
आपाचयिता	१
स्टियरिक अम्ल	१·५
जिंक ऑक्साइड	८
मिट्टी	२८०
एम. वी. टी. एस.	१·२
टी. एम. टी. डी.	०·१
गन्धक	४

अभिसाधन—प्रतिवर्ग इंच पर ६० पौण्ड पर १० मिनटों में।

———

बाईसवाँ अध्याय

रबर के सूत और बरसाती कपड़े

रबर का बरसाती कपड़ा बनाना एक महत्त्व का धन्धा है। यह धन्धा बहुत पुराना भी है। ज्योंही रबर का ज्ञान लोगों को हुआ, उन्हें मालूम हो गया कि सूत को रबर से ढाँक देने पर सूत फिर पानी को सोखता नहीं है। दूसरे शब्दों में ऐसा सूत पानी में भींगता नहीं है। वलकनीकरण के आविष्कार के बाद रबर के बरसाती बनाने का उद्योग बहुत पनपा और साथ ही ऐसे वस्त्रों के तैयार करने की रीति में भी सुधार हुआ।

रबर के बरसाती कपड़े बनाने के लिए वस्त्र उत्कृष्ट कोटि की रुई का होना चाहिए। लम्बे रेशे की रुई होनी चाहिए। ऐसी रुई जिसके रेशे आधे इंच से १½ इंच के हों।

रुई की धुनाई, बुनाई, सूत की ऐंठाई, तह-कराई आदि का बरसाती पर गहरा प्रभाव पड़ता है। रुई के अनेक तन्तुओं को लपेटकर डोरे की लड़ी बनाई जाती है। लड़ी में ८४० गज़ सूत रहता है। इसका भार एक पाउण्ड होता है। १०० लड़ी के प्रति पाउण्ड में ८४०० गज सूत होता है। कई लड़ियों को ऐंठकर डोरी बनाई जाती है।

रुई के रेशे को लड़ी में दाहिनी ओर ऐंठते हैं। कई लड़ियों को फिर ऐंठकर डोरी बनाते हैं। टायर में रुई की डोरियाँ रहती हैं। अब कुछ कृत्रिम रेशम या रेयन व नीलन की डोरियाँ भी उपयुक्त होने लगी हैं। ताने और बाने के सूत दूर-दूर पर बराबर की संख्या में रहते हैं ताकि उनके मध्य के स्थान में रबर भरा जा सके।

जिस सूत पर रबर चढ़ाना है, उत सूत को बिलकुल सूखा रहना चाहिए। सूत के सुखाने की मशीन बनी हैं। इसी प्रकार की मशीन का एक चित्र ४४ यहाँ दिया गया है। इस्पात के पट्ट पर सूत जाता है। यह वाष्प से गरम रखा जाता है। चित्र ४५ में एक दूसरे प्रकार से भी सूत को सुखाते हैं। इस यंत्र में सूत परिभ्रामक तप्त बेलन पर सुखाया जाता है।
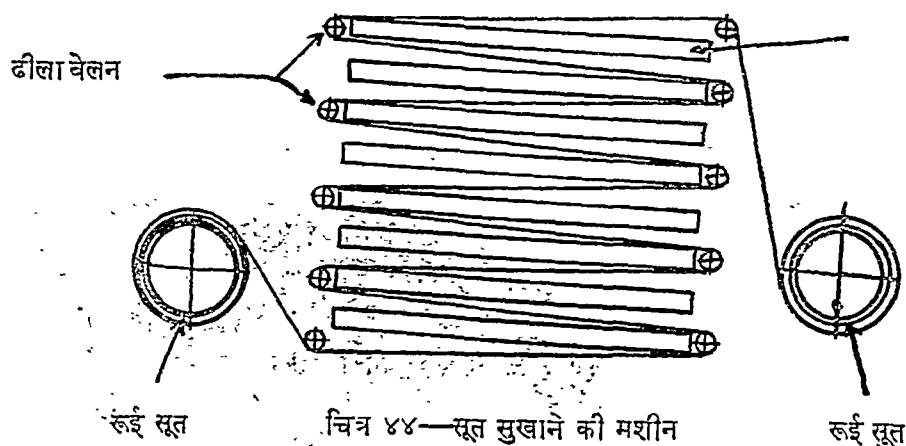
चित्र ४४—सूत सुखाने की मशीन

रुई के कपड़े इस कारण उपयुक्त होते हैं कि वे सरलता से प्राप्त होते हैं, एक से भौतिक गुण के होते और रबर से सादृश्य रखते हैं। रुई का दैर्घ्य भी लम्बा होता है। रबर चढ़ाने के पहले वस्त्र को ऐसा सुखा लेते हैं कि उसमें जल की मात्रा अधिक न रहे। वस्त्रों को गरम पट्टों या बेलनों पर ले जाकर सुखाते हैं।
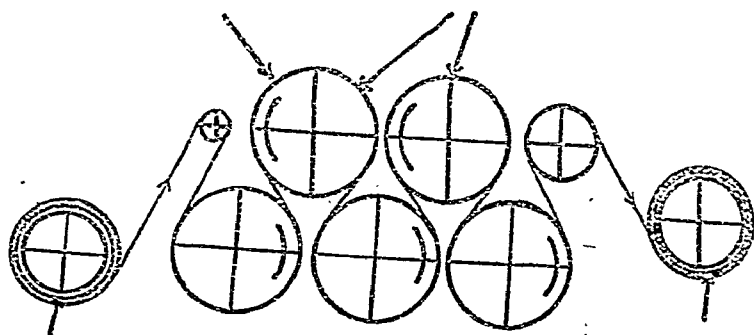
चित्र–४५ सूत को सुखाना, एक दूसरी मशीन

टायर के बनाने में रुई की डोरियाँ इस्तेमाल होती हैं। रेयन या नीलन की डोरियाँ भी अब इस्तेमाल होने लगी हैं। भारी बोझ ढोनेवाले ट्रकों के टायर के लिए रेयन अच्छा समझा जाता है। ऐसा टायर उच्च ताप को अच्छी तरह सहन कर सकता है।

डक पर भी रबर चढ़ाया जाता है।

अच्छे डक में नीचे का गुण रहना चाहिए।

रुई	भारतीय या अमेरिकी
४३ इंच चौड़ाई के एक गज लम्बे का सामान्य भार	३२·० औंस
औसत् मोटाई	०·०७२ इंच
प्रति इंच सूत	ताना २३; बाना १४
गणन	८ तह ७ गणन; ५ तह ७ गणन
प्रति इंच ऐंठन	३·५
न्यूनतम	३·०
प्रति इंच वितान-क्षमता	४०० पाउण्ड ; २०० पाउण्ड
महत्तम दैर्घ्य (टूटने पर)	३३% ; ११%

पहले-पहल वस्त्र पर ब्रुश से रबर का विलयन चढ़ाकर उसको रबर से ढाँक दिया जाता था। रबर को घुलाने के लिए एक विलायक की आवश्यकता पड़ी और इसके लिए तारपीन का तेल उपयुक्त हुआ। पीछे पेट्रोलियम के अंश बेंज़ाइन और कोलतार से प्राप्त बेंज़ीन का उपयोग हुआ। इस रीति में विलायक बहुत नष्ट हो जाता था, और वस्त्रों पर रबर का आवरण भी एक सा मोटा न होता था। ऐसा न होने का एक दूसरा कारण भी था। वह यह था कि किसी विलायक में रबर पूर्णतया घुलता नहीं था। रबर के कुछ अविलेयकण रह जाते थे, जो वस्त्रों को उबड़-खाबड़ बनाकर तल को एक-सा नहीं रखते थे।

इससे हाथ से वरसाती वनाने का काम छोड़कर मशीनों का आविष्कार हुआ। आज मशीनों से ही रवर के वस्त्र वनते हैं। यह मशीन दो प्रकार की होती है। एक मशीन में रवर के विलयन वस्त्रों पर फैलाये जाते हैं। ऐसी मशीनों को फैलाव मशीन कहते हैं। इसमें रवर के विलयन उपयुक्त होते हैं।

दूसरे प्रकार की मशीन से रवर वस्त्रों पर दवाये जाते हैं। ऐसी मशीनों को प्ररम्भ मशीन (चित्र ४२ चित्र ४३ देखें) कहते हैं। इनमें सूखे रवर के मिश्रण उपयुक्त होते हैं। पर अधिकांश वस्त्र फैलाव मशीन पर ही वनते हैं।

रवर पिष्टि—रवर वस्त्र के निर्माण का पहला आवश्यक और वड़े महत्त्व का अंग रवर की पिष्टि तैयार करना है। पिष्टि ऐसी होनी चाहिए कि उसे वस्त्रों पर ठीक-ठीक फैला सकें। इस कारण पिष्टि तैयार करने में वड़ी सावधानी रखनी चाहिए। रवर के सव अवयवों को मिश्रण चक्की में खूव मिला लेना चाहिए। जव सारे अवयव पूर्णतया मिल जायँ, तव उसे एक ऐसे सन्दूक में रखना चाहिए जिसमें कोई विलायक, पेट्रोल या विलायक-नैफ्था या वेंज़ीन रखा हो। इस विलायक में रवर मिश्रण धीरे-धीरे मिलेगा। यह विलायक रवर के विलीन करने के साथ-साथ ऐसा होना चाहिए कि उसका क्वथनांक प्रायः ६०° और १३०° श० के वीच हो।

जव रवर मिश्रण उसमें कुछ घंटे भीग जायँ, तव उसे तोड़-ताड़ कर फेट देना चाहिए ताकि सारा विलयन उसमें मिल जाय। अव उसे मिश्रण-वेलन पर ले जाना चाहिए। ये वेलन तेज़ घूमते रहते हैं। रवर-विलायक मिश्रण को गोलक पर फैला देते हैं और तवतक फैलने देते हैं जवतक सारा विलयन एक-सा फैल न जाय।
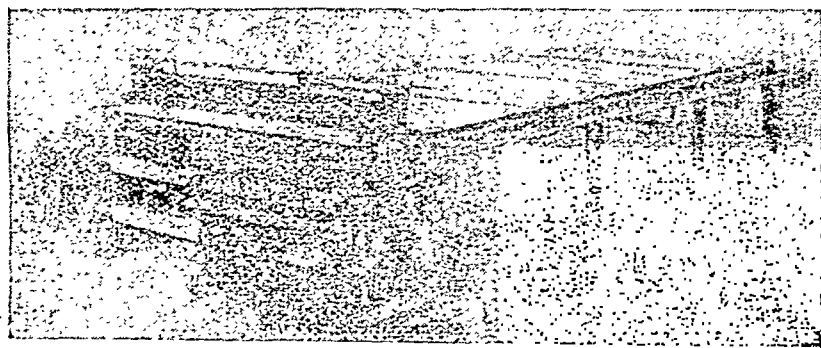
चित्र ४६—रवर फैलाने की गोलक मशीन

इस मशीन में एक वेलन होता है। यह रवर से ढँका रहता है। इसमें एक फलक होता है जिसे डाक्टर की चाकू भी कहते हैं। इस फलक को वेलन के ठीक पीछे लगा देते हैं। फलक ऐसे लगाते हैं कि सूत पर रवर की मोटाई इच्छानुसार रख सकें। मशीन में भाप से गरम किया एक पट्ट होता है। सूत को रवर से ढँके वेलन पर ले जाते हैं। फलक को ऐसा रखते हैं कि आवश्यकता से अधिक रवर-मिश्रण सूत पर न चढ़ने दे। फलक के पूर्व में रवर-पिष्टि रख देते हैं और मशीन को चला देते हैं। सूत वेलन और फलक के सामने से आगे

वढ़ता है और रवर-पिष्टि को ले लेता है। यह पिष्टि फलक के कारण एक-सा सूत पर फैलती है। विलायक उड़ जाता है और रवर का दृढ और सूखा आवरण सूत पर बैठ जाता है। आवश्यक मोटाई के लिए सूत पर अनेक आवरण चढ़ाते हैं। जव आवश्यक आवरण चढ़ जाता है, तव सूत पर स्टार्च या टालक को छिड़क कर तव वलकनी-करण क्रिया सम्पादित करते हैं। आवश्यक मोटाई का ज्ञान सूत के भार से मालूम होता है।
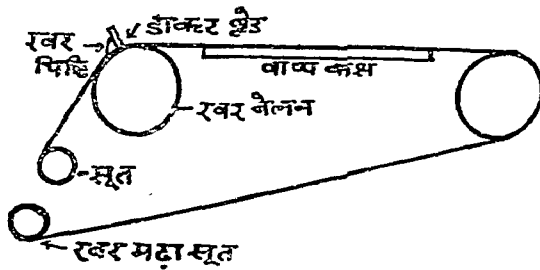
चित्र ४७

किस गति से रवर का विलयन फैलता है, यह विलायक पर निर्भर करता है। यदि रवर ११०° से १५०° श° पर उवलनेवाला नैफ्था में विलीन है और पट्ट पर ३० पाउण्ड भाप का दवाव है तो प्रति मिनट १२½ गज की गति सन्तोषप्रद है। यदि नैफ्था का क्वथनांक ७५° से ११०° श० है तो प्रति मिनट १८ गज की गति प्राप्त हो सकती है। पेट्रोल विलायक से ८ से १० गज प्रति मिनट की गति प्राप्त होती है।

साधारणतया रवर की पिष्टि तीन प्रकार की होती है। पहली पिष्टि पतली होती है। यह केवल सूत को भरकर ओत-प्रोत कर देती है। दूसरी पिष्टि इससे गाढ़ी होती है और उससे सूत को भार प्राप्त होता है। तीसरी पिष्टि ऐसी होती है कि वह सूत को सुन्दर वना देती है और आवश्यक रंग प्रदान करती है। साधारणतया सूत पर छः आवरण चढ़ाये जाते हैं। एक पहला आवरण, फिर तीन आवरण सूत को भार या काया प्रदान करने और शेष दो सुन्दर वनाने और आवश्यक रंग प्रदान के लिए आवश्यक होते हैं। जव यह क्रिया सम्पादित हो
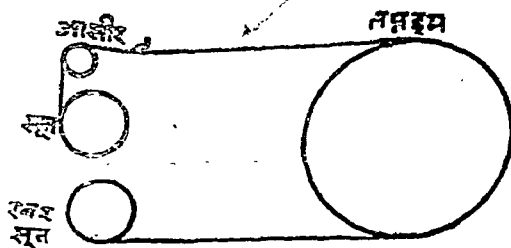
चित्र ४८

जाती है तव सूत को स्टार्च या टालक चूर्ण में डुवो देते हैं। एक-विनावट के वस्त्र के लिए आरारोट और मकई के स्टार्च इस काम के लिए सर्वोत्कृष्ट समझे जाते हैं। आलू स्टार्च या फ्रेंच चौक भी उपयुक्त होते हैं। चूर्ण छिड़कने के वाद उसका वलकनी-करण करते हैं। साधारणतया वलकनीकरण सामान्य ताप पर ही करते हैं।

वलकनी-करण के लिए सूत एक मार्ग से वलकनीकरण-कक्ष में प्रविष्ट करता है और दूसरे मार्ग से निकलता है। वहाँ यह एक काष्ठ के वेलन पर जाता है जो सलफर क्लोराइड और कार्बन वाइसलफाइड मिश्रण के पात्र में घूमता रहता है। वहाँ से वह भाप से तप्त डिंडिम पर जाता है, जहाँ विलायक उड़कर निकल जाता है। सूत की गति प्रति मिनट ८ से १६ गज़ की रहती है। इसके बाद इसे एक तप्त पट्ट पर ले जाते हैं जहाँ अमोनिया के वातावरण में मक्त अम्ल का निराकरण होता है। यह स्थूल वर्णन एक-वनावटवाले सूत का है।

चित्र ४६—आक्षीर से दो-सूती रबर-सूत वनाना
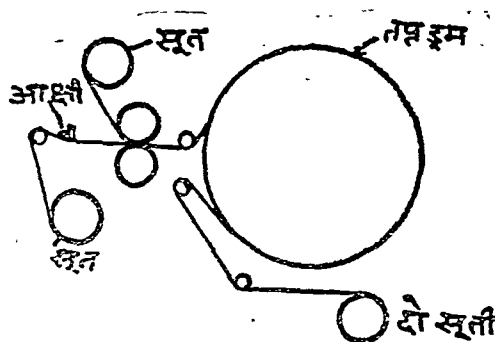
दो-वनावटवाले सूत पर भी इसी प्रकार रबर का आवरण चढ़ाया जाता है। भेद केवल यही है कि सूत पर एक और अधिक आवरण चढ़ाया जाता है। इस पिष्टि में ही वलकनी-करण प्रतिकारक रहता है। आवरण चढ़ जाने पर इसे सूत दोहराने की मशीन में चढ़ाते हैं। इसे डवलिंग मशीन कहते हैं। इस डवलिंग मशीन चित्र ५० में दो वेलन होते हैं। एक वेलन पर रबर मढ़ा रहता है और दूसरा इस्पात का होता है। इन दोनों वेलनों में से एक दूसरे की ओर घूमता है।

मशीन के दोनों ओर सूत का एक-एक गोलक रखा रहता है। इन गोलकों के सूतों के छोरों को रबर और इस्पात-वेलन के वीच ले जाते हैं। इन दोनों वेलनों के मध्य से एक डोरी निकलकर वेलन मशीन पर गोलक वनती है। इस प्रकार दो सूतों को जोड़कर उष्णवायु कक्ष में ले जाकर उनका वलकनी-करण करते हैं। उपयुक्त सूत के चुनाव से और उनपर विभिन्न तनाव से उठे हुए तलवाले सूत तैयार कर सकते हैं।
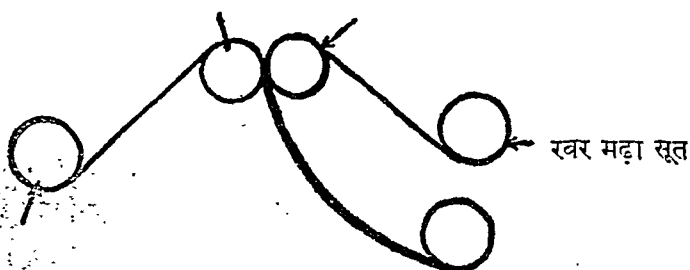
चित्र ५०—

एक द्वि-वनावट के सूत के लिए निम्नलिखित रबर की पिष्टि अच्छी होती है।

रबर	१००
पुनर्गृहीत	५०
स्टियरिक अम्ल	२
जिंक ऑक्साइड	१०
प्रति-ऑक्सीकारक	१·५
एम. आर. एक्स	५
देवदारु कोलतार	२

ऊपरी तन्तु—यह द्वि-विनावट सूतों के सदृश ही तैयार होता है; पर ऐसा तैयार हो जाने पर फैलाव की मशीन में उसके तल पर रबर पिष्टि का एक और आवरण चढ़ाते हैं। आवरण चढ़ाने के बाद उसपर नक्काशी करते या दानेदार बनाकर चमड़े-सा रूप प्रदान करते हैं। ऐसे रबर के वस्त्र मोटरगाड़ियों के ढाँप इत्यादि के लिए अच्छे होते हैं। उसपर नक्काशी ठीक-ठीक उतरे इसके लिए आवश्यक है कि रबर कुछ कठोर हो। यदि रबर कोमल है तो नक्काशी ठीक नहीं उतरती; पर अधिक कठोर रबर के होने से उसके कट जाने की सम्भावना बढ़ जाती है जिससे वस्त्र पर पीछे दरार फट सकती है। नक्काशी के बाद वस्त्र पर फैलाव की मशीन में ही वार्निश कर देते हैं। इस बार फलक को मखमल से ढँक देते हैं ताकि फलक का खुरचन न पड़े। इस मशीन की पट्टी पर्याप्त प्रायः ५० फीट लम्बी होती है ताकि वह पूर्णतया सूख जाय। इसके बाद उसे उष्णवायु में रखकर अभिसाधित करते हैं।

इस प्रकार रबर के वस्त्र तैयार करने में कुछ कठिनाइयाँ हैं। जिन वस्त्रों पर रबर चढ़ाया जाता है, वे निम्न कोटि के होते हैं। उनपर बहुत स्टार्च चढ़ा रहता है। स्टार्च के रहने से रबर उस पर ठीक से चिपकता नहीं और पीछे उखड़ने लगता है। रँगे हुए रेशम और अन्य-वस्त्र से भी कठिनता होती है। उनका रंग रबर के विलयन में घुल जाता है। यदि रबर-वस्त्र पर रंग चढ़ाना है तब रंग का चुनाव बड़ी सावधानी से होना चाहिए। रंग ऐसा होना चाहिए जो सलफर क्लोराइड से आक्रान्त न हो। यदि वस्त्र में कुछ तांबा या मैंगनीज है तो उसका प्रभाव रबर पर पड़ता है। इस कारण यह आवश्यक है कि सूत पर रबर चढ़ाने में विशेष सावधानी इस बात की रखनी चाहिए कि रबर सूत पर दृढता से चिपका रहे। टायर के निर्माण में तो इसका विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

प्ररम्भ विधि—प्ररम्भ विधि में विलायक की आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे निर्माण का खर्च कुछ कम हो जाता है। रबर को विलायक में डालने और उसके मिलाने की क्रियाएँ भी कम हो जाती हैं। यहाँ रबर को वस्त्र पर बैठा दिया जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि रबर कुछ चिपचिपा हो ताकि वह वस्त्रों पर चिपक सके। यह क्रिया निम्न कोटि के वस्त्र पर भी हो सकती है; पर निम्न कोटि के वस्त्र में कुछ कठिनाइयाँ भी होती हैं। वस्त्र के फट जाने का भय रहता है। यदि वस्त्रों पर गाँठ तथा ऊबड़-खाबड़ तल हो तो उससे भी कठिनाइयाँ होती हैं।

जो रबर वस्त्रों पर चढ़ाया जाता है, उसमें वलकनीकरण के सब आवश्यक अवयव रहते हैं। उसका वलकनीकरण उष्ण वायु कक्षों अथवा चूल्हों में होता है। इससे वस्त्र अच्छे बनते हैं। ऐसे रबर के लिए यह नुसखा अच्छा समझा जाता है।

रवर	१००
जिंकऑक्साइड	१६
कैलसियम कार्बोनेट	७५
स्टियरिक अम्ल	१
प्रति-ऑक्सीकारक	१

यदि निम्न ताप पर उन्हें वलकनीकरण करना है तो निम्न ताप-वेगवर्द्धक उपयुक्त करना चाहिए।

भूरे रंग की बरसाती के लिए निम्न मिश्रण अच्छा समझा जाता है।

रवर	१०० भाग
सफेद प्रतिस्थापक	६५ ,,
लिथोपोन	७० ,,
पीसा हुआ खड़िया	५० ,,
सफेद मिट्टी	४० ,,
मैगनीसियम कार्बोनेट	१२ ,,
क्रोम-पीत	२५ ,,
दीप-काल	५ ,,

———

तेईसवाँ अध्याय

रबर के टायर और ट्यूब

रबर के उद्योग में टायर का निर्माण अधिक महत्त्व का है। समस्त रबर के उत्पादन का प्रायः ७८ प्रतिशत टायर और ट्यूब के निर्माण में लग जाता है। टायर दो प्रकार के होते हैं, एक ठोस टायर और दूसरा वायु टायर, जिसमें वायु भरी जाती है। ठोस टायर की महत्ता क्रमशः घटती जा रही है। क्योंकि ठोस टायर जल्द घिसता, वज़न में भारी होता और अधिक रबर होने के कारण कीमती होता है। वायु-टायर की भाँति इनमें प्रलचक भी नहीं होती और न ये गद्दीदार ही होते हैं। वायु टायर में रबर कम लगता और वे पहिए पर सरलता से चढ़ाए और उतारे जा सकते हैं।

वायु-टायर फिर कई किस्म के—मोटर गाड़ी के टायर, ट्रक के टायर, मोटर साइकिल के टायर, वायु-यान के टायर और खेतों में काम करनेवाले ट्रैक्टरों के टायर होते हैं। ये सब टायर भिन्न-भिन्न आकार और विस्तार के होते हैं। पर उनके निर्माण के सिद्धान्त प्रायः एक से ही हैं।

वायु-टायर के दो भाग होते हैं। एक वाह्य आवरणवाला भाग जिसे साधारणतया 'टायर' कहते हैं और दूसरा अभ्यन्तर भाग जिसे 'ट्यूब' कहते हैं। इन ट्यूबों में ही वायु भरी जाती है। इस कारण ट्यूब ऐसा रहना चाहिए कि वह घट-बढ़ सके और उससे वायु न निकल सके। ट्यूब पहले रबर का बनता है। यह स्वयं दबाव को सहन नहीं कर सकता। इस कारण यह एक दूसरे रबर के आवरण में ढँका रहता है जो ट्यूब को सुरक्षित रखता, आवश्यकता से अधिक फैलने से रोकता और ट्यूब में छेद होने और कटने से बचाता भी है। इस कारण ट्यूब के साथ-साथ टायर भी लगता है। टायर पर रबर की पट्टी बैठाई होती है जो सड़कों के अपघर्षण को सह सकती है।

टायर के नीचे लिखे अंग होते हैं—

१. रबर लगा हुआ रूई-तन्तु या सूत या काय-परत
२. ओटन पट्टी या चार परत
३. गद्दी स्तर
४. इस्पात का तार
५. अपघर्षण पट्टी
६. पार्श्व दीवार
७. रबर का चार

रवर लगा हुआ डोरिया सूत—सूत से टायर को तेज धक्के और अकस्मात् की चोटों के सहन करने में वल प्राप्त होता है। इससे टायर में लचक भी आती है जिससे वाहनारोही

काय-परत या रवर मढ़ा सूत

त्राटन पट्टी

गद्दी स्तर

चार स्तर

पार्श्व दीवार

अपघर्षण पट्टी

शक्तिवर्धक

मनका (वीड)
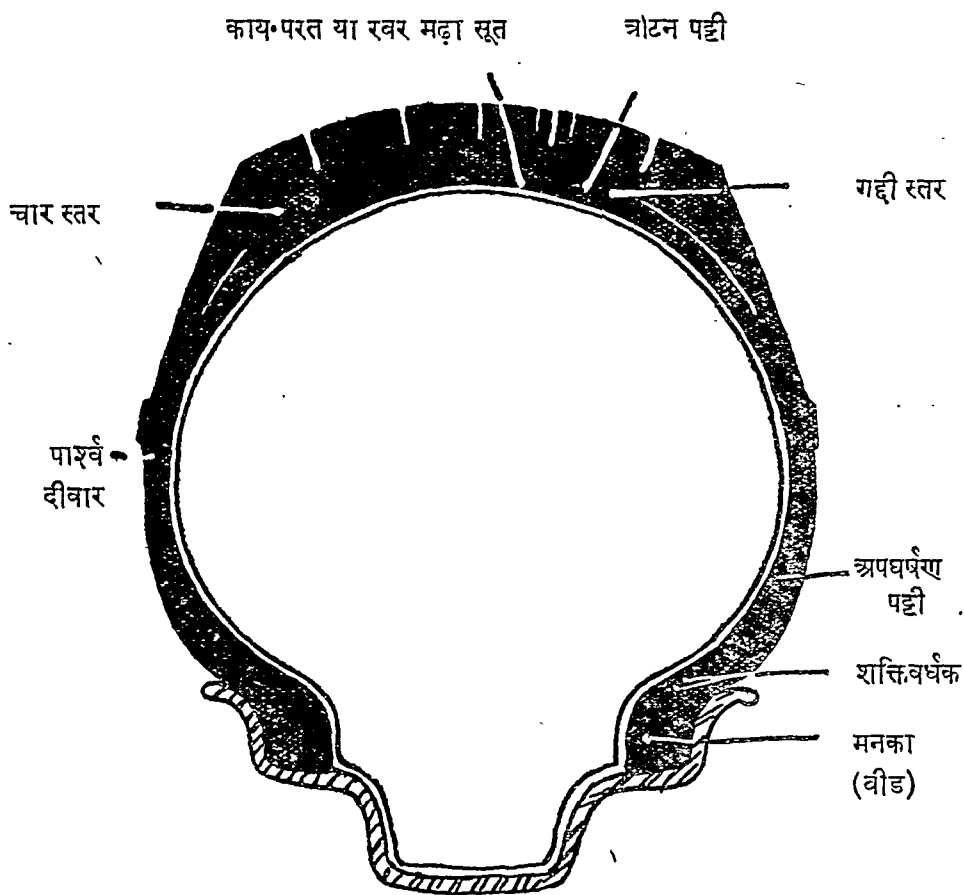
चित्र ५१—रवर टायर के विभिन्न अंग
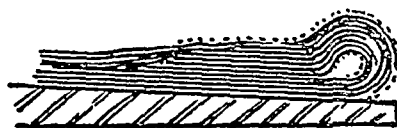
चित्र ५२—मनका वनाना

को आराम मिलता है। बोझ के ढोने में अभ्यन्तर वायु के दवाव को सहन करने में टायर को डोरी-सूत से पर्याप्त वल भी प्राप्त होता है।

यह सूत चुने हुए श्रेष्ठ रेशेवाले रुई का वना होता है। सूत को एक-सा खींचकर साथ-साथ रखते हैं। उनका तनाव एक-सा होना चाहिए। एक इंच में २२ से २४ सूत रखते हैं। सूत पर पहले गोंद रवर चढ़ाकर जल-अभेद्य वनाते हैं। गोंद रवर से सूत को पूर्ण रूप से

ओत-प्रोत और ढँका हुआ रहना चाहिए। इसके लिए जो रबर उपयुक्त होता है, वह विशेष प्रकार का, शुद्ध गोंद किस्म का, होता है ताकि उसमें पर्याप्त लचक हो। उसमें अधिक चिपक के लिए कुछ पुनर्ग्रहीत रबर भी मिला देते हैं। टायर साँचे पर बनता है। रबर लगे सूत को तब टायर साँचे पर चढ़ाते हैं। सूत एक दूसरे के समानान्तर पर रखे जाते हैं।

ऐसे साँचे पर रखे सूत पर उत्तम कोटि के रबर का एक स्तर चढ़ा देते हैं। रबर क चढ़ जाने पर फिर उसपर दूसरा सूत चढ़ाते हैं और उस सूत पर फिर रबर चढ़ाते हैं। इस प्रकार एक के बाद दूसरे पर चढ़ाकर उसे आवश्यकतानुसार पर्याप्त मोटा बना लेते हैं। सूत का कितना परत रहना चाहिए, यह टायर की मोटाई पर निर्भर करता है। किसी टायर में दो परत, किसी में चार परत, किसी में छः परत और इस तरह १६ परत तक सूत रहते हैं।

टायर ऐसा होना चाहिए कि उसमें अपघर्षण अवरोध अधिक हो, कम घिसनेवाला हो। वितानक्षमता ऊँची और लचक का गुण उत्तम हो। उसमें वायु और सूर्य-प्रकाश के सहन करने का अच्छा गुण हो और काम के समय उसमें अधिक गरमी पैदा न हो। इस परत क लिए नीचे दिये प्रकार का रबर इस्तेमाल हो सकता है।
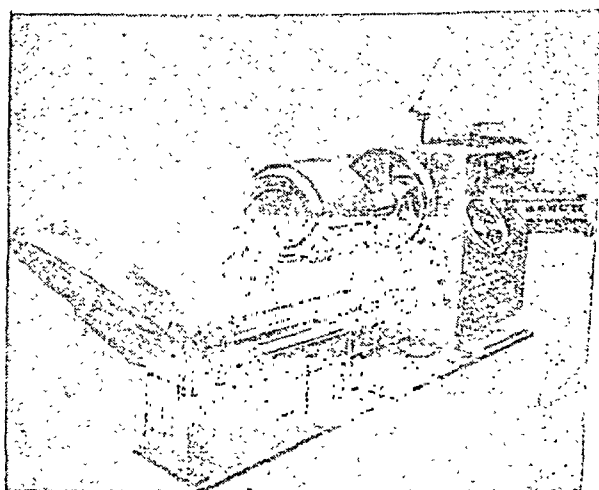
चित्र ५३—टायर बनाने की मशीन

रबर	१००
आपाचयिता	१
स्टियरिक अम्ल	१
प्रति-आक्सीकारक	१
पाइन कोलतार	४
जिंक ऑक्साइड	५
मरकेप्टो बेंजथायोजोल	०.७५
गन्धक	३

तीस पाउण्ड प्रतिवर्ग इंच दवाव में ३० मिनटों के दबाव से यह मिश्रण अभिसाधित हो जाता है।

चार स्तर से सड़क के प्रति अपघर्षण अवरोध होता है। चार का आधार रवर को फटने से रोकता है। इसकी मोटाई प्रायः टायर की मोटाई की आधी होती है। यदि यह कम मोटा हो तो उसमें लचक अधिक होगी और दरार फटने की सम्भावना बढ़ जाती है। यदि यह अधिक मोटा हो तो उससे अधिक गरम हो जाने का भय रहता है।

काय-परत और चार परत के बीच गद्दी का एक स्तर रहता है। इस चार में सहन की शक्ति आती है। इसका प्रधान कार्य काय-परत को धक्के या चोटों से बचाना होता है। चोटों या धक्कों को वह शोषित कर उसे चारों ओर फैला देता है।

चित्र ५४, टायर वलकनीकरण मशीन

चार के रवर इस प्रकार होते हैं—

रवर	१००	७५
पुनर्ग्रहीत	—	५०
आपाचयिता	१	१
स्टियरिक अम्ल	१	३
पाइन अलकतरा	१	१
प्रति-ऑक्सीकारक	१	१
जिंक ऑक्साइड	३	३
कार्बन काल	४५	४०
मरकैप्टो-बेंज-थायोजोल	३	३
गन्धक	१	१

यह तीस पाउण्ड प्रतिवर्ग इंच पर ४५ मिनटों में पूर्णतया अभिसाधित हो जाता है।

त्रोटनपट्टी मजबूत सूत की होती है। इनका काम गद्दी को मजबूत बनाना है। यह काय परत पर रखा रहता है। यह चोट का अवशोषण कर इधर-उधर फैला देता है। कुछ ट्रक और बस टायरों में दो त्रोटन पट्टी होते हैं।

इस्पात के तार—इस्पात के तार का काम है टायर को चक्के पर दृढता और मजबूती से पकड़े रहना। यह विशेष प्रकार के मजबूत इस्पात का बना होता है।

अपघर्षण पट्टी—अपघर्षण पट्टी का काम है—टायर को दृढता प्रदान करना।

पार्श्व दीवार—पार्श्व दीवार से दो कार्य होते हैं। यह काय-परत को जल से सुरक्षित रखती है और काट और रगड़ से बचाती है। इसकी दीवार इतनी मोटी रहनी चाहिए कि वह काय-परत को सुरक्षित रख सके और इतनी पतली भी होनी चाहिए कि उससे टायर में लचक बनी रहे।

चार—पार्श्व दीवार को काय-परत से जोड़ने के लिए रबर का चार लगता है। चार से टायर का जीवन बढ़ जाता है। बड़े ट्रकों और बस टायरों में यह चार बड़े महत्त्व का होता है। ये डिंडिम पर बनते हैं।

टायर बनाने में अनेक साँचों की आवश्यकता पड़ती है। जैसे ऊपर कहा गया है टायर में सूत और रबर के एक के बाद दूसरे स्तर रहते हैं। सब के नीचे का भाग रुई के सूत का बना हुआ और मशीन से कटा हुआ होता है। इस सूत को साँचे पर रखकर उसको रबर से पूर्णतया ढँक देते हैं और उसके ऊपर फिर रबर का एक स्तर चढ़ा देते हैं। फिर उसपर सूत का दूसरा परत रखकर रबर चढ़ाते हैं। यह क्रम तब तक चलता रहता है जबतक टायर की मोटाई पर्याप्त न हो जाय। प्रत्येक परत की वितान-क्षमता प्रायः ४५० पाउण्ड या इससे अधिक होती है। उसके ऊपर रबर की गद्दी रहती है और गद्दी के ऊपर रबर की पट्टी जो चोटों और धक्कों से बचाती है। इन सब परतों को बाँध रखने के लिए पार्श्व दीवार रहती है जो सबको बाँधकर रखती है। इस प्रकार जब साँचे पर टायर बन जाता है, तब उसका ओटोक्लेव में वलकनीकरण होता है। यह वलकनीकरण प्रायः उच्च ताप पर होता है और उससे सूत और रबर—एक दूसरे से बँधकर अत्यन्त मजबूत हो जाता है।

साइकिल टायर—साइकिल टायर पहले हाथ से बनते थे। पर अब ये टायर मशीन में बनते हैं। ऐसी मशीन को 'मोनो-बैण्ड मशीन' कहते हैं।

अच्छे टायर बनाने में समय और परिश्रम लगता है। इससे अच्छे टायर की कीमत अधिक होती है। पर निम्न कोटि के भी टायर और ट्यूब बनते हैं। ऐसे टायर और ट्यूब जल्दी घिस जाते हैं, जल्दी टूट या फट जाते हैं और एक बार टूट या फट जाने पर फिर उनकी मरम्मत नहीं हो सकती। अच्छे टायर और ट्यूब का मरम्मत बार-बार करके अधिक समय तक उनका उपयोग कर सकते हैं।

ठोस टायर—ठोस टायर अब भी भारी बोझ ढोनेवाले ट्रकों में उपयुक्त होते हैं। टैंकों में भी इनका उपयोग होता है। ये पर्याप्त मोटे होते हैं और धातु के चक्के पर चढ़े होते हैं। इसके लिए रबर कठोर होना चाहिये और उसमें लचक अधिक होनी चाहिए। उसमें ऐसे पदार्थ रहना चाहिए जो निम्न ताप पर ही शीघ्रता से उसका वलकनीकरण

कर सकें और जो ताप के सुचालक भी हों। रबर साधारणतया ताप का कुचालक होता है। ठोस टायर के लिए निम्नांकित प्रकार का रबर अच्छा समझा जाता है।
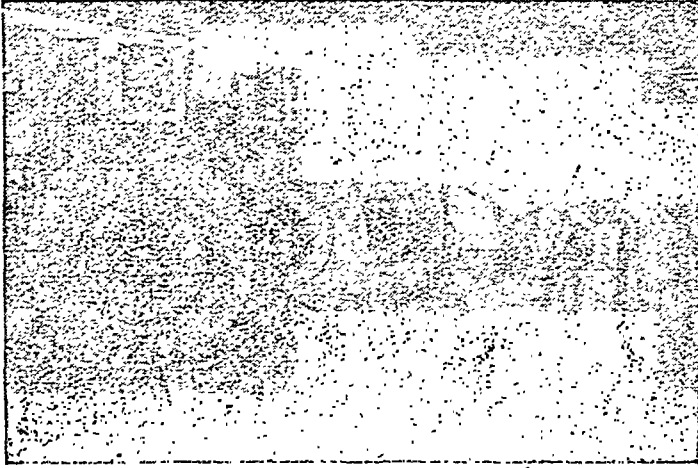
चित्र ५५, अभ्यन्तर व्यूब का अभिसाधन

रबर	१००
जिंक ऑक्साइड	१०
काजल-काल	६०
खनिज तेल	३
स्टियरिक अम्ल	२
ब्यूटाइरल्डीहाइड एनिलिन	१
प्रति-ऑक्सीकारक	१
गंधक	३

पचीस पाउण्ड प्रति वर्ग इंच पर तीस मिनटों में इसका दवाव-अभिसाधन हो जाता है।

चौबीसवाँ अध्याय

रबर के जूते

रबर के जूतों की माँग भारत में बढ़ रही है। ये सस्ते होते हैं और आरामदेह भी। ये पानी में भींगते भी नहीं। इस कारण बरसात के लिए अधिक अच्छे समझे जाते हैं। रबर के जूते देखने में सुन्दर, मजबूत और टिकाऊ भी होते हैं। जूते की लचक सब दिशाओं में—विशेषतः सिलाई की दिशाओं में—समान रूप से होनी चाहिए।

जूते के भिन्न-भिन्न भाग अलग-अलग तैयार होते हैं। जूते फरमा पर बनाए जाते हैं। फरमा के विस्तार और आकार पर जूते का विस्तार और आकार निर्भर करता है। इस कारण यह आवश्यक है कि जूता बनाने के कारखानों में भिन्न-भिन्न विस्तार और आकार के बहुत-से फरमे हों। फरमे काठ के, लोहे के या एल्यूमिनियम के बनते हैं। लोहे का फरमा इस कारण अच्छा है कि वलकनीकरण कक्ष में वे शीघ्र ही गरम हो जाते हैं और वे फटते या घिसते नहीं है। साथ ही फरमे गरम हो जाना हानिकारक भी है; क्योंकि इससे सन्धि का रूप कुछ विकृत हो जाता है। काठ के फरमे हल्के होने से और गरम करने पर विशेष घटते-बढ़ते नहीं, इससे अच्छे होते हैं; पर लोहे की अपेक्षा उनकी घिसाई अधिक होती है। काठ के फरमे को भली प्रकार सुखा लेने की आवश्यकता पड़ती है।

जूते का सारा रंग एक-सा रहना चाहिए। इस कारण रंग का भली-भाँति मिलना बहुत आवश्यक है। साधारणतया जूते के रबर में केवल काले रंग का व्यवहार होता है। काले रंग के लिए रबर में कार्बन-काल या पिच मिलाते हैं। पिच के साथ कुछ रेजिन या मोम मिलाने से रबर में चमक आ जाती है। पर रेजिन की मात्रा बड़ी सीमित रहनी चाहिए। किसी दशा में भी ६ प्रतिशत से अधिक नहीं रहनी चाहिए। अधिक रहने से शीघ्र फटने का डर रहता है। पारा-रबर में न पिच मिलाया जाता है और न कार्बन-काल। इनके स्थान में मुर्दा-संख डाला जाता है। मुर्दा-संख डालने से वलकनीकरण में रबर काला हो जाता है।

जूते का तलवा—जूते के सब भागों से तलवा अधिक महत्त्व का है। इस भाग पर ही जूते की सबसे अधिक घिसाई होती है। इस कारण यह सिर्फ दृढ़ रबर का ही नहीं रहना चाहिए; बल्कि पर्याप्त मोटा भी रहना चाहिए। तलवे की मोटाई जूते की प्रकृति और किसके लिए जूता बनता है, इस पर भी निर्भर करता है। बालकों के जूते के तलवे की मोटाई उतनी नहीं होती, जितनी एक तरुण के जूते के तलवे की मोटाई। ऐसे तलवे कई पतले स्तरों को जोड़कर बनाये जाते हैं; क्योंकि एक ही बार मोटे तलवे का बनना कठिन होता है। तलवे के लिए

जो चादरें वनती हैं, उन्हें प्ररम्भ पर दवाकर तयार करते हैं। प्ररम्भ में चादरें केवल दवती ही नहीं, वरन उसपर छाप भी पड़ जाती है। तलवे केवल एक मोटाई के नहीं होते; क्योंकि उसी की एड़ियाँ और ऊपरी भाग वनते हैं। एँड़ियाँ अवश्य ही मोटी रहती हैं और ऊपरी भाग सवसे अधिक पतला। ऐसी चादर के वनाने में कठिनता होती है। इसके लिए प्ररम्भ वहुत मजवूत होना चाहिए और गोलक अपेक्षाकृत पतला। यह तलवे की चौड़ाई से कुछ ही वड़ा होना चाहिए।

अन्तिम गोलक में छापा (मार्का) दिये जाते हैं। जव भिन्न-भिन्न मोटाई की चादरें प्ररम्भ में डाली जाती हैं, तव गोलक को एक गति से नहीं चला सकते। रवर वहुत गरम रहना चाहिए ताकि उसमें वायु के वुलवुले न रहकर वह एक-सा समावयवी रहे। तव चादरों को 'रंगक' में ले जाते हैं और तव तलवे को काटते हैं। काटने के पहले उसे उवलते जल में प्रायः पाँच मिनट रखते हैं ताकि वलकनीकरण में वह अधिक सिकुड़े नहीं। तव उसे लास्ट पर खींच कर रखते हैं ताकि वह पीछे फटे और विकृत न हो।

तलवे को हाथों से अथवा मशीनों से काटते हैं। इन दोनों ही दशाओं में जस्ते के साँचे का उपयोग करते हैं। जूते के तलवे के विस्तार और आकार का साँचा होना चाहिए।

क्रेप तलवे के रवर

रवर	१००
जिंक ऑक्साइड	१
डाइबेंजथायजील डाइसल्फाइड	१·५
गंधक	२·५

पचास पाउण्ड प्रति इंच दवाव पर १० मिनटों में अभिसाधित हो जाता है।

तलवे के सफेद रवर

१.

रवर	१००
मैगनीसियम कर्वोनेट	१००
जिंक ऑँक्साइड	२००
लिथोपोन	५०
सफेद मिट्टी	१००
स्टियरिक अम्ल	१
खनिज तेल	३
प्रति-आक्सीकारक	१
डाइवेंज-थायजील डाइसल्फाइड (ट्रेडनाम-एम. वी. टी. एस.)	१·२५
गन्धक	२·५

साठ पौंड प्रतिवर्ग इंच पर दवाव से १२ मिनटों में अभिसाधित हो जाता है।

२.

रबर	१००
जिंक आक्साइड	१००
लिथोपोन	५०
मैगनीसियम कार्बोनेट	४५
बेराइटीज	५०
स्टियरिक अम्ल	२
खनिज तेल	३
टेट्रा-मेथिलथायरम डाइसल्फाइड (ट्रेडनाम. टी. एम. टी)	०.५
गन्धक	२

तलवे के काले रबर

१.

रबर	१००
जिंक आक्साइड	१०
कार्बन-काल	१००
चीड़ अलकतरा	५
स्टियरिक अम्ल	३
प्रति-आक्सीकारक	१
ब्युटिरल्डीहाइड एनिलिन (ट्रेडनाम-बी. ए.)	२.०
गन्धक	२.५

रबर	१००
पुनर्ग्रहीत रबर	६०
जिंक आक्साइड	१०
कार्बन-काल	७५
क्यूमेरोन रेजिन	५
स्टियरिक अम्ल	२
प्रति-आक्सीकारक	१
बी. ए.	१
गन्धक	३

अभिसाधन—५० पाउण्ड प्रति वर्ग इंच दबाव पर १५ मिनटों में।
अभिसाधन—५० पाउण्ड प्रतिवर्ग इंच दबाव पर १० मिनटों में।

२.

रबर	४०
रबर प्रतिस्थापक	३०
कार्बन-काल	८
मुर्दा-संख	२७
कैलसियम कार्बोनेट	२५०
बेराइटीज	५०
बी. ए.	१.०
गन्धक	१.५

इसके लिए रवर-प्रति-स्थापक इस रीति से तैयार करते हैं—१०० भाग असली, सरसो या रेंड़ी के तल को १६ भाग गन्धक के साथ एक उपयुक्त पात्र में रखकर प्रायः १६०°-१८०° ताप तक गरम करते और उसे वरावर हिलाते रहते हैं ताकि गन्धक पेंदे में बैठ न जाय। इसमें उष्णता उत्पन्न होती है और गन्धक तेल के साथ मिलकर मिश्रण वन जाता है। यह मिश्रण ठोस होता है और उसमें वहुत लचक होती है। यह रवर के साथ शीघ्र ही मिल जाता है।

काले तलवे

रवर	६५
पीसा हुआ रवर गूदड़	६५
जिंक ऑक्साइड	५
कार्वन-काल	७०
प्रति-आक्सीकारक	१
चीड़ अलकतरा	२
एम. आर. एक्स	१०
वी. ए.	२
गन्धक	२·५

अभिसाधन—५० पाउण्ड प्रति इंच दवाव पर १५ मिनटों में।

वदामी तलवे

रवर	१००
प्रति-आक्सीकारक	१
स्टियरिक अम्ल	२
जिंक ऑक्साइड	१०
क्यूमेरोन रेजिन	१०
सफेद मिट्टी	१५०
मैगनीसियम कार्वोनेट	४०
लोहे के रक्त आक्साइड (गेरू)	१०
एम. वी. टी. एस.	१·५
टी. एम. टी. डी.	०·१५
गन्धक	४

अभिसाधन—३० पौंड प्रतिवर्ग इंच दवाव पर १२ मिनटों में।

वादामी तलवे

रवर	१००
ग्लू (सरेस)	३०
मैगनीसियम कार्वोनेट	१२०
जिंक ऑक्साइड	११

टर्की रेड ऑक्साइड	११
कार्वन-काल	०·५
चीड़ अलकतरा	३
प्रति-आक्सीकारक	१
बी. ए.	२
गन्धक	४

अभिसाधन—६० पाउण्ड प्रति इंच दवाव पर १२ मिनटों में।

एँड़िया

एँड़ियों की घिसाई सबसे अधिक होती है। इस कारण यह सबसे अधिक चीमड़ और दृढ रहना चाहिए। यह पर्याप्त मोटा भी रहना चाहिए। एँड़ी के लिए निम्न नुस्खे उपयुक्त हो सकते हैं।

१.

पुनर्गृहीत रबर	१००
एम. आर. एक्स.	४
चीड़ अलकतरा	२
कार्बन-काल	५०
जिंक ऑक्साइड	५
स्टियरिक अम्ल	१
प्रति-आक्सीकारक	१·५
एम. बी. टी. एस.	१·२५
गन्धक	१·५

अभिसाधन—६० पाउण्ड प्रति इंच दवाव पर १५ मिनटों में।

२.

रबर	१००
रबर गूदड़	४०
जिंक ऑक्साइड	४०
कार्बन-काल	२५
मैगनीसियम कार्बोन	२५
विट्यूमिन	४०

अभिसाधन—६० पाउण्ड प्रति वर्ग इंच दवाव पर ३० मिनटों में होता है।

जूते के ऊपर का भाग

जूते के ऊपर के भागों में सामने के भाग, पीछे के भाग और पार्श्व के भाग होते हैं। ये तीनों भाग एक ही टुकड़े में होते हैं। तलवे के समान इनकी घिसाई नहीं होती; पर इनपर पर्याप्त खिंचाई, मुड़ाई और ऐंठाई होती है। अतः इन्हें पूर्णतया सुनम्य होना चाहिए ताकि उनपर दरारें न फटें। इसकी मोटाई अधिक नहीं होनी चाहिए। साधारणतया इसकी मोटाई ०·४ मिलिमीटर से अधिक नहीं होती और एक कारखाने में प्रायः एक ही मोटाई

के बनते हैं। इसके बनाने के लिए तीन गोलकों का प्ररम्भ आवश्यक है; पर यह एक-सा और बिलकुल आराम से चलनेवाला रहना चाहिए। इसमें थोड़े भी प्रदोलन से लकीरें पड़ जाती हैं और चिकनापन नष्ट हो जाता है। रबर का मिश्रण पूर्णतया मिला हुआ रहना चाहिए। पिच के रहने से इसमें चिकनापन आ जाता है। इसकी चादरों को लपेटते नहीं; क्योंकि इससे सट जाने की सम्भावना रहती है। यदि चादरों के बीच कपड़े के स्तर भी रहें तो उससे कपड़े के सूतों की छाप पड़ जाती है। इस कारण इसे आवश्यक विस्तार के टुकड़ों में काटकर कपड़े से आच्छादित फ्रेम पर फैला देते हैं।

काटने में भी कई स्तर एक साथ नहीं काट सकते। अलग-अलग स्तर ही काटते हैं। उसपर खड़िया नहीं छिड़क सकते; क्योंकि खड़िया छिड़क देने पर फिर चिपकाने में कठिनता होती है। ऊपर के हिस्से को काटकर कपड़ों के बीच पुस्तक के रूप में रखते हैं। यह भाग बिलकुल काला होना चाहिए। इसमें कोई भी अपद्रव्य नहीं रहना चाहिए। इसमें मुक्त गन्धक बिलकुल नहीं रहना चाहिए। यह ऐसा होना चाहिए कि सरलता से मुड़ सके और मुड़ने पर दरारें न फटें। देखने में सुन्दर और एक रंग का होना चाहिए ताकि उसके बने जूते देखने में आकर्षक हों। उसके ऊपर जो वार्निश रहे, वह फटनेवाला न हो। काम में लाने पर उसकी चमक भी ज्यों-की-त्यों बनी रहे। ऐसे रबर का एक मिश्रण यह है—

पारा रबर	१००
बेराइटीज	१००
मुर्दासंख	४०
लिथोपोन	६०
कार्बन-काल	४
पिच मिश्रण	२५
गन्धक	४

पिच मिश्रण में १०० भाग पिच में ५ भाग कार्नोवा मोम, ३ भाग रेजिन और १ भाग एस्फाल्ट रहता है।

ऐसे रबर के मिश्रण को बड़ी सावधानी से गरम करके मिलाने की आवश्यकता पड़ती है। जब सब पदार्थ मिल जायँ तब तीन कोष्ठवाले प्ररंभ में डाल कर चादर तैयार करते हैं। चादर को कपड़े पर फैलाकर सूखने देते हैं; क्योंकि यह बहुत कोमल और चिपकनेवाला होता है। चादर पर नाम और ट्रेड की छाप देने के लिए तीन कोष्ठों के अतिरिक्त एक चौथा कोष्ठ भी तीसरे के बाद जोड़ देते हैं। इन चादरों से फिर प्रतिमा-साँचे की सहायता से तेज चाकू से काटकर रखते हैं। फिर तलवे को गावदुम आकार में काटते हैं। फिर तलवे और ऊपर के भाग के बीच अन्य पदार्थ बीच में रखते हैं। इन सबों को अस्तर से ढक देते हैं। आँखों से केवल अस्तर देख पड़ता है। तलवे और अस्तर के बीच में टाट, कपड़ा, गद्दी, रोवाँ इत्यादि, जो भी पदार्थ गद्दी के रूप में रखना चाहें, रख देते हैं।

———

पचीसवाँ अध्याय

रबर के विलयन

रबर का विलयन एक अत्यावश्यक वस्तु है। चिपकाने और सीमेंट के रूप में व्यवहार के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है। रबर-विलयन से दस्ताने, चूचक, बच्चों के वैलून इत्यादि सामान भी बनते हैं। जहाँ ऐसी दो गाँठों को जोड़ना पड़े, जिनमें सुनम्यता, लचक और कोमलता इत्यादि गुणों की आवश्यकता हो, वहाँ रबर-विलयन का उपयोग होता है। इससे रबर के दो या दो से अधिक स्तर, रबर ट्यूब की गाँठों, रबर की चादर और रबर की सीवन इत्यादि जोड़े जाते हैं। रबर के जूतों के विभिन्न भाग, तलवे इत्यादि भी रबर के विलयन से ही जोड़े जाते हैं।

रबर के विलयन तीन प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के ऐसे विलयन हैं जो वलकनीकृत नहीं होते। रबर या पुनर्गृहीत रबर को सीधे घुलाकर ये बनाये जाते हैं। दूसरे प्रकार के विलयन ऐसे हैं, जिन्हें पीछे गरम कर वलकनीकृत करने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे रबर में अन्य आवश्यक पदार्थ भी मिले रहते हैं। इनमें त्वरक इत्यादि भी उपयुक्त होते हैं। तीसरे वे विलयन हैं—जो आप-से-आप वलकनीकृत हो जाते हैं। ऐसे विलयन साधारणतया दो भागों में बनते हैं।

पहले प्रकार के विलयन में रबर के साथ साथ कुछ गोंद या रेजिन भी रहते हैं जो विलायक में घुल सकते हैं। ऐसे विलयन प्राप्त करने के लिए रबर को चक्की में पीसना पड़ता है। साधारणतया रोजिन, क्यूमेरोनरोजिन, लाह, मस्तगी, एस्फाल्ट इत्यादि मिलाये जाते हैं। पुनर्गृहीत रबर भी इसमें मिलाया जा सकता है यदि विलयन में रंग होने से कोई हानि न हो तो।

जिंक ऑक्साइड भी विलयन में डाला जाता है। विलयन बनाने में जो विलायक अधिकता से उपयुक्त होते हैं, उनमें विलायक नफ्था, पेट्रोल, बेंजीन और कार्बन टेट्राक्लोराइड, प्रमुख हैं। टेट्राक्लोरो-एथिलीन, क्लोरोफार्म और कार्बन टेट्राक्लोराइड से अदाह्य विलयन प्राप्त होते हैं। ऐसे विलयन के दोष यही हैं कि ये विषैले होते हैं और विलयन के लिए अधिक विलायक की आवश्यकता होती है।

ऐसे विलयन के चिपकाने के गुण की परीक्षा इस प्रकार होती है—रबर के दो टुकड़ों पर विलयन लगाकर, सुखाकर लोहे के बेलन से दबाते हैं। जब ये पूर्णतया दबकर जुट जाते हैं तब देखते हैं कि कितने बल से ये दो टुकड़े अलग-अलग किये जा सकते हैं। ऐसे विलयन

के कुछ ग्राम को सुखाते हैं और जब उसका भार स्थायी हो जाता है तब उसे तौलकर मालूम करते हैं कि विलयन में विलायक की निष्पत्ति कितनी है। जो विलयन आप-से-आप वलकनीकृत होते हैं, उन्हें दो भागों में तैयार करने की आवश्यकता होती है। इसके लिए रबर का सब आवश्यक सामान डालकर उसका विलयन बनाते हैं और उसे दो भागों में विभक्त कर देते हैं। एक भाग में आवश्यक मात्रा में गन्धक डाल कर रखते हैं और दूसरे भाग में आवश्यक मात्रा में अति सुग्राही त्वरक डालते हैं। काम के समय इन दोनों विलयनों को मिलाते हैं।

मोटर-गाड़ियों के बनाने में रबर-सीमेंट की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे सीमेंट की आज बहुत अधिक मात्रा में खपत होती है। अमेरिका में ऐसे सीमेंट के प्रायः ३२५०००० गैलन प्रतिवर्ष आवश्यकता पड़ती है। ऐसे सीमेंट की कपड़ों को धातुओं से जोड़ने, धातुओं को अचालक बनाने, रबर या रबर स्पंज को धातुओं से जोड़ने, जूट को रबर से जोड़ने और धातुओं को कागज से जोड़ने में, आवश्यकता पड़ती है। सीमेंट को उष्णता, पानी और मौसिम का अवरोधक होना चाहिए, सरलता से बन सकना चाहिए और उसमें बाँधने का अच्छा गुण रहना चाहिए।

ऐसे सीमेंट कई प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के सीमेंट में (४० से ५० प्रतिशत ठोस पदार्थ) पुनर्गृहीत रबर, रेजिन, शुष्ककर्त्ता और विलायक रहते हैं। दूसरे प्रकार के सीमेंट में गोंद, रबर, रेजिन और प्रायः १५ प्रतिशत ठोस पदार्थ रहते हैं। तीसरे प्रकार के विलयन में मिश्रित आक्षीर रहते हैं। चौथे प्रकार के विलयन में पुनर्गृहीत रबर, सामान्य रबर, रेजिन और ऐस्फाल्ट जल में बिखरे या प्रक्षिप्त रहते हैं। पाँचवें प्रकार के सीमेंट में केवल पुनर्गृहीत रबर एस्फाल्ट और विलायक रहते हैं।

ऐसे सीमेंट में आसक्ति का गुण संसक्ति से अधिक रहना चाहिए। कच्चे रबर में आसक्ति का गुण उत्तम कोटि का होता है। ऐसे सीमेंट से किसी भी पदार्थ को धातु से बाँध सकते हैं। इन्हें बहुत गाढ़ा भी बना सकते हैं और उनका नियंत्रण भी सरलता से कर सकते हैं। इसमें रेज़िन, एस्फाल्ट इत्यादि अनेक पूरक भी जोड़कर भिन्न-भिन्न गुणवाला बना सकते हैं। पुनर्गृहीत रबर में दोष यह है कि यह मैला देख पड़ता है। पारदर्शक नहीं होता और गरम होने पर कोमल हो जाता है। इस प्रकार यह ताप-सुनम्य होता है।

निम्नलिखित प्रकार का विलयन अनेक कामों के लिए उपयुक्त हो सकता है—

टायर का पुनर्गृहीत रबर	१०० भाग
काठ रेज़िन	७५ ,,
चूनावाला रेज़िन	२५ ,,
विलायक	३०० ,,

उपर्युक्त तीनों पदार्थों को बेलन चक्की में पीसकर मिलाकर उन्हें विलायक में डालते हैं। पेट्रोलियम स्पिरिट, विलायक नफ्था, या ट्राइक्लोरो-एथिलिन या कार्बन टेट्राक्लोराइड को विलायक के रूप में उपयुक्त कर सकते हैं।

रबर के विलयन बनाने में साधारणतया निम्नांकित विलायकों को उपयोग में ला सकते हैं—

	क्वथनांक ०°श०	विशिष्ट घनत्व	आपेक्षिक उद्वाष्पनगति
कार्बन डाइसल्फाइड	४६	१·२६३	१
ऐसिटोन	५६	०·७९२	१
क्लोरोफार्म	६१	१·४८	२
कार्बन टेट्राक्लोराइड	७७	१·५९५	२·२५
बेंज़ीन	७९	०·८७९	२·५
९० प्रतिशत बेंज़ोल	—	०·८८८	३·२५
टोल्विन	१११	०·८६६	७·५
विलायक नफ्था	१२५–१८०	०·८६५	२७
पेट्रोल	—	—	३१
तारपीन	१५५–१८०	०·८७३	५०

गच के लिए पोर्टलैंड सीमेंट और रबर को मिलाकर एक विशेष प्रकार का सीमेंट बनाते हैं। इसे बेंज़ोल में प्रक्षिप्त करते हैं। ऐसे रबर-सीमेंट से कंक्रीट या अन्य तलों को रबर के साथ सरलता से जोड़ सकते हैं।

रबर विलयन से दस्ताना, चूचक, बैलून, फाउण्टेन कलम में स्याही रखने की थैलियाँ इत्यादि भी बनाते हैं। इसके लिए प्रारूप की आवश्यकता होती है। ऐसे प्रारूप काँच, काठ, पोरसीलेन, एल्यूमिनियम इत्यादि के बनते हैं। इन प्रारूपों को विलायन में डुबा देते हैं। कुछ समय के बाद उन्हें धीरे-धीरे विलयन से निकाल लेते हैं। जब प्रारूप कुछ सूख जाता है, तब उसे फिर विलयन में डुबाते हैं। यह क्रिया तबतक करते रहते हैं जबतक प्रारूप पर पर्याप्त मोटाई के रबर का स्तर न बन जाय। इसे तब शीत अभिसाधन से वलकनीकृत करते हैं। यदि विलयन में वलकनीकरण पदार्थ पड़े हुए हैं तो केवल उष्णवायु में रखने से उनका वलकनीकरण हो जाता है। सूख जाने पर सामान को प्रारूप से निकाल लेते हैं। फिर उस पर फ्रेंच चॉक अथवा टालक छिड़ककर इकट्ठा करते हैं।

———

छब्बीसवाँ अध्याय

बिजली के तार

अनेक पदार्थ विद्युत् के अचालक होते हैं। ऐसे अचालकों में रबर का स्थान महत्त्व का है। इस कारण विद्युत् के तार रबर से मढ़े होते हैं। इसके लिए रबर ऐसा होना चाहिए कि वह वायु और जल से शीघ्र आक्रान्त न हो। इसके लिए रबर का उत्तम कोटि का और शुद्ध होना बहुत आवश्यक है। रबर के जिन गुणों से तारों के वैद्युत् गुणों में परिवर्त्तन हो सकता है, वे गुण निम्नलिखित हैं—

१. पृथग्न्यास बल
२. अधिविद्युत् स्थायित्व
३. सामर्थ्य गुणक
४. जीर्णन
५. जल-शोषण
६. ओज़ोन प्रतिरोधकता

बिजली के तार ताँबे के बनते हैं। ताँबा रबर का शत्रु है। अतः रबर को ताँबे से दूर रखना बहुत आवश्यक होता है। इसके लिए ताँबे पर टिन से कलई कर देते हैं। यह टिन भी उत्तम कोटि का होना चाहिए ताकि उसका आवरण तार पर एक-सा चढ़ सके।

तार पर रबर के साधारणतया तीन स्तर होते हैं। तार पर सबसे पहला एक पतला स्तर उच्च कोटि के शुद्ध रबर का होता है। उसके बाद सफेद रबर का एक दूसरा स्तर होता है और तीसरा स्तर काले या रंगीन रबर का होता है। पहला स्तर शुद्ध रबर का इसलिए दिया जाता है कि गन्धक ताँबे के संसर्ग में न आवे; क्योंकि ताँबा गन्धक के संसर्ग में आने पर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। गन्धक वस्तुतः ताँबे का शत्रु है। यही कारण है कि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में गन्धक को शुल्वारि अर्थात् ताँबे का शत्रु कहते थे। इस शुल्वारि से ही अंग्रेजी सल्फर शब्द निकला है। रबर का मिश्रण सावधानी से बनाया जाता है। उसे चालकर सुखा लेते हैं। इसकी अशुद्धियाँ, विशेषतः जल में घुलनेवाला अंश, सावधानी से निकाल लिया जाता है। रबर में जिंक ऑक्साइड, फ्रेंचचॉक, लिथोपोन और चीनी मिट्टी सदृश पूरक डालते हैं। पूरक के लिए कैलसियम कार्बोनेट का उपयोग नहीं करते। मोम सदृश पदार्थ भी डाले जा सकते हैं। विभिन्न त्वरक भी डाले जाते हैं। प्रति-ऑक्सीकारक का रहना बहुत आवश्यक होता है।

गन्धक की मात्रा न्यूनतम रहनी चाहिए ताकि रबर में मुक्त गन्धक न रहे और वह तांबे को आक्रान्त नहीं करे। यदि तार का उपयोग उच्च ताप पर होता हो तो गन्धक का बिलकुल न रहना ही अच्छा है; क्योंकि अधिक काल तक उच्च ताप में गन्धक की उपस्थिति से अधि-विद्युत् स्थायित्व कम हो जाता है। जहाँ गन्धक का उपयोग न होता हो, वहाँ वलकनीकरण के लिए गन्धकवाले कार्बनिक यौगिकों का उपयोग हो सकता है।

आजकल तीन रीतियों से रबर का पृथग्न्यासन होता है—अनुदैर्घ्य रीति, छादन रीति और बहाव रीति। अनुदैर्घ्य रीति में अल्प विस्तार के अथवा एक तार ही पर पृथग्न्या-सन होता है। तार पर १० से ३० मिलिमीटर की मोटाई के रबर चढ़ाये जाते हैं। जिस चादर पर यह चढ़ाया जाता है, वह एक-सी मोटाई की और चिकनी होनी चाहिए। इसके तल पर काँटे नहीं रहना चाहिए।

कपड़े के गोलक पर रबर बैठाया जाता है और इसपर अल्प मात्रा में टालक या जिंक स्टियरेट छींटकर कुछ दिनों तक पूर्णतया स्थायी होने के लिए छोड़ दिया जाता है। तब रबर काटने की मशीन पर आवश्यक चौड़ाई में काटा जाता है और तब काठ के धुरे पर पतले गोलक में लपेटा जाता है। गोलक का व्यास एक फुट रहना चाहिए। टुकड़े की चौड़ाई, वस्तुतः कितने तार पर रबर चढ़ाया जायगा, इसपर निर्भर करती है। अब इन गोलकों को अनुदैर्घ्य मशीन में तारों पर चढ़ाते हैं। ऐसी मशीन में दो बेलन होते हैं। वे एक के ऊपर दूसरे स्थित होते हैं। इन दोनों में प्रसीताएँ होती हैं और एक की प्रसीता दूसरी की प्रसीता से मिली रहती है। निचले बेलन में तार साधारणतया बारह की संख्या में ठीक प्रकार से प्रसीता में घूमते रहते हैं और वहाँ प्रसीता में ऊपर और नीचे रबर के मिश्रण रहते हैं और यह तब प्रसीतावाले बेलन में घूमता है। प्रसीता के पार्श्व में जो निकले किनारे रहते हैं, वे रबर को काटते हैं और दबाव से दोनों छोर जुट जाते हैं और प्रसीता रबर के आवरण को गोलाकार बना देती है।

प्रत्येक मशीन में तीन कुलक बेलन रहते हैं। ये एक दूसरे से तीन फीट की दूरी पर रहते हैं। पहले कुलक में शुद्ध रबर रहता है, दूसरे कुलक में सफेद रबर रहता है और तीसरे कुलक में काला या रंगीन रबर रहता है। प्रसीता का व्यास दूसरे में पहले से अधिक और तीसरे कुलक में दूसरे से अधिक रहता है। वस्तुतः प्रसीता का व्यास इस बात पर निर्भर करता है कि रबर के आवरण की मोटाई कितनी हो।

मशीन में आने के पूर्व तार बलिता पर चढ़े होते हैं। बलिता की संख्या विस्तार के अनु-सार १२ से ३६ रहती हैं। बलिता का नियंत्रण एक तनाव उपपट्ट से होता है। बलिता पर चढ़े तार-अकेले या अनेक मिले रहते हैं। ये क्रमशः पहले, दूसरे और तीसरे बेलन के कुलकों के द्वारा आते हुए रबर के तीन स्तरों से आच्छादित हो गोल बन जाते हैं। इन्हें तब द्रोणी में रखे टालक में ले जाते हैं और तब फिर ड्रम या बलिता पर इकट्ठा करते हैं। इसे अब फीते से मढ़ देते हैं तब उसका वलकनीकरण करते हैं। फीते से तार के पृथग्न्यासन का संरक्षण होता है। वलकनीकरण से तीनों स्तर जुट जाते हैं।

छादन रीति में रबर की पट्टी को तार पर लपेटते हैं। यह रीति उन तारों के लिए उप-युक्त होती है जो बहुत लम्बे होते और इस कारण अनुदैर्घ्य रीति से उनपर रबर नहीं चढ़ाया

जा सकता है। एक ही प्रक्रिया में अनेक लपेट दिये जा सकते हैं। अन्त में इस तरफ भी फीता चढ़ाकर तव उसका वलकनीकरण करते हैं।

बहाव रीति—वहाव रीति का उपयोग आज अधिक हो रहा है। अमेरिका में इसी रीति का उपयोग होता है। इससे केवल तार का पृथग्न्यासन ही नहीं होता, वरन् उसका आच्छादन भी हो जाता है। यह मीशन से होता है। इस मशीन से लाभ यह है कि आच्छादन एक-सा होता और उसमें गाँठे नहीं पड़तीं। इसमें कई तारों के बीच का स्थान भी रवर से भर जाता है। वहाव मशीन से केवल समुद्री तार ही नहीं वनते, वरन् इससे ट्यूब, वायु-थैले, टायर, चार, होज-नली, गैस-नलियाँ इत्यादि भी वनते हैं।

चित्र ५६—वहाकर रवर के सामान वनाने की मशीन

इस मशीन के निम्नांकित भाग इस तरह होते हैं—

१. नाल या वैरेल

२. पेंच या घुमौआ काटने का खराद

३. ठप्पा

४. चालन

मशीन का नाल या वैरेल कठोर इस्पात का वना होता है। इसमें कभी-कभी एक पतला विशेष कठोर अस्तर भी रखा होता है ताकि प्ररम्भ में कोई खुरेच और घिसाव न हो।

सत्ताईसवाँ अध्याय

रबर की नलियाँ

रबर की अनेक नलियाँ बनती हैं। कुछ नलियाँ तरलों को ले जाती और ले आती हैं। कुछ नलियाँ गैसों को बहा ले जाती और ले आती हैं। कुछ नलियाँ सामान्य दबाव पर कार्य करती हैं। कुछ नलियाँ ऊँचे दबाव पर काम करती हैं। कुछ नलियों में केवल रबर रहता है। कुछ नलियों में रबर के साथ-साथ सूत भी रहता है और कुछ नलियों में रबर और सूत के साथ-साथ धातुएँ भी रहती हैं।

इन नलियों में कुछ को 'होज़' कहते हैं। होज़ कई किस्म के होते हैं। कुछ होज़ बाग-बगीचों के पटाने के लिए, कुछ होज़ पेट्रोल के बहाने के लिए, कुछ होज़ वायु खींचने के लिए कुछ होज़ दबाव के लिए, कुछ होज़ वायु-ब्रेक के लिए और कुछ होज़ भाप के लिए उपयुक्त होते हैं। इन होज़ों के प्रायः दो सामान्य वर्ग होते हैं—

१. वे होज़ जिनमें सूत रहता है।
२. वे होज़ जिनमें धातुएँ रहती हैं।

पहले प्रकार के होज़ सामान्य दबाव में और दूसरे प्रकार के होज़ अधिक दबाव में उपयुक्त होते हैं।

रबर की कुछ ऐसी नलियाँ भी बनती हैं जो प्रयोग-शालाओं में पानी और गैसों के लिए उपयुक्त होती हैं। इनमें कुछ नलियाँ तो केवल रबर की बनती हैं। कुछ में रबर के साथ सूत की डोरियाँ भी रहती हैं और कुछ रुई के वस्त्र पर रबर को बैठाकर नलियाँ बनाई जाती हैं। केवल रबर की नलियाँ कोमल रबर की बनती हैं और लचीली होती हैं और दबाव से चिपक जाती हैं। सूत पर रबर की बैठाई नलियाँ दबाव से चिपकती नहीं और उनपर कठोर कार्य होने के कारण वे दबाव को सहन कर सकती हैं। ऐसी नलियाँ क्षीण दबाव अथवा शून्य दबाव आसवन के लिए अधिक उपयोगी होती हैं।

नलियों के लिए निम्नांकित पदार्थों का मिश्रण उपयुक्त हो सकता है—

रबर	१००
पेट्रोलेटम	५
प्रति-आक्सीकारक	१
जिंक ऑक्साइड	१५
सफ़ेद मिट्टी	२५०
डाइबेंज़ थायज़िल डाइसलफ़ाइड	१·२५
गन्धक	३

पचास पाउण्ड प्रतिवर्ग इंच दवाव पर भाप में अभिसाधित हो जाता है।

जल होज़ के लिए निम्नलिखित मिश्रण उपयुक्त हो सकता है—

रबर	१००
पुनर्गृहीत	५०
पेट्रोलेटम	१०
प्रति-ऑक्सीकारक	१
जिंक ऑकसाइड	५
पी. ३३	२०
सफ़ेद मिट्टी	१५०
एम. वी. टी. एस.	१·२५
गन्धक	२·६५

भाप में ४५ पाउण्ड प्रतिवर्ग इंच दवाव पर ४० मिनटों में अभिसाधित हो जाता है।

भाप होज़

रबर	६०
पुनर्गृहीत	६०
स्टियरिक अम्ल	२
पाइन अलकतरा	२
जिंक ऑक्साइड	५
प्रति-ऑक्सीकारक	१·५
सफ़द मिट्टी	५०
गैसटेक्स	८०
टेट्रा-मेथिल-थायूरम डाइसल्फ़ाइड	४

चालीस पाउण्ड प्रतिवर्ग इंच दवाव पर १५ मिनटों में अभिसाधित हो जाता है।

———

अट्ठाईसवाँ अध्याय

रबर की गेंद

रबर की गेंद दो प्रकार की होती हैं। एक ठोस गेंद होती है और दूसरी खोखली गेंद जिसमें वायु या गैस भरी रहती है। इन गेंदों के बनाने में रबर का मिश्रण उच्च कोटि का होना चाहिए। मिश्रण ऐसा होना चाहिए कि उसके रबर एक-से गुण के हों और जिनसे गैसें बाहर न निकल सकें।

साधारणतया गेंदों में अमोनिया गैस भरी जाती है। रबर ऐसा होना चाहिए कि अमोनिया गैस छेदों से निकल न सके। अमोनिया से रबर को कोई क्षति नहीं पहुँचती। रबर में केवल पिच या पिच और ओज़ोकेराइट दोनों मिलाते हैं। पिच से रबर में रंग अवश्य आ जाता है; पर यदि गेंद को ऊपर से रँगना है तो उस रंग से कोई हानि नहीं होती—

गेंद के लिए रबर के निम्नलिखित मिश्रण उपयुक्त हो सकते हैं—

मिश्रण—१

रबर	५० भाग
गन्धक	५·५ ”
जिंक ऑक्साइड	५·५ ”
कैलसियम कार्बोनेट	७२ ”
पिच	२ ”

मिश्रण—२

रबर	५० भाग
पुनर्गृहीत रबर	४० ”
गन्धक	५·५ ”
ओज़ोकेराइट	२ ”
पिच	६ ”
जिंक ऑक्साइड	५५ ”
कैलसियम कार्बोनेट	७२ ”

रबर के इन मिश्रणों को भली प्रकार से मिला लेते हैं ताकि वे कोमल और समावयव पिंड बन जायँ। तब इसको प्रारम्भ के गोलकों में डालकर चादर बनाते हैं। भिन्न-भिन्न गेंदों के लिए चादर भिन्न-भिन्न मोटाई की होती है। यदि गेंदें अधिक व्यास की हों तो चादर मोटी

होनी चाहिए। इन चादरों को तव उपयुक्त आकार के टुकड़ों में प्रारूप की सहायता से काटते हैं। ये टुकड़े ऐसे आकार और विस्तार के होते हैं कि जव उनके छोरों को जोड़ते हैं तव वे अवलकनीकृत गेंद वन जाते हैं।

इनके छोरों को अव नैफ्था में घुले हुए रवर के विलयन से भिगो लेते हैं और तव छोरों को जोर से दवाते हैं।

इन छोरों को पूर्णतया वन्द करने के पहले उसमें कुछ ऐसा पदार्थ डाल देते हैं जो वलकनीकरण के समय गैस वनकर गेंद को फुला दे। इसके लिए अनेक पदार्थों का उपयोग हो सकता है। यदि उसमें थोड़ा अमोनियम क्लोराइड और सोडियम नाइट्राइट डाल दें तो उसके प्रतिक्रिया-स्वरूप नाइट्रोजन वन जाता है और वह गेंद को फुला देता है। यदि उसमें थोड़ा अमोनियम कार्वोनेट डालें तो उसके विघटन से अमोनिया और कार्वन डायक्साइड वनकर गेंद को फुला देता है। गेंद के विस्तार और वल के अनुसार ५ से ४० ग्राम तक अमोनियम कार्वोनेट डालकर उसको वन्द कर देते हैं। इसे गरम करने से गैसें वनकर रिक्त स्थान को भर देती हैं और गेंद को फुला देती हैं।

अव रवर के इस पदार्थ को उपयुक्त आकार और विस्तार के लोहे के साँचे में रखकर साँचे को फ्रेम में कसकर वलकनीकरण पात्र में रखते हैं।

यदि गेंद को गोला वनाना है तो ढालवें लोहे के साँचे के दो भाग होते हैं। प्रत्येक भाग में गेंद के आकार के आधे की अर्द्ध गोलाकार प्रसीता रहती है। दोनों गोलाकार की प्रसीताएँ एक आकार की होती हैं ताकि जव वे एक दूसरे पर रख दी जाय तो दोनों मिलकर पूरे गेंद के विस्तार की हो जायँ। जव वलकनीकरण का ताप उचित सीमा पर पहुँच जाता है तव गेंद फूलने लगती है और गैस रवर को साँचे की दीवार से दवाती है। वलकनीकरण समाप्त हो जाने पर साँचे को शीघ्र ही ठंढा कर लेते हैं। ठंढा करने से गेंदों की गैस कुछ संघनित हो जाती है और इस कारण साँचों से गेंद निकालने में कोई कठिनाई नहीं होती। अव गेंद में पर्याप्त वायु डालकर उसका दवाव वढ़ाते हैं। इसके लिए रवर के कोमल 'निग' में एक खोखली सूई से छेदकर वायुमण्डल के एक-से दो दशांश दवाव में वायु डालकर फिर सूई को निकाल कर छेद को वन्द कर देते हैं। रवर का एक पतला टुकड़ा तारपीन में भिगोकर 'निग' में लगाकर छेद को वन्द कर देते हैं।

गेंद के साँचे को लोहे की छड़ में लगाकर फ्रेम से जकड़ देते हैं। फ्रेम काफी भारी और मजवूत रहना चाहिए; क्योंकि जव वह गरम किया जाता है, उस पर पर्याप्त दवाव पड़ता है। यदि साँचा अपने स्थान से हट जाय तो सारे फ्रेम का काम चौपट हो जाता है। साँचे से निकलने के वाद गेंद विलकुल गोल और चिकनी होती है। उसपर केवल जोड़ का कुछ चिह्न रह जाता है। इस जोड़ को पत्थर से घिस कर दूर कर लेते हैं। अव इसे पेंट कर वाजार में भेजते हैं।

टेनिस की गेंद भी इसी प्रकार वनती है। टेनिस की गेंद में वड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है; क्योंकि उसका व्यास एक निश्चित माप, ६४·३ मिलिमीटर का और उसका भार एक निश्चित भार ५४·४ ग्राम का होना चाहिए।

आजकल साँचे के स्थान में प्रेस का व्यवहार अधिकता से हो रहा है। ऐसे प्रेसों में ढाई इंच व्यास तक की गेंदें २०० की संख्या में एक बार वलकनीकृत हो सकती हैं। इन प्रेसों से लाभ यह है कि इनके चलाने में सरलता होती है और ठण्डे पानी से इनको शीघ्रता से ठण्ढा कर सकते हैं। ठण्ढा होने के समय ही इन्हें प्रेस से खोलकर निकालते हैं। फुलानेवाली गैस के निकल जाने पर संपीड़ित वायु से भरकर उन्हें तारपीन से भिंगाकर रवर का 'निग' डालकर छेद को वन्द कर देते हैं।

उन्तीसवाँ अध्याय

रबर का परीक्षण

रबर की रासायनिक प्रकृति का वास्तविक ज्ञान हमें नहीं है। इस कारण केवल रासायनिक परीक्षण से रबर के संबंध में हमें कुछ विशेष पता नहीं लगता। भौतिक परीक्षण से रबर की प्रकृति का कहीं अधिक ज्ञान हमें प्राप्त होता है। अतः रबर का भौतिक परीक्षण अधिक महत्त्व का है। इस परीक्षण के लिए अनेक यन्त्र बने हैं, जिनकी सहायता से हम रबर के संबंध में अनेक ज्ञातव्य बातों का पता लगा सकते हैं।

भौतिक परीक्षण के लिए हमें एक प्रामाणिक रबर के स्तार की आवश्यकता होती है जिसकी तुलना से हम अन्य रबरों के गुणों का पता लगाते हैं। ऐसे प्रामाणिक रबर का निर्माण महत्त्व का है। ऐसा प्रामाणिक रबर निम्नलिखित नुस्खे से हम तैयार कर सकते हैं:—

शुद्ध रबर	१०० भाग
स्टियरिक अम्ल	०·५ ,,
जिंक आक्साइड	६·० ,,
गन्धक	३·५ ,,
मरकैप्टो बेंजथायोजोल	०·५ ,,

इस मिश्रण को अम्भस प्रेस में रखकर १२७° श० पर अभिसाधित करते हैं। यह स्तार प्रायः ३ मिलीमीटर मोटा होना चाहिए। इसको कूप साँचे में रखते हैं। साँचे को पहले पूर्णतया साफ कर लेते हैं ताकि उसमें कोई चिकनाहट पैदा करनेवाली वस्तु चिपकी न रहे। कूप के विस्तार का थोड़ा छोटा टुकड़ा काट कर साँचे में रखते हैं।

वलकनीकरण का समय प्रेस में महत्तम दबाव पहुँचने के समय से दबाव हटा लेने के समय तक का होता है। वलकनीकरण के पूर्ण होते ही साँचे को प्रेस से हटाकर ५ से १० मिनटों के लिए ठण्ढे पानी में रखते हैं। अब स्तार को पोंछकर सुखा लेते हैं, और कम-से-कम २४ घण्टे रखने के बाद उसका परीक्षण करते हैं।

वितान-क्षमता

टूटने की परिस्थिति में रबर की वितान क्षमता और टूटने की परिस्थिति में ही रबर का दैर्घ्य निकाला जाता है। वितान-क्षमता निकालने की प्रधानतया दो रीतियाँ उपयुक्त होती हैं। एक रीति में शोपर की मशीन उपयुक्त होती है और दूसरी में एवेरी या स्कौट की मशीन।

शोपर की मशीन में घूमती हुई दो घिरनियों पर रबर का एक वलय बैठाया रहता है। ये घिरनियाँ एक दूसरे से दूर खींच कर हटाई जाती हैं। एक दिशा में उसपर बल का उपयोग होता है और रबर का दूसरा छोर एक भारवाली भुजा से जोड़ा रहता है। यह भुजा एक वृत्ताकार स्केल पर लगी रहती है। ये दोनों घिरनियाँ प्रति मिनट में २० इंच हटती जाती हैं। जब वलय फट जाता है तब भारवाली भुजा 'पवल' पर ही रखी रह जाती है। इससे टूटने का प्रत्याबल मालूम होता है और दोनों घिरनियों की दूरी से दैर्घ्य का ज्ञान होता है।
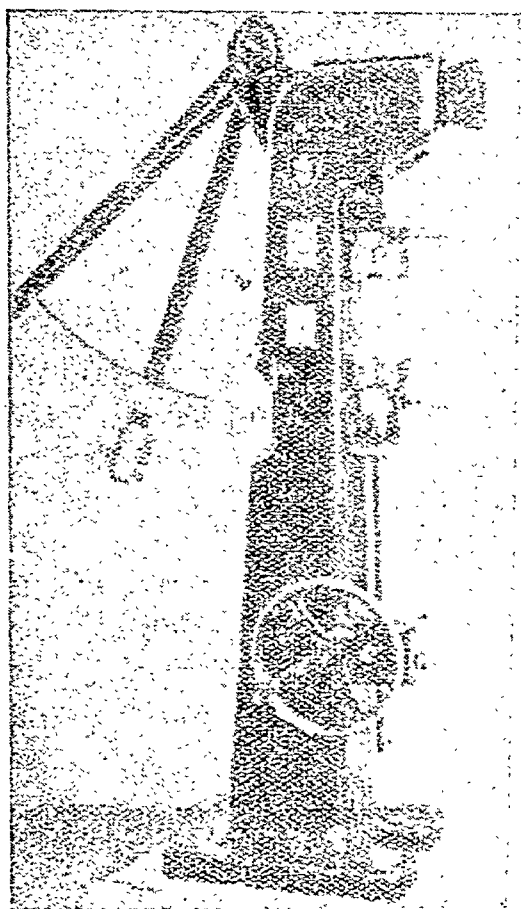
चित्र ५७—एवेरी वितान-परीक्षण मशीन

इसके लिए रबर का वलय एक मोटाई का होना चाहिए। यदि वलय एक मोटाई का नहीं है तो कई स्थान पर उसकी मोटाई नाप कर उसकी औसत मोटाई निकाली जाती है।

इस अंक से अब रबर की वितान - क्षमता प्रतिवर्ग इंच पर या प्रतिवर्ग सेंटीमीटर पर निकालते हैं। प्रतिवर्ग इंच पर वितान-क्षमता $= \frac{\text{तनाव (पाउण्ड में)}}{\text{चौड़ाई (इंच)} \times \text{मोटाई (इंच)}}$ पाउण्ड

यदि प्रतिवर्ग सेंटीमीटर किलोग्राम में परिणाम निकालना होता है तो ऊपर के अंक को ०.०७०३ से गुणा करने से वह प्राप्त होता है।

रबर की लम्बाई में प्रतिशत वृद्धि को उसका दैर्घ्य कहते हैं

स्कौट मशीन में डम्बल के आकार के टुकड़े की वितान-क्षमता निकालते हैं।

मापांक – टूटने के समय की वितान-क्षमता केवल सैद्धान्तिक महत्त्व की है। हमें रबर की प्रकृति के ज्ञान के लिए बीच की वितान-क्षमता का ज्ञान अधिक महत्त्व का है। रबर के एक टुकड़े को किसी निश्चित दैर्घ्य तक खींचने से जो बल लगता है, उसे 'मापांक' कहते हैं। मापांक से रबर की दृढता का बोध होता है। जो रबर कोमल होता है, उसका मापांक कम होता है और जो रबर दृढ होता है, उसका मापांक अधिक होता है।

स्थायी सम—स्थायी सम से पता लगता है कि रबर को किसी निश्चित सीमा तक खींच कर छोड़ देने पर उसमें कितना विकार रह जाता है। इस परीक्षण के लिए रबर को किसी निश्चित सीमा तक खींचकर थोड़े समय के लिए वैसा ही रखकर फिर खिंचाव को हटा लेते हैं। कुछ समय के बाद फिर उसकी लम्बाई नापते हैं। खिंचाव से लम्बाई की जो वृद्धि होती है, उसकी प्रतिशतता निकालते हैं। यही प्रतिशतता रबर का स्थायी सम है। अवलकनीकृत रबर में स्थायी सम महत्तम होता है और वलकनीकरण से क्रमशः कम होता जाता है।

कठोरता—रबर की विकृति की प्रतिरोधकता को उसकी कठोरता कहते हैं। रबर में कुछ सीमा तक कठोरता की आवश्यकता होती है। रबर की कठोरता नापने के अनेक यंत्र बने हैं। इनमें शोरे महाशय का कठिनता-मापक यंत्र अधिकता से उपयुक्त होता है। यह एक छोटा यंत्र है जिसमें एक भुथरा नोक लगा रहता है। इस भुथरा नोक को रबर पर हाथ से दबाते हैं। उस नोक पर रबर तल का जो प्रतिरोध होता है, वही कठोरता का द्योतक है।

इस यंत्र का प्रमुख दोष यह है कि रबर के कोमल होने से परिणाम की यथार्थता कम हो जाती है।

एक कठोरता-मापक को ब्रिटिश रबर निर्माणकर्त्ताओं के अनुसन्धान एसोशियेशन ने बनाया है जिससे अधिक यथार्थ परिणाम प्राप्त होता है। इससे ब्रिटिश प्रमाप कठोरता का अंक प्राप्त होता है।

प्रलचक—रबर के महत्त्व का एक गुण उसका प्रलचक है। रबर में प्रलचक होता है। रबर में प्रलचक अधिक-से-अधिक रहना चाहिए। अनेक पदार्थों के लिए महत्तम प्रलचक की आवश्यकता पड़ती है, पर कुछ थोड़े-से ऐसे भी रबर के पदार्थ हैं जिनमें प्रलचक की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे प्रलचक न रहनेवाले पदार्थों में जूते के तलवे, एड़ियाँ और गच हैं। इनमें प्रलचक होने से पैरों में थकावट मालूम होती है। जिन पदार्थों में प्रलचक की आवश्तकता नहीं होती, उनमें प्रलचक के मारण या निराकरण की आवश्यकता होती है। प्रलचक का माप इस कारण महत्त्व का है।

आघात-प्रलचक—प्रलचक का माप उस शक्ति से होता है जो रबर किसी पदार्थ को प्रदान करता है। इस्पात की गेंद एक निश्चित ऊँचाई से रबर पर गिराई जाती है। रबर से टकराकर वह ऊपर उठती है। वह जितना ऊँचा उठती है, वह नापा जाता है। जितनी ऊँचाई से गिरकर वह फिर ऊपर उठती है, उसकी प्रतिशतता निकाली जाती है। यही रबर का आघात-प्रलचक है।

एक दूसरी रीति से भी आघात-प्रलचक निकाला जाता है। यहाँ एक लोलक रबर पर आघात कर लौटता है। कहाँ तक लौटता है, उससे प्रतिशतता निकाल कर प्रलचक को नापते हैं। यदि रबर उचित ढंग से अभिसाधित हुआ है तो उसका आघात-प्रलचक महत्तम होता है। यदि रबर का अभिसाधन आवश्यकता से कम या अधिक हुआ है तो उसका आघात-प्रलचक कम होता है। यदि रबर में कार्बन-काल मिला हुआ है, तो आघात-प्रलचक बहुत कम होता है। अन्य पदार्थों के मिश्रण से भी आघात-प्रलचक कम हो जाता है।

दारण-अवरोध—रबर के अनेक सामानों में दारण-अवरोध का होना आवश्यक है। ऐसे सामानों में टायर, ट्यूब, तार के आवरण, नल, होज इत्यादि हैं।

दारण-अवरोध के लिए एक छोटा-सा सरल उपकरण उपयुक्त होता है जो चन्द्राकार होता है। इसके लिए रबर के स्तार का एक नमूना लेना पड़ता है। यह स्तार प्रेस में अभिसाधित हुआ रहता है। इस स्तार की मोटाई ०.०७ से ०.११ इंच के बीच की होती है। इसके लिए वृक्कि आकार का एक टुकड़ा काट कर लेते हैं। इस टुकड़े की वितानक्षमता नापने को मशीन में डालकर प्रतिवर्ग इंच पर कितना बोझ पड़ता है, उसे निकालते हैं। इसके लिए टुकड़ों को मशीन के हनुओं में जोड़ देते हैं। निचले हनु में बोझ रखते हैं। मशीन के महत्तम बोझ और उसकी औसत मोटाई से दारण-अवरोध निकालते हैं।

यदि रबर के किसी नमूने को फाड़ डालने के लिए ४० पाउण्ड बोझ की आवश्यकता पड़ती है तो उसका दारण-अवरोध $= \frac{\text{४० पाउण्ड}}{\text{रबर की मोटाई इंच में}} = \frac{\text{४०}}{\text{०.०८५}} =$ ४७० पाउण्ड प्रति इंच

अपघर्षण-प्रतिरोधकता—अपघर्षण-प्रतिरोधकता का निर्धारण महत्त्व का है; क्योंकि इस गुण पर ही रबर के सामान का जीवन निर्भर करता है।

यदि रबर की अपघर्षण-प्रतिरोधकता ऊँची है तो वह रबर अधिक दिनों तक काम देगा और यदि कम है तो जल्दी ही नष्ट हो जायगा। इस गुण के निर्धारण के लिए अनेक यंत्र बने हैं और भिन्न-भिन्न सामानों की अपघर्षण-प्रतिरोधकता को नापने के लिए उपयुक्त होते हैं। ऐसे यंत्रों के निम्नलिखित तीन प्रकार के अपघर्षक अधिक महत्त्व के हैं।

१. डू पों अपघर्षक
२. नेशनल ब्युरो अपघर्षक
३. यू. एस. रबर कम्पनी अपघर्षक

डू. पों अपघर्षक में एक अपघर्षक तावा रहता है जो एक खोखली ईषा पर बैठाया होता है। यह घड़ी की प्रतिकूल दिशा में प्रति मिनट ३७ परिक्रमण की गति से घूमता है। रबर के नमूने को एक उद्याम पर रखते हैं। यह उद्याम एक अक्ष में जुड़ा रहता है। ईपा के छोर पर ३.६२ किलोग्राम का भार एक तार द्वारा लटका रहता है। यह घिरनी द्वारा अपघर्ष से रबर को सटाये रहता है। ईपा के दूसरे छोर पर भार रखा रहता है।

चित्र ५८—डूपो अपघर्षक मशीन
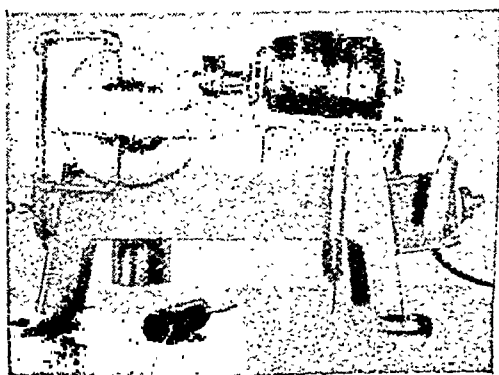
नेशनल ब्युरो अपघर्षक में रबर से आच्छादित धातु का एक ड्रम रहता है। ड्रम का व्यास ६ इंच रहता है। यह अपघर्षक कागज या वस्त्र से ढँका रहता है। विद्युत मोटर द्वारा ड्रम प्रति मिनट ४० परिक्रमण की गति से घूमता है। रबर के नमूने को, एक इंच लम्बा, एक इंच चौड़ा और चौथाई इंच मोटा, एक छोर में रख देते हैं और दूसरे छोर पर बाट रखते हैं।

यु. एस. रबर अपघर्षक में ३ इंच व्यास की एक अपघर्षक चक्की रहती है। उसमें रबर का टुकड़ा रखकर उसका परीक्षण करते हैं।

गणना—प्रत्येक अपघर्षक में रबर के टुकड़े के भार को तौलते हैं। भार बहुत यथार्थ होना चाहिए। एक मिलीग्राम से अधिक का अन्तर नहीं रहना चाहिए।

रबर का विशिष्ट भार भी अधिक यथार्थता से नपा हुआ रहना चाहिए। उसमें भी दशमलव के दूसरे स्थान में एक से अधिक का अन्तर नहीं रहना चाहिए।

प्रामाणिक रबर की आयतन-हानि को रबर के नमूने की आयतन-हानि से भाग देने से जो अंक प्राप्त होता है, वह रबर की अपघर्षण प्रतिरोधकता है।

परिणाम प्रतिशतता में व्यक्त किया जाता है।

मोड़—रबर के मोड़ने से उसमें छोटी-छोटी दरारें फट जाती हैं। बार-बार मोड़ने से ये दरारें जल्दी-जल्दी बढ़ती हैं। बार-बार के उपयोग से भी रबर में दरारें पड़ती हैं। इस कारण मोड़ की प्रतिरोधकता का ज्ञान महत्त्व का है। इससे पता लगता है कि रबर में दरारें जल्द बन सकती हैं अथवा नहीं।

मोड़ की प्रतिरोधकता नापने के लिए अनेक यंत्र बने हैं। उनमें डुपों मशीन सबसे अच्छी समझी जाती है। इसी मशीन से साधारणतया मोड़ की प्रतिरोधकता नापी जाती है।

संपीड़न—मशीनों को बैठाने में रबर के गद्दे या अन्य सामान उपयुक्त होते हैं। ऐसे रबर के लिए आयास पर स्थायी विकृति का अवरोध महत्त्व का है। इस कारण रबर का संपीड़न नापने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए अनेक मशीनें बनी हैं। ऐसी मशीनों में एक संपीड़न मशीन का चित्र यहाँ दिया हुआ है।

इस मशीन में दो समानान्तर पट्ट होते हैं। ये पट्ट एक फ्रेम में जकड़े होते हैं। यह फ्रेम मजबूत होता है; पर इतना भारी नहीं होता कि एक स्थान से दूसरे स्थान को न ले जाया जा सके।

जिस रबर का परीक्षण करना होता है, उसका एक बेलनाकार मंडलक, २½ इंच मोटाई का, काटकर समानान्तर पट्टों के बीच में रखते हैं। उसपर बोझ डाला जाता है। सारे मशीन को शुष्क वायु के चूल्हे में ७०°श० पर २२ घण्टा रखते हैं। इसको चूल्हे से हटाकर रबर के टुकड़े को निकाल कर ३० मिनट तक ठंढा होने को छोड़ देते हैं और तब उसकी मोटाई नापते हैं। उससे संपीड़न कितना हुआ है, उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं।
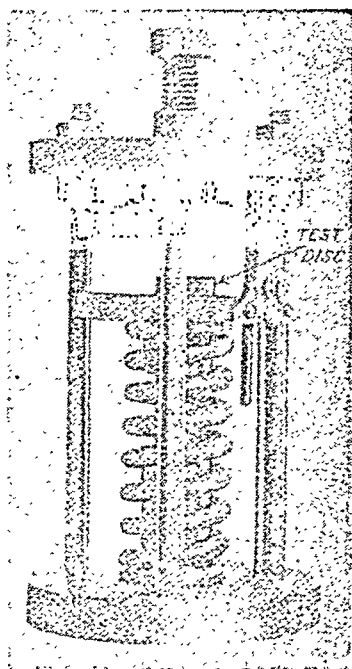
चित्र ५६
संपीड़न परीक्षण मशीन

रासायनिक विश्लेषण—आज रबर के सदृश अनेक पदार्थ बाजारों में बिकते हैं। इस कारण केवल देखकर बताना कठिन है कि कोई पदार्थ रबर है अथवा नहीं। परीक्षा द्वारा ही हम जान सकते हैं कि कोई पदार्थ वास्तव में रबर है अथवा नहीं।

कुछ परीक्षण ऐसे हैं जिनसे विशिष्ट रंग बनता है। ये परीक्षण सरल हैं और कुछ सीमा तक उनका उपयोग हो सकता है।

वेबर ने वर्णन किया है कि रबर को सीधे ब्रोमीन के साथ साधित कर फीनोल के साथ गरम करने से बैगनी रंग बनता है। डौसन और पौरिट ने लिखा है कि रबर को ट्राइक्लोरो-ऐसिटिक अम्ल के साथ पिघलाने से पीत-रक्त रंग प्राप्त होता है। यदि इसको अम्ल के क्वथ-नांक तक गरम करें तो रंग नारंगी-लाल में परिणत हो जाता है और तब उसे पानी में घुलाने से बैगनी-भूरा रंग का अवक्षेप प्राप्त होता है।

रबर प्राकृतिक है अथवा कृत्रिम, इसका बहुत-कुछ ज्ञान आजकल फ़ास्फ़रस की मात्रा से होता है। प्राकृतिक रबर में फास्फरस अवश्य रहता है। फ़ास्फ़रस की मत्राा ०.०३ से ०.०४ प्रतिशत रहती है। प्राकृतिक और कृत्रिम रबर के मिश्रण में फ़ास्फ़रस की मात्रा ०.०१ से ०.०२५ प्रतिशत रहती है। कृत्रिम रबर में फ़ास्फ़रस की मात्रा ०.००५ प्रतिशत से कम रहती है।

कुछ तत्त्वों के लवणों की उपस्थिति का ज्ञान हमें रबर के बाह्य रूप-रंग से ही होता है। यदि रबर का रंग सफेद या हल्का है तो ऐसे रबर में सीस धातु का रहना सम्भव नहीं है; क्योंकि सीस के लवणों से वलकनीकरण में रबर काला हो जाता है। यदि रबर का रंग लाल या नारंगी नहीं है तो ऐसे रबर में एण्टीमनी का लवण नहीं रह सकता।

साधारणतया रबर के विश्लेषण में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है।

१. यदि रबर का वलकनीकरण नहीं हुआ है तो ऐसे रबर को ऐसीटोन और एल्कोहल-पोटाश विलयन से निष्कर्ष निकाल कर उसका विश्लेषण करते हैं। रबर की राख का भी विश्लेषण करते हैं।

यदि ऐसा मालूम होता है कि रबर का आंशिक वलकनीकरण हुआ है तो रबर में समस्त और मुक्त रबर की मात्रा निर्धारित करते हैं। यदि रबर का नमूना रबर का विलयन है तो विलायक की प्रकृति और उसकी मात्रा का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है।

यदि रबर का वलकनीकरण हुआ हैं और उसमें खनिज लवण बिलकुल नहीं है अथवा बहुत अल्प मात्रा में है तो ऐसे रबर को पहले ऐसीटोन से निष्कर्ष निकाल कर तब उनकी परीक्षा करते हैं। रबर के समस्त गन्धक, मुक्त गन्धक और राख की मात्रा मालूम करते हैं।

यदि काँचकड़ा या इबोनाइट का विश्लेषण करना है तो उसका ऐसीटोन निष्कर्ष एल्कोहोलीय निष्कर्ष, समस्त गन्धक, मुक्त गन्धक और राख की मात्रा मालूम करते हैं।
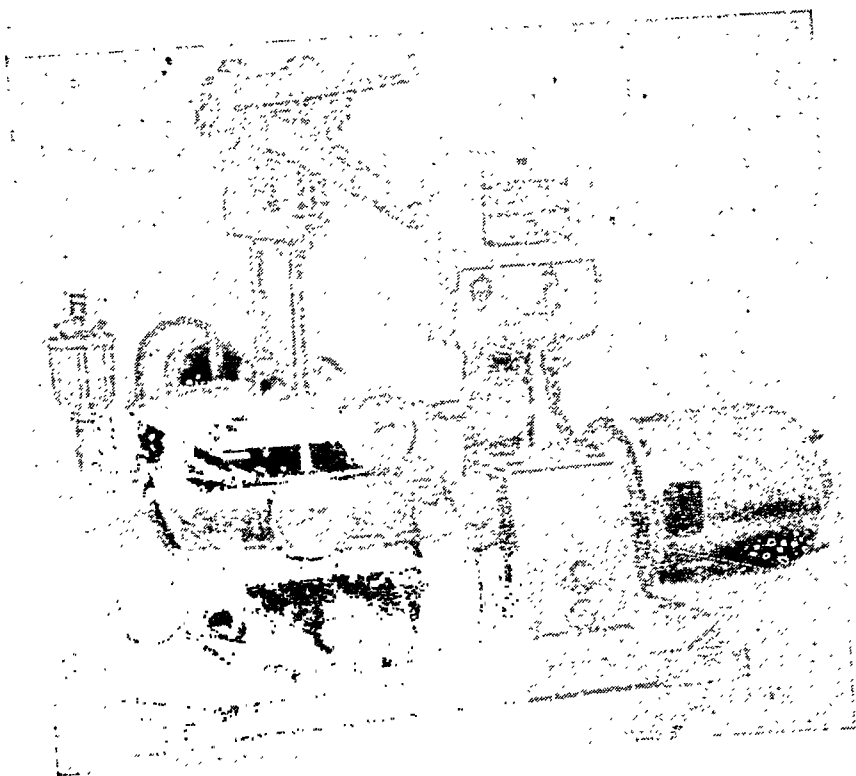
चित्र ६०—श्यानता मापक (मूनी विस्को मीटर)

श्यानता का मापन

श्यानता के मापन के लिए अपने यंत्र बने हैं। रबर के आक्षीर की श्यानता भी ऐसे ही यंत्रों से नापी जाती है। एक ऐसा यंत्र मूनी का 'विस्कामीटर' है। इस यंत्र से बड़ी शीघ्रता से श्यानता निकल जाती है। इस यंत्र में जिस ताप पर श्यानता निकलना चाहता है, निकाल सकते हैं। यद्यपि यह यंत्र भारी होता है; पर श्तानता निकालने की रीति अपेक्षया सरल है।

यदि रबर का रंग लाल है तो ऐसे रबर में अंटीमनी की मात्रा निकालते हैं। ऐसीटोन निष्कर्ष की प्रकृति और मात्रा से पता लगता है कि रबर में तेल या मोम सदृश पदार्थ हैं अथवा नहीं।

यदि रबर काला या भूरा है तो उस रबर का परीक्षण अधिक सावधानी से करना चाहिए। ऐसे रबर के ही जूते के तलवे, एड़ियाँ, समुद्री तार, गच्च की चादरें इत्यादि बनते हैं। उनके रूप-रंग और गंध से भी रबर के सम्बन्ध में कुछ बातें मालूम हो सकती हैं।

बरसाती कपड़े पर चढ़े रबर के विश्लेषण के सम्बन्ध में यह भी जानने की आवश्यकता होती है कि प्रति इकाई क्षेत्र का भार कितना है। साधारणतया निम्नलिखित सारिणी से बहुत-कुछ पता लगता है—

ऐसीटोन से निष्कर्ष

ऐसीटोन में विलेय	ऐसीटोन में अविलेय अंश को क्लोरोफार्म से निष्कर्ष				
	क्लोरोफार्म में विलेय,	अवशेष को एल्कोहोलीय पोटाश से निष्कर्ष			
		एल्कोहोलीय पोटाश में विलेय	अवशेष को उबलत पानी से निष्कर्ष		
			उबते पानी में विलेय	अवशेष को किसी उपयुक्त विलायक से निष्कर्ष	
				विलायक में विलेय	अवशेष
रबर रेज़िन	कोलतार	सफ़ेद प्रतिस्थापक	स्टार्च	रबर	खनिज पदार्थ
वसा-अम्ल	पिच	रंगीन प्रतिस्थापक	डेक्सट्रीन	रबर का गन्धक	मुक्त कार्बन
रोज़िन तेल	विटुमिन पदार्थ	आक्सीकृत तेल	सरेस (ग्लू)	रबर का क्लोरीन	सेल्युलोस
खनिज तेल	गन्धक	गन्धक प्रतिस्थापक	एलब्यूमिन		पूरक का गन्धक
ठोस हाइड्रोकार्बन	कुछ खनिज	क्लोरीन प्रतिस्थापक			
मुक्त गन्धक	रबर				
कुछ खनिज					
रबर					

विश्लेषण के लिए नमूना

विश्लेषण के लिए ऐसा नमूना लेना चाहिए जो सारे रबर की प्रकृति का द्योतक हो। नमूने का रंग-रूप बहुत सावधानी से निरीक्षण कर नोट कर लेना चाहिए। यदि रबर पर कोई धूल, स्टार्च या टाल्क पड़ा हो तो उसे धीरे से झाड़ कर दूर कर लेना चाहिए। यदि रबर के साथ सूत भी मिला हुआ हो तो सूत को रबर से बड़ी सावधानी से अलग कर लेना चाहिए। यदि रबर के साथ कोई तार या फीता लगा हुआ है तो तार और फीते को रबर से निकाल देना चाहिए। यदि रबर के नमूने पर भिन्न-भिन्न प्रकार के रबर के स्तर लगे हुए हों तो विभिन्न स्तरों को अलग-अलग कर उनकी परीक्षा करनी चाहिए।

रबर को कैंची से बहुत महीन टुकड़ों में काट लेना चाहिए। यदि उसे महीन पीस लें तो और अच्छा होगा। यदि रबर एवोनाइट है तो उसे ऐसा चूर्ण बना लेना चाहिए कि वह ४४-अक्षि चलनी से चाला जा सके। चूर्ण पर चुम्बक घुमाकर लोहे के टुकड़ों को निकाल लेना चाहिए।

यदि बरसाती कपड़े से रबर निकालकर परीक्षा करनी है तो सूत को बिना भिंगोए ही रबर को निकाल लेना चाहिए। पर यदि किसी द्रव का उपयोग अत्यावश्यक हो तो सूत को भिंगो लेने में अथवा क्लोरोफार्म या कार्बन टेट्राक्लोराइड के वाष्प में रखने से कोई हानि नहीं है। इससे रबर फूल जाता है और तब सूत से रबर के हटाने में सुविधा होती है। फूले रबर का अब कमरे के ताप पर पूर्णतया सुखाकर तब परीक्षण के लिए इस्तेमाल करना चाहिए।

यदि सूत से रबर का निकलना सम्भव न हो तो छोटे-छोटे समस्त टुकड़ों को काटकर समस्त का विश्लेषण करना चाहिए। अलग से रबर और सूत का आपेक्षिक अनुपात निकाल लेना चाहिए।

रबर का विलयन—जब रबर के विलयन का परीक्षण करना होता है तो किसी प्याली को तौलकर उसमें थोड़े विलयन की निश्चित मात्रा डालकर विलायक को शून्य-उष्मक पर उड़ा देना चाहिए। इस प्रकार विलायक के उड़ जाने से जो कमी होती है, उससे विलायक की मात्रा मालूम होती है। प्याली में जो पतला फिल्म रह जाता है, उसकी अ-वलकनीकृत रबर के सदृश परीक्षा की जाती है।

ऐसीटोन निष्कर्ष

ऐसीटोन से रबर का निष्कर्ष निकालना चाहिए। इसके लिए विशेष प्रकार के उपकरण मिलते हैं। पर यह काम सौक्सलेट एक्सट्रैक्टर में भी उसी प्रकार होता है जैसे एक्सट्रैक्टर में दूध से घी निकाला जाता है। यहाँ एक्सट्रैक्टर की सब सन्धियाँ काँच की बनी होती हैं। फ्लास्क में ऐसीटोन रखा जाता है। ऐसीटोन का आयतन इतना रहना चाहिए कि साइफन प्याला भर जाने पर भी कुछ ऐसीटोन बचा रहे। प्रायः ७०-८० सी. सी. ऐसीटोन से काम चल जाता है। फ्लास्क को जल-ऊष्मक पर गरम करना चाहिए। जल-उष्मक का ताप इतना रहना चाहिए कि एक्सट्रैक्टर से फ्लास्क में प्रति सेकंड केवल तीन बूँद ऐसीटोन गिरे।

रबर का निष्कर्ष प्रायः १६ घंटे तक लगातार निकालना चाहिए। निष्कर्ष का रूप-रंग ऊष्णावस्था और शीतावस्था में कैसा है, लिख लेना चाहिए।

अब वाष्प-ऊष्मक पर ऐसीटोन को उद्वाष्पित कर निकाल लेना चाहिए। ज्योंही सारा ऐसीटोन निकल जाय फ्लास्क को ऊष्मक से हटाकर चूल्हे पर प्रायः ७०° श० पर दो घंटा सुखाकर शोषित्र में ठंढा कर तौलना चाहिए।

$$\text{ऐसीटोन निष्कर्ष की प्रतिशत मात्रा} = \frac{\text{निष्कर्ष भार} \times १००}{\text{रबर का भार}}$$

इस सूखे हुए ऐसीटोन निष्कर्ष में रबर-रेजिन, मोम, मुक्त गन्धक, खनिज तेल, ऐसीटोन विलेय प्रति-आक्सीकारक, ऐसीटोन-विलेय त्वरक, बिटुमिन पदार्थ, वलकनीकृत तेलों के कुछ अंश और विच्छेदित उत्पाद रहते हैं।

यदि निष्कर्ष का रंग हल्का है तो उसमें रेजिन तेल, खनिज तेल, कोलतार, चीड़तार और पिच के होने की सम्भावना नहीं है। यदि निष्कर्ष का रंग गाढ़ा है तो उसमें बिटुमिन, एस्फाल्ट या खनिज तेल रहने से निष्कर्ष आशमान हो सकता है।

क्लोरोफार्म निष्कर्ष

ऐसीटोन निष्कर्ष के बाद अवशेष का क्लोरोफार्म से निष्कर्ष निकालते हैं। यह भी सौक्सलेट एक्सट्रैक्टर में निकाला जाता है। ऊष्ण क्लोरोफार्म के साथ चार घंटे रखते हैं। उसके बाद जल-ऊष्मक पर क्लोरोफार्म को उद्वाष्पित कर निष्कर्ष को १००° श० पर एक घंटा सुखाकर तौलते हैं। निष्कर्ष का रंग लिख लेते हैं। यदि निष्कर्ष का रंग पुआल के रंग से अधिक गाढ़ा है तो उसमें बिटुमिन रहने की सम्भावना हो सकती है।

साधारणतया क्लोरोफार्म से रबर का ४ प्रतिशत निष्कर्ष निकलता है। यदि निष्कर्ष की मात्रा ५ प्रतिशत से अधिक हो और उसका रंग हल्का हो तो उस रबर में पुनर्गृहीत रबर अथवा आंशिक वलकनीकृत रबर मिला हुआ है। यह भी सम्भव है कि ऐसे रबर की पिसाई बहुत अधिक हुई हो।

यदि निष्कर्ष का रंग गाढ़ा और निष्कर्ष आशमान हो तो उसमें बिटुमिन होने की सम्भावना रहती है। ऐसे निष्कर्ष को बेंजीन के साथ उबाल कर १२ घंटे तक रख देते हैं। तब उसे छान कर बेंजीन से दो-तीन बार धो लेते हैं।

निस्यन्दक पर जो बच जाता है, उसको फ्लास्क में लेकर ऊष्ण बेंजीन से गरम करते हैं। बेंजीन को अब उद्वाष्पित कर बचे भाग को १०० श०° पर सुखा कर तौलते हैं। अवशिष्ट भाग कठोर एस्फाल्ट का है।

एल्कोहोलीय पोटाश निष्कर्ष

ऐसीटोन और क्लोरोफार्म द्वारा निष्कर्ष निकाल लेने पर जो अवशेष बच जाता है, उसे ७०° श० पर सुखाते हैं। सूख जाने पर एरलेन मेयर फ्लास्क में रखकर उसपर ५० सी. सी. बेंजीन डालते हैं। इसके बाद उसे १२ घंटे छोड़ देते हैं। फिर पश्चवाही संघनक जोड़कर एल्कोहोलीय पोटाश का ५० सी. सी. विलयन डालकर ४ घंटे तक गरम करते हैं। पोटाश का यह विलयन प्रायः अर्ध-नार्मल बल का होना चाहिए। ऐसा विलयन ३० ग्राम पोटैसियम हाइड्राक्साइड के ३० सी. सी. जल में घुलाकर एल्कोहल डालकर विलयन का १००० सी. सी. बना लेने से प्राप्त होता है।

यदि रबर कठोर है तो एल्कोहोलीय पोटाश के साथ प्रायः १६ घंटे गरम करते हैं।

अब विलयन को २५० सी. सी. वीकर में छानकर उसे २५,२५ सी-सी. उबलते एलकोहल से दो बार धो लेते हैं। फिर उसे २५,२५ सी. सी. उबलते पानी से तीन बार धोते हैं। निस्यन्द को अब उद्वाष्पित कर सुखा लेते हैं।

अब इसे एक पृथक्कारी कीप में हस्तान्तरित करते हैं। हस्तान्तर करने में ७५ सी. सी. आसुत जल का उपयोग करते हैं। अब विलयन को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (हल्का, १० प्रतिशत विलयन) डालकर अम्लिक बना लेते हैं।

अब इसमें २५,२५ सी. सी. ईथर डालकर चार बार निष्कर्ष निकाल लेते हैं। यदि चौथा निष्कर्ष अब भी रंगीन है तो क्रिया को दोहराते हैं, नहीं तो बन्द कर देते हैं।

जो ईथर-निष्कर्ष आता है, उसे आसुत जल से पूर्णतया धोकर अम्ल से मुक्त कर लेते हैं। अब उसे रुई से छानकर फ्लास्क में रखकर ईथर से धोकर ७०°श० पर उद्वाष्पित कर सुखा लेते हैं। सूख जाने पर उसे तौलते हैं। इससे निष्कर्ष की मात्रा निकल आती है।

एल्कोहोलीय पोटाश विलयन से जो पदार्थ बच जाता है, उसमें पाराफिन मोम, खनिज तेल और विटुमिन का कुछ अंश रहता है। इसमें पाराफिन मोम की मात्रा निम्नलिखित रीति से निर्धारित करते हैं—

पाराफिन मोम

उपर्युक्त निष्कर्ष निकालने के बाद जो अवशेष बच जाता है, उसे २५ सी. सी. ऐसीटोन के साथ प्रायः दो घंटे तक पश्चवाही संघनक के साथ साध कर वर्फ-लवण मिश्रण द्वारा दो घंटे तक ठंढा करते हैं। इससे मोम नीचे बैठ जाता है। रुई पर उसे छान कर ठंढे ऐसीटोन के कुछ सी. सी. से धोकर एक फ्लास्क में रखकर उसको वाष्प-ऊष्मक में सुखा कर तौलते हैं।

यह सम्भव है कि मोम ऐसीटोन में कुछ विलेय हो। इस कारण जो मोम प्राप्त हो, उसे प्रायः २० मिनटों तक ३० सी. सी. ऐसीटोन से पश्चवाही संघनक के साथ साधित कर एक घंटे तक वर्फ में ठंढा करते हैं। इस ऐसीटोन में मोम की मात्रा निकालते हैं। जितना मोम घुलता है, उतना मोम पहले के मोम की मात्रा में डालकर जोड़ देते हैं।

साबुनकरणीय पदार्थ

ईथर से निष्कर्ष निकाल लेने के बाद जो जलीय विलयन बच जाता है, उसमें साबुन-करणीय पदार्थ रहता है। उसे पृथक्कारी कीप में रखकर हल्का सलफ्यूरिक अम्ल डाल-कर अम्लिक बनाकर तब उसे ईथर से पूर्णतया निष्कर्ष निकाल लेते हैं। ईथर निष्कर्ष को पृथक्कारी कीप में रखकर जल से धोकर अम्ल से मुक्त कर लेते हैं। फिर उसे एरलेन मेयर फ्लास्क में रखकर काँच डालकर ईथर को उद्वाष्पित कर अवशेष को ७०° श० पर ऊष्मक में सूखा लेते हैं। अवशिष्ट अंश में रेज़िन और वसा-अम्ल रहते हैं। यदि साबुन-करणीय पदार्थ के निकालने पर जलीय विलयन में कुछ धुँधलापन रहता हो तो सम्भवतः उसमें सेल्युलोज के प्रसूत हैं। ऐसी दशा में द्रव को अमोनिया से उदासीन कर उद्वाष्पित कर सुखा लेते हैं।

अवशिष्ट अंश को अब कापर ऑक्साइड-अमोनिया विलयन के १० सी. सी. से साधकर १२ घंटे के लिए छोड़ देते हैं और बीच-बीच में हिलाते रहते हैं। निस्यन्द में हाइड्रोक्लोरिक

अम्ल डालकर अम्लिक बना उसमें तनु सलफ्यूरिक अम्ल डालने से सेल्युलोज़ का अवक्षेप प्राप्त होता है। उसे छान कर सुखा कर तौलते हैं।

इस प्रयोग के लिए कापर आक्साइड-अमोनिया का विलयन इस प्रकार तैयार करते हैं—

५० ग्राम कॉपर सल्फेट को ३०० सी. सी. जल में घुलाकर उसमें बूंद-बूंद अमोनिया तबतक डालते हैं, तबतक सारा कापर हाइड्राक्साइड का अवक्षेप प्राप्त न हो जाय। अवक्षेप को विलयन से अलग कर काँचपात्र में रखकर २० प्रतिशत अमोनिया की पर्याप्त मात्रा डालकर अवक्षेप को पूर्णतया घुला लेते हैं। इस विलयन को प्रयोग के लिए रख देता है। ऐसा विलयन करीब तीन सप्ताह तक काम देता है।

रेज़िन-अम्ल और वसा-अम्ल—साबुनकरणीय पदार्थ में रेज़िन-अम्ल और वसा-अम्ल की मात्रा कितनी है, वह टैरी की रीति से निकाली जाती है।

रेज़िन-अम्ल मिश्र को ६५ प्रतिशत एल्कोहोल के २० सी. सी. में घुलाते हैं। विलयन में एक बूँद फीनोलफ्थलीन सूचक का विलयन डालकर उसमें सान्द्र सोडियम हाइड्रॉक्साइड का विलयन डालकर अल्प-क्षारीय बना लेते हैं।

विलयन को कुछ मिनटों तक गरम करके ठंढा करके उसको १००. सी. सी. अंकित सिलिंडर में रखते हैं।

सिलिंडर में ईथर डालकर १०० सी. सी. बना लेते हैं। फिर उसमें दो ग्राम सिल्वर नाइट्रेट का चूर्ण डालकर १५ मिनटों तक हिलाते हैं ताकि अम्ल चाँदी के लवण में परिणत हो जाय। चाँदी का लवण अब पात्र के पेंदे में बैठ जाता है। ऊपर से स्वच्छ विलयन का ५० सी. सी. लेकर १०० सी. सी. सिलिंडर में रखकर उसमें हल्का हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का २० सी. सी. डालकर खूब हिलाते हैं।

ईथर के स्तर को निकालकर फिर दो बार ईथर डालकर निष्कर्ष निकालते हैं। सब ईथरीय विलयन को एक साथ मिलाकर अम्ल और जल से मुक्त कर ईथर को उद्वाष्पित कर जो अवशेष बच जाता है, उसे ११०° से ११५° श० पर सुखाकर उसका भार मालूम करते हैं। यही अम्लों की मात्रा है।

रबर में गन्धक

रबर में गन्धक (१) मुक्त गन्धक के रूप में, (२) रबर के साथ संयुक्त होकर और (३) खनिज पूरकों के साथ संयुक्त होकर रह सकता है।

मुक्त रबर

मुक्त रबर की मात्रा निम्नलिखित रीति से निकाली जाती है—रबर के ऐसीटोन-निष्कर्ष से जो सूखा पदार्थ प्राप्त होता है, उसी में मुक्त गन्धक रहता है। उस सूखे पदार्थ को फ्लास्क में रखकर उसमें सान्द्र नाइट्रिक अम्ल का ३६ सी. सी. डालकर घटीकाँच से ढँककर जल-उष्मक पर गरम करते हैं। एक घंटे के बाद उसमें करीब दो ग्राम पोटैसियम क्लोरेट को सावधानी से डालकर प्रायः एक घंटे तक गरम करते हैं। अब वाष्प-ऊष्मक पर विलयन को उद्वाष्पित कर सुखा देते हैं।

उसम फिर २० सी. सी. सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालकर फिर सुखा लेते हैं। अब उसमें २५० सी. सी. आसुत पानी डालकर उबाल लेते हैं।

इस विलयन में उबलते वेरियम क्लोराइड का विलयन डालकर गन्धक को वेरियम सल्फ़ेट के रूप में अवक्षिप्त कर विलयन को कुछ समय तक उबालकर ठण्ढा होने को छोड़ देते हैं। अवक्षेप को गूचमूषा में छानकर पूर्णतया धोकर उत्तप्त करके तौलत हैं। वेरियम सल्फ़ेट की मात्रा से गन्धक की मात्रा मालूम करते हैं।

एक दूसरी विधि में ऐसीटोन के निष्कर्ष से प्राप्त सूखे अंश को लेकर उसमें पहले ५० सी. सी. पानी और पीछे ३ सी. सी. ब्रोमीन डालते हैं। फ्लास्क को घटी-काँच से ढँककर जल-उष्मक पर प्रायः एक घंटा तपाते हैं। जब विलयन का रंग उड़ जाय, तब उसे छान कर तनु बनाकर, उबाल कर उसमें वेरियम क्लोराइड के विलयन से गन्धक को वेरियक सल्फ़ेट में अवक्षिप्त कर गन्धक की मात्रा निकालते हैं।

$$\text{निष्कर्ष में गन्धक \%} = \frac{\text{वेरियम सल्फ़ट का भार} \times ०\cdot१३७३ \times १००}{\text{रबर का भार}}$$

समस्त गन्धक

रबर में समस्त गन्धक निकालने की दो रीतियाँ हैं। एक में रबर के गन्धक को जिंक-आक्साइड-नाइट्रिक अम्ल द्वारा आक्सीकृत कर वेरियम सल्फ़ेट के रूप में गन्धक को अवक्षिप्त करते हैं। दूसरी रीति में नाइट्रिक-अम्ल-ब्रोमीन द्वारा गन्धक को आक्सीकृत कर तब वेरियम सल्फेट में परिणत करते हैं।

पहली रीति में कोमल रबर का ०·५ ग्राम अथवा कठोर रबर का ०·२ ग्राम लेकर मज़बूत एरलेनमेयर फ्लास्क में रखकर उसमें जिंक-आक्साइड-नाइट्रिक अम्ल का १० सी. सी. डाल-कर कम-से-कम एक घंटे के लिए रख देते हैं। इस काम के लिए जो जिंक आक्साइड मिश्रण तैयार करते हैं, उसमें प्रत्येक १००० सी. सी. में २०० ग्राम जिंक आक्साइड रहता है। नाइट्रिक अम्ल का आपेक्षित भार १·४२ रहना चाहिए।

इससे रबर धीरे-धीरे विच्छेदित होता है और पीछे सधूम नाइट्रिक अम्ल डालने पर जल उठने का भय नहीं रहता। अब फ्लास्क में १५ सी. सी. सधूम नाइट्रिक अम्ल डालकर फ्लास्क को जल्दी-जल्दी घुमाते रहना चाहिए ताकि ताप एक-ब-एक ऊँचा न हो जाय। यदि ताप ऊँचा होता हुआ देखा जाय तो बहता पानी से फ्लास्क को ठंढा कर लेना चाहिए।

जब रबर पूर्णतया घुल जाय तब उसमें ५ सी. सी. ब्रोमीन का संतृप्त जलीय विलयन डालकर धीरे-धीरे उसे उद्वाष्पित करना चाहिए। यदि रबर में अब भी कुछ कार्बनिक पदार्थ रह जायँ तो उसमें सधूम नाइट्रिक अम्ल और पोटैसियम क्लोरेट के कुछ मणिभ डालकर उद्वाष्पित कर लेते हैं। यह क्रिया तबतक करते रहते हैं जबतक विलयन का रंग पूर्णतया हट न जाय अथवा हल्का पीला न हो जाय।

सावधानी—पोटैसियम क्लोरेट डालने के समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता पड़ती है, नहीं तो विस्फोट होने की सम्भावना रहती है।

अब सबको उद्वाष्पित कर सुखा लेते हैं। सूखने पर उसमें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का

१० सी. सी. डालकर फिर सुखा लेते हैं। यह क्रिया तबतक चलती रहती है जबतक नाइट्रोजन के आक्साइड का निकालना बिलकुल बन्द न हो जाय।

क्रिया समाप्त होने पर उसमें हल्का हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (५० सी. सी.) डालकर गरम कर विलयन बना लेना चाहिए। अब विलतन को छान और धोकर निस्यन्द को ३० सी सी. बना लेना चाहिए। फिर उसमें बेरियम क्लोराइड का १० प्रतिशत विलयन डालकर रातभर रख देना चाहिए। उसके बाद छान और धोकर बेरियम सल्फेट की मात्रा निकालनी चाहिए।

दूसरी रीति में ०·५ ग्राम रबर को एक मूषा में रखकर नाइट्रिक-अम्ल-ब्रोमीन का १५ सी सी. विलयन डालकर एक घंटा छोड़ देना चाहिए उसके बाद वाष्प-ऊष्मक पर एक घंटा गरम करना चाहिए तब उद्वाष्पित कर सुखा लेना चाहिए।

अब उसमें कुछ सी. सी. नाइट्रिक अम्ल डालकर प्रायः २० मिनट तक वाष्प-ऊष्मक पर गरम कर लेना चाहिए। फिर उसमें ५ ग्राम सोडियम कार्बोनेट थोड़ी-थोड़ी मात्रा में डालकर बुंसेन ज्वालक पर पिघला लेना चाहिए।

ठंढे होने पर १५० सी. सी. जल में रखकर वाष्प-ऊष्मक पर दो घंटा सिझा लेना चाहिए। अब निस्यन्द को सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में अम्लिक बना कर बेरियम क्लोराइड से बेरियम सल्फेट का अवक्षेप प्राप्त कर उसकी मात्रा निकालनी चाहिए।

$$\text{समस्त गन्धक \%} = \frac{\text{बेरियम सल्फेट का भार} \times ०·१३७३ \times १००}{\text{रबर का भार}}$$

समस्त गन्धक से मुक्त गन्धक की मात्रा निकालने पर संयुक्त गन्धक की मात्रा निकल आती है।

रबर में राख

रबर के २·५ ग्राम को पोरसीलेन मूषा में रखकर बुन्सेन ज्वालक पर धीरे-धीरे गरम करना चाहिए। इतना ही गरम करना चाहिए कि रबर जल न उठे। जब सारा कार्बनिक पदार्थ जल जाय तब अवशिष्ट कार्बन को जलाने के लिए संवृत भट्ठी में गरम करना चाहिए। जब सारा कार्बन जल जाय, तब उसे ठंढा कर तौलना चाहिए।

इस प्रयोग से रबर की समस्त राख की मात्रा मालूम होती है। इस राख में समस्त पूरक भी सम्मिलित हैं; पर कुछ पूरकों के रूप इससे बदल जाते हैं। उदाहरणस्वरूप रबर का लिथोपोन जिंकआक्साइड में, अन्टीमनी सल्फाइड अन्टीमनी आक्साइड में और कुछ कार्बोनेट आक्साइड में परिणत हो जाते हैं।

इस राख का परीक्षण उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार अन्य राखों का परीक्षण करते हैं। राख को साधारणतया दो भागों में विभक्त कर लेते हैं। एक भाग में केवल जिंक आक्साइड की मात्रा निकालते हैं और दूसरे भाग में अन्य पदार्थों, सिलिका, अविलेय पदार्थ, सीस, लोहा, एल्युमिनियम, कैलसियम और मैगनीसियम आक्साइड की मात्रा निकालते हैं।

सिलिका और अविलेय पदार्थ

राख में सिलिका और अविलेय पदार्थ की मात्रा निकालने के लिए राख को प्रायः १० सी. सी. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (आपेक्षिकभार १·१६) में घुलाते हैं। उसमें फिर १००

सी. सी. पानी डालकर विलयन को उद्वाष्पित कर सुखा लेते हैं। उत्पाद को तब करीब ११०° श० पर एक घंटा सिझाते हैं। अब उसमें १० सी. सी. हल्का हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल और ५ बूँद नाइट्रिक अम्ल (आपेक्षिक भार १.४२) डालकर वाष्प-ऊष्मक पर १५ मिनट पकाते हैं। अब उसमें १०० सी. सी. पानी डालकर, उबाल, छान और गरम जल से धो लेते हैं। धो लेने के बाद सुखाकर उसका उत्तापन करते हैं।

अवशेष के तौलने से सिलिका और अविलेय की मात्रा मालूम होती है।

इसे अब एक प्लैटिनम मूषा में रखकर उसमें २ से ३ सी. सी. हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल और सलफ्यूरिक अम्ल की कुछ बूँदें डालकर उद्वाष्पित कर सुखा लेते हैं। सुखा लने के बाद सावधानी से उत्तापन करते हैं। इससे भार में कमी होती है। यह कमी सिलिका के निकल जाने के कारण होती है। इन आँकड़ों से सिलिका और अविलेय पदार्थ की मात्रा सरलता से निकल आती है।

यदि उत्तापन के बाद पोरसीलेन मूषा का भार 'ख' है, मूषा और अवशेष का भार 'क' है और रबर के नमूने का भार 'ग' है तो

$$\text{सिलिका और अविलेय की प्रतिशत मात्रा} = \frac{\text{क}-\text{ख}}{\text{ग}} \times १००$$

हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल डालकर और प्लैटिनम मूषा में उत्तापन के बाद अवशेष और प्लैटिनम मूषा का भार 'घ' और केवल प्लैटिनम मूषा का भार 'च' है तो

$$\text{सिलिका की प्रतिशत मात्रा} = \frac{(\text{क}-\text{ख})-(\text{घ}-\text{च})}{\text{ग}} \times १००$$

$$\text{अतः अविलेय पदार्थ की प्रतिशत मात्रा} = \frac{(\text{घ}-\text{च})}{\text{ग}} \times १००$$

सीस

सिलिका और अविलेय पदार्थ के निकल जाने पर जो निस्यन्द प्राप्त होता है, उसमें अमोनिया डालकर उदासीन बना लेते हैं। तब उसमें एक सी. सी. हल्का हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालने के बाद थोड़ा प्रायः ५० से १०० सी. सी. पानी डालकर विलयन को तनु बनाकर हाइड्रोजन सल्फाइड की तीव्र धारा प्रवाहित करते हैं। इससे लेड सल्फाइड का अवक्षेप प्राप्त होता है। जब अवक्षेप का आना बन्द हो जाय तब उसे छान और हाइड्रोजन सल्फाइड के संतृप्त विलयन से धोकर उसे हल्के नाइट्रिक अम्ल (१:१) में घुलाकर उबालते हैं। इसमें अंटीमनी विद्यमान है जो अंटीमनी सल्फाइड घुलता नहीं है। केवल लेड सल्फाइड घुल जाता है।

अब विलयन को छानकर निस्यन्द में सलफ्यूरिक अम्ल डालकर गरमकर सान्द्र बना लेते हैं। विलयन के ठंढ़े होने पर उसमें ५० सी. सी पानी डालकर उतना ही एलकोहल डालकर रात भर रख देते हैं। इस प्रकार सारा लेड सल्फेट के रूप में निकल आता है।

यदि पोरसीलेन मूषा का भार 'क' है और मूषा और लेड सल्फेट का भार 'ख' है और रबर का भार 'ग' है तो—

सीस की प्रतिशतता = $\frac{(\text{ख}-\text{क}) \times ०\cdot६८३२}{\text{ग}}$ × १००, यहाँ ०·६८३२ का अंक लेड सल्फेट को सीस में परिणत करने का अंक है।

लोहा और एल्युमिनियम के आक्साइड

लेड सल्फाइड के अवक्षेप से जो निस्यन्द प्राप्त होता है, उसे उबालकर सारा हाइड्रोजन सल्फाइड निकाल देते और विलयन का आयतन १०० से १५० सी. सी. कर लेते हैं। अब विलयन में नाइट्रिक अम्ल की कुछ बूँदें डालकर विलयन को फिर उबालते हैं। लोहे के लिए इस विलयन की परीक्षा करते हैं। यदि फेरस लोहा विद्यमान है तो और नाइट्रिक अम्ल डालकर उबालकर उसे फेरिक लोहे में परिणत कर लेते हैं। अब विलयन में प्रायः ५ ग्राम अमोनियम क्लोराइड डालकर तब प्रबल अमोनिया का विलयन डालते हैं। जब विलयन निश्चित रूप से पीला हो जाय तब अमोनिया का डालना बन्द करते हैं। अमोनिया का आधिक्य होना अच्छा नहीं है। अब विलयन को प्रायः ४, ५, मिनट उबालकर अवक्षेप को बैठ जाने के लिए रख देते हैं। जब अवक्षेप बैठ जाय, तब उसे छान और अमोनियम क्लोराइड के बहुत हल्के विलयन से धो लेते हैं। निस्यन्दक पत्र को निम्न ताप पर झुलसाकर तब आक्सीकरण वातावरण में उत्तापन करते हैं। जो अवशेष बच जाता है, उससे लोहे और एल्युमिनियम के आक्साइड का ज्ञान होता है।

यदि 'क' मूषा का भार, 'ख' मूषा और आक्साइड का भार और 'ग' रवर का भार है तो

लोहे के आक्साइड + एल्युमिनियम के आक्साइड = $\frac{\text{ख}-\text{क}}{\text{ग}}$ × १००

यदि लोहे की मात्रा अलग निकालनी हो तो अवक्षेप को पोटैसियम पाइरोसल्फेट के साथ पिघलाकर, पिघले पिंड को सलफ्यूरिक अम्ल में घुलाकर पारदमिश्रित जस्ते से अवकृत करके फेरस लोहे को पोटाश परमैंगनेट के प्रामाणिक विलयन से लोहे की मात्रा मालूम करते हैं।

कैलसियम आक्साइड

राख से कैलसियम आक्साइड की मात्रा निकालने के लिए पहले जस्ते को निकाल लेते हैं। उसके बाद लोहा और एल्युमिनियम को निकालकर निस्यन्द में पानी डालकर २५० सी. सी. बना लेते हैं। अब विलयन को हल्का हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालकर अम्लिक बना लेते हैं। तब उसमें हाइड्रोक्लोरिक सल्फाइड गैस प्रवाहित करते हैं। यदि कोई अवक्षेप निकल आवे तो विलयन को स्थिर कर छान लेते हैं। अब फिर निस्यन्द को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से अम्लिक बनाकर उद्वाष्पन द्वारा उसका आयतन १०० सी. सी. कर लेते हैं। यदि गन्धक अवक्षिप्त हो तो उसे निकालकर मिथाइलरेड सूचक डालकर विलयन को ५०° श० तक गरम करके अमोनिया से उदासीन बनाकर थोड़ा क्षारीय कर लेते हैं। अब उसमें थोड़ा औक्ज़ैलिक अम्ल विलयन (१० प्रतिशत) डालकर अम्लिक बना लेते हैं। तब थोड़ी देर प्रायः २ मिनट तक उबालकर और हिला-डुलाकर उसमें अमोनियम आक्ज़लेट का संतृप्त विलयन (प्रायः ५ प्रतिशत) प्रायः ६० सी. सी. डालते हैं। यदि विलयन अब भी अम्लिक है, तो उसमें और अमोनियम आक्ज़लेट डालते हैं। अब विलयन को तनु बनाकर २ मिनट तक उबालकर प्रायः एक घंटा वाष्प-उष्मक पर पकाते हैं।

अब उसे ठण्ढा कर छान लेते और अमोनियम आक्ज़लेट के विलयन से धो लेते हैं। इस प्रकार कैलसियम आक्ज़लेट का अवक्षेप प्राप्त होता है।

आयतनमित निर्धारण

कैलसियम आक्ज़लेट के अवक्षेप को हल्के सल्फ्यूरिक अम्ल में घुलाकर ०·१ नार्मल पोटाश परमैंगनेट के विलयन से अनुमापन करते हैं। जल्दी अनुमापन से अधिक यथार्थ परिणाम प्राप्त होता है।

यदि पोटाश परमैंगनेट का विलयन 'क' सी. सी. है, पोटाश परमैंगनेट की प्रामाणिकता 'ख' है और रबर की मात्रा 'ग' है तो

$$\text{कैलसियम आक्साइड की प्रतिशत मात्रा} = \frac{\text{क} \times \text{ख} \times ०·०२८}{\text{ग}} \times १००$$

जहाँ ०·०२८ ग्राम एक सी' सी. प्रामाणिक पोटाश परमैंगनेट विलयन के समतुल्य कैलसियम आक्साइड की मात्रा है।

भारमित निर्धारण

कैलसियम आक्ज़लेट के अवक्षेप को सूखाकर पोरसीलेन मूषा में १०००° से १२००° श० पर उत्तापन कर तौलने से कैलसियम आक्साइड की मात्रा मालूम होती है।

मैगनीसियम आक्साइड

कैलसियम आक्ज़लेट के अवक्षेप निकाल लेने के बाद जो निस्यन्द बच जाता है, उसमें अवक्षेप का धोवन मिला देते हैं। अब विलयन को उद्वाष्पन द्वारा सुखा लेते हैं। जो ठोस प्राप्त होता है, उसमें ५० सी. सी. नाइट्रिक अम्ल डालकर फिर सुखा लेते हैं। अवशेप को पानी में घुलाकर हाइड्रक्लोरिक अम्ल से थोड़ा अम्लिक बनाकर अमोनियम फ़ारफ़ेट डालकर मैगनीसियम को मैगनीसियम अमोनियम फारफेट के रूप में अवक्षिप्त कर लेते हैं। अब उसे निस्यन्दक पत्र पर पूर्ण रूप से धो-सुखाकर उत्तापन कर मैगनीसियम पाइरोफ़ारफ़ेट में परिणत करते हैं। कम-से-कम प्रायः एक घण्टा १००० से १२००° श० पर गरम करके तौलना चाहिए। मैगनीसियम की मात्रा इस प्रकार निकालते हैं—यदि मूषा का भार 'क' ग्राम; मूषा और मैगनीसिमम फ़ारफ़ेट का भार 'ख' ग्राम; और रबर का भार 'ग' ग्राम है तो—

$$\text{मैगनीसियम आक्साइड} = \frac{(\text{ख}-\text{क}) \times ०·३६२१}{\text{ग}} \times १००$$

जहाँ ०·३६२१, मैगनीसियम पाइरोफास्फ़ेट के मैगनीसियम आक्साइड में परिणत करने का गुणक है।

जिंक आक्साइड

राख की निश्चित मात्रा को लेकर उसे १५ सी. सी. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घुलाते हैं। विलयन को उद्वाष्पित कर तृतीयांश आयतन बनाकर ठण्ढा करते हैं। अब उसमें ब्रोमीन के संतृप्त विलयन का १० सी. सी. डालकर उसमें ५ ग्राम अमोनियम क्लोराइड डालकर १५ सी. सी. प्रबल अमोनिया डालकर ३ मिनट उबालते हैं। हाइड्राक्साइड का जो अवक्षेप प्राप्त होता है, उसे छान लेते और अमोनियम क्लोराइड के ५ प्रतिशत और अमोनिया के २ प्रतिशत विलयन से धोते हैं। अब विलयन को २५० सी. सी. बनाकर तनु करके गरम

करते हैं। जब विलयन क्वथनांक तक पहुँच जाता है, तब अमोनियम सल्फाइड की पाँच बूँदें डालते हैं।

अब विलयन को दो भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग को २५० सी. सी. बनाकर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से अम्लिक बना लेते हैं। एक भाग को पोटैसियम फेरो-सायनाइड से अनुमापन करते हैं। यहाँ बाह्य सूचक के रूप में युरेनील ऐसिटेट का व्यवहार करते हैं। ज्योंही विलयन का रंग कपिल हो जाता है, वही निराकरण की अन्तिम सीमा समझी जाती है। पोटैसियम फेरोसायनाइड का दो-दो सी. सी. विलयन डालकर अनुमापन करते हैं। दूसरे भाग में एक साथ ही विलयन डालकर अनुमापन कर अन्तिम विन्दु मालूम करते हैं। पोटैसियम फेरो-सायनाइड के विलयन को शुद्ध जल के साथ अनुमापन कर उसका यथार्थ बल मालूम करते हैं। इसके लिए साथ-साथ एक रिक्त परीक्षण भी करते हैं।

यदि पोटैसियम का 'क' सी. सी. विलयन लगता हैं और 'ख' ग्राम प्रत्येक पोटैसियम फेरो-सायनाइड का समतुल्य जिंक आक्साइड है और 'ग' ग्राम रबर का नमूना है तो—

$$\text{जिंक आक्साइड की प्रतिशतता} = \frac{\text{क} \times \text{ख}}{\text{ग}} \times १००$$

बेरियम

यदि रबर में बेरियम के रहने का सन्देह हो तो राख को लेकर उसमें द्रावक मिश्रण (सोडियम और पोटैसियम कार्बोनेटों के समभाग मिश्रण) डालकर राख को गरम कर पिघलाते हैं। पिघले पिंड को ठंढा करके जल से निर्रंजन कर छान लेते हैं। जो अवशेष बच जाता है, उसे हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घुलाकर गरम जल से तनु बना लेते हैं। अब विलयन में हल्का सल्फ्यूरिक अम्ल डालकर बेरियम को बेरियम सल्फेट के रूप में अवक्षिप्त कर गूच कीप में छानकर धो और उत्तापन कर तौलते हैं। इससे बेरियम सल्फेट की मात्रा निकल आती है और उससे बेरियम की मात्रा मालूम करते हैं।

समस्त एन्टीमनी

रबर के नमूने के ०.५ ग्राम को केल्डाल फ्लास्क में रखकर उसमें प्रबल सलफ्यूरिक अम्ल (आपेक्षिक भार १.८४) का २५ सी. सी. और लगभग १० ग्राम पोटैसियम सल्फेट डालकर गरम करते हैं। जब विलयन का रंग निकल जाता है। तब विलयन को ठंढा कर जल डालकर १०० सी. सी. बनाकर एक बड़े बीकर में लेकर गरम जल से २५० सी. सी. आयतन में बना कर सारे एन्टीमनी को हाइड्रोजन सल्फाइड से अवक्षिप्त कर लेते हैं।

अब अवक्षेप को केल्डाल फ्लास्क में रखकर प्रबल सलफ्यूरिक अम्ल का १५ सी. सी. और लगभग १० ग्राम पोटैसियम सल्फेट डालकर गरम कर रंग-रहित बना लेते हैं। अब विलयन में पानी डालकर तनु—१०० सी. सी.—बनाकर उसमें प्रायः डेढ़ ग्राम सल्फाइट डालकर विलयन को उबालते हैं। जब उसका सारा सल्फर डायक्साइड निकल जाय, तब वह स्टार्च आयोडाइड पत्र का नीला रंग नहीं देगा। अब उसमें २५ सी. सी. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालकर तनु बनाकर २०० सी. सी. बना लेते हैं। उसे तब प्रायः ६०° श० तक गरम करके मिथाइलरेड के २ प्रतिशत विलयन की दो बूँदें डालकर प्रमाणिक पोटैसियम ब्रोमेट के विलयन से अनुमापन करते हैं। जब रंग फीका होने लगता है, तब पोटैसियम ब्रोमेट के विलयन को बहुत

धीरे-धीरे डालते हैं। यदि आवश्यक प्रतीत हो तो एक बूँद और सूचक डाल देते हैं। अन्त में सूचक रंग-रहित हो जाता है। यदि रबर में लोहा नहीं हो तो एन्टीमनी को अवक्षिप्त करने और फ्लास्क में दुबारा गरम करने की आवश्यकता नहीं होती है।

एंटीमनी प्रतिशत= $\frac{\text{पोटैसियम ब्रोमेट के समतुल्य एंटीमनी} \times \text{पोटैसियम ब्रोमेट की सी.सी.}}{\text{रबर का भार}} \times १००$

राख में एंटीमनी

एक ग्राम राख को ५० सी. सी. एर्लेनमेयर फ्लास्क में रखकर उसमें १५ सी. सी. प्रबल सलफ्यूरिक अम्ल और लगभग १० ग्राम पोटैसियम सल्फेट के साथ गरम करते हैं। जब विलयन उबलने लगता है और राख घुल जाती है तब हाइड्रोजन सल्फाइड के द्वारा एन्टीमनी का अवक्षेप प्राप्त करते हैं। इस अवक्षेप के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसे ऊपर दिया हुआ है। इस प्रकार के प्राप्त अंकों से एन्टीमनी आक्साइड के रूप में एन्टीमनी की मात्रा निकालते हैं।

एंटीमनी आक्साइड के रूप में एंटीमनी

$= \frac{\text{पोटैसियम ब्रोमेट के समतुल्य एंटीमनी} \times \text{पोटैसियम ब्रोमेट सी. सी.}}{\text{नमूने का भार}} \times १००$

तांबा

तांबे की मात्रा का निर्धारण बड़ी यथार्थता से होना चाहिए; क्योंकि रबर पर तांबे का बहुत विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। तांबे के विश्लेषण का बहुत यथार्थ फल वर्णमिति (कैलोरिमेट्रिक) रीति से प्राप्त होता है।

इसके लिए रबर का ५ ग्राम केल्डाल फ्लास्क में रखकर २० सी. सी प्रबल सलफ्यूरिक अम्ल डालकर धीरे-धीरे गरम करते हैं। अब मिश्रण उबलने लगता है। इससे रबर का पिंड झुलस जाता है और १५ से २० मिनटों में सारा कार्बनिक पदार्थ पूर्णतया आक्रान्त हो विच्छेदित हो जाता है। अब उसमें थोड़ा और सलफ्यूरिक अम्ल डालकर उसका आयतन २० सी. सी. बना लेते हैं। झुलसना पूरा हो जाने पर पिंड को ठंढाकर बड़ी सावधानी से उसमें थोड़ी-थोड़ी मात्रा में लगभग ५ सी. सी. सधूम नाइट्रिक अम्ल डालते हैं। यदि प्रतिक्रिया बड़ी तीव्र हो तो उसे जोरों से हिलाकर तीव्रता को कम कर लेते हैं। जब सारा सधूम नाइट्रिक अम्ल पड़ जाय तब उसे अत्यन्त धीमी ज्वाला में धीरे-धीरे गरम करके जब कपिल धुएँ का निकलना बंद हो जाय, तब कुछ मिनट उबालकर ठंढा कर लेते हैं। इस क्रिया को दो बार और दुहरा लेते हैं। अब इस प्रकार्य से विलयन के रंग में कोई भेद नहीं पड़ता।

अब फ्लास्क को हिला-डुलाकर जल से १०० सी. सी. बनाकर उसे उबालकर ठंढा कर लेते हैं। इस प्रकार स्वच्छ विलयन प्राप्त होता है। यदि विलयन पीला हो तो उसमें पाँच सी सी. हाइड्रोजन पेराक्साइड डालकर रंग को दूर कर लेते हैं।

अब विलयन को १०० सी. सी. में बनाकर उबालने से हाइड्रोजन पेराक्साइड विच्छेदित होकर निकल जाता है। विलयन को अब २५० सी. सी. में बनाकर छान लेते हैं। यदि

कोई अविलेय पदार्थ रह जाता है तो उसे निकाल लेते हैं। अब विलयन के दो भाग करके एक भाग में तांबे की मात्रा और दूसरे भाग में मैंगनीज की मात्रा निकालते हैं।

तांबे की मात्रा निकालने के लिए तांबे के लवण कापर सल्फेट का एक प्रामाणिक विलयन तैयार करते हैं। इस विलयन के तैयार करने के लिए १·५७१२ ग्राम मणिभीय कापर सल्फेट को एक लिटर जल में घुलाते हैं। इतने कापर सल्फेट में तांबे की मात्रा ०·४००० ग्राम रहती है। इस विलयन का २५ सी. सी. लेकर एक लिटर फ्लास्क में रखकर आसुत जल से एक लिटर बना लेते हैं। यही विलअन प्रामाणिक विलयन है। इसकी एक सी. सी. में तांबे की मात्रा ०·००००१ ग्राम रहती है।

इस विलयन का प्रायः २५ सी. सी. लेकर एक बीकर में रखकर उसमें लिटमस पत्र का एक छोटा टुकड़ा डालकर विलयन को अमोनिया से ठीक क्षारीय बना लेते हैं। तब उसमें प्रायः २ सी. सी. और अमोनिया डालकर क्वथन विन्दु तक गरम करते हैं। अब बीकर को वाष्प-उष्मक में लोहे के आक्साइड के स्कंधन और अवक्षेपन के लिए रख देते हैं। इससे उनका स्कंधन और अवक्षेपन पूर्णतया हो जाता है। यदि विलयन में एल्युमिनियम भी है तो एल्युमिनियम हाइड्राइड के पूर्ण अवक्षेपन के लिए कम-से-कम एक घंटा वाष्प-उष्मक में रखते हैं। अब इसे वाटमैन नम्बर एक निस्यन्दन पत्र में छानकर १०० सी. सी. वाले नसलर नली में रखकर निस्यन्दन पत्र को उष्ण आसुत जला से दो-तीन वार धो लेते हैं। अब उसमें बबुल के गोंद का १ सी. सी. विलयन (५ प्रतिशत), १० सी. सी. अमोनिया और १० सी. सी. सोडियम डाइएथिल-डाइ-थायो-कार्बेमेट का विलयन डालकर पानी से नसलर नली को चिह्न तक भरकर जोरों से मिला लेते हैं। इस काम के लिए सोडियम डाइ-एथिल-डाइ-थायो-कार्बेमेट का एक ग्राम घुलाकर एक लिटर में विलयन बना लेते हैं। इस विलयन को रंगीन बोतल में प्रचण्ड प्रकाश से सुरक्षित रखते हैं।

नेसलर नली में अब रंग आता है। इस रंग को निश्चित मात्रा के कापर सल्फेट के विलयन से तुलना कर देखते हैं कि किस रंग से यह पूर्ण रूप से मिलता-जुलता है। जिस रंग से यह अतिसन्निकट मिलता है, उससे तांबे की मात्रा को मालूम करते हैं।

मैंगनीज़

मैंगनीज़ के निर्धारण के लिए पहले सारे कार्बनिक पदार्थ को नष्ट कर लेते हैं। इसके नष्ट करने के लिए वही उपाय करते हैं जिसका वर्णन एण्टीमनी और तांबे के निर्धारण में हुआ है। सलफ्यूरिक अम्ल के साथ साधने से यदि नाइट्रिक अम्ल का लेश अब भी रह गया हो और विलयन कुछ रंगीन हो तो उसमें कुछ बूंदें हाइड्रोजन पेराक्साइड की डालकर एक या अधिक बार उबाल लेते हैं। इससे सारा कार्बनिक पदार्थ नष्ट हो जाता है। अब उसको ठंढा कर सान्द्र फ़ास्फ़रिक-अम्ल से अम्लिक बना ५ सी. सी. जल से तनु बनाकर छान और धोकर ठोस अवशेष को छोड़ देते हैं और विलयन को २५० सी. सी. मापक फ्लास्क में लेकर चिह्न तक पानी से भर कर पूरा मिला लेते हैं।

अब इस विलयन की ५० सी. सी. लेकर २५० सी. सी. फ्लास्क में रखकर ४ सी. सी. फ़ास्फ़रिक अम्ल और ०·३ ग्राम पोटैसियम आयोडाइड डालकर एक मिनट तक उबालकर पाँच मिनट तक ६०° श० पर रख छोड़ते हैं। अब विलयन को ठंढा कर १०० सी. सी. नेसलर

नली में रखकर पानी से १०० सी. सी. बनाकर इसके रंग को प्रामाणिक विलयन के रंग से तुलना करते हैं।

मैंगनीज़ का प्रमाणिक विलयन तैयार करने के लिए कई २५० सी. सी. फ्लास्क में २ सी सी, ४ सी. सी., ६ सी. सी., ८ सी. सी., १० सी. सी. प्रामाणिक मैंगनीज़ का विलयन रखकर प्रत्येक में ५० सी. सी. पानी, ५ सी. सी फ़ास्फ़रिक अम्ल और ०·३ ग्राम पोटैसियम परआयोडेट डालकर जैसे ऊपर कहा गया है, आक्सीकृत करते हैं। विलयन को अब ठंढा कर १०० सी. सी. नेसलर नली में रखकर १०० सी. सी. बना लेते हैं। अब इन विलयन के रंगों से रबर के विलयन के रंग की तुलना करते हैं। जिस प्रामाणिक विलयन के रंग से रबर के रंग की अति सन्निकट समानता रहती है, उसकी सहायता से दूसरा प्रामाणिक विलयन तैयार करते हैं। उपर्युक्त प्रामाणिक विलयन में जितना मैंगनीज़ रहता है, और यदि मान लें कि उसमें 'क' सी. सी. मैंगनीज़ विलयन है, तो उतना प्रामाणिक विलयन के तैयार करने में क–१·०, क–०·५, क+१·०, क+०·५ सी. सी. डालकर और अन्य सब पदार्थों को डालकर प्रामाणिक विलयन को तैयार करते हैं और उस विलयन के रंग से रबर के विलयन के रंग की तुलना करते हैं। जिस विलयन के रंग से मैंगनीज़ विलयन का रंग समानता रखती है, उससे मैंगनीज़ की मात्रा मालूम करते हैं। इन प्रयोगों के साथ-साथ रिक्त प्रयोग भी करते हैं। यदि आवश्यकता हुई तो अन्तिम फल का रिक्त प्रयोग से संशोधन करते हैं।

कार्बन

रबर के ५ ग्राम नमूने का ६८ प्रतिशत क्लोराफार्म और ३२ प्रतिशत ऐसीटोन के मिश्रण से ८ घंटे तक निष्कर्ष निकालते हैं। निष्कर्ष को २५० सी. सी. बीकर में रखकर वाष्प-ऊष्मक पर गरम करते हैं। लगभग एक घंटे में गैस का निकलना बन्द हो जाता है। अब गरम द्रव को गूच मूषा में डाल देते हैं। जहाँ तक हो, अविलेय पदार्थ को बीकर में ही रहने देते हैं। अब उसे धीरे-धीरे छनने देते हैं। फिर उष्ण नाइट्रिक अम्ल से धो लेते हैं। फिर पहले ऐसीटोन और तब क्लोरोफार्म और ऐसीटोन के मिश्रण से धो लेते हैं। जब निस्यन्द का रंग हट जाय, तब धोना बन्द करते हैं।

अब विलेय पदार्थ को बीकर में ही वाष्प-ऊष्मक पर २५ प्रतिशत कॉस्टिक सोडा का ३० सी. सी. विलयन डालकर ३० मिनट तक पकाते हैं। यदि सिलिकेट न हो तो कास्टिक सोडा डालने की आवश्यकता नहीं होती।

अब विलयन को गरम आस्रुत जल से तनु करके ६० सी. सी. बनाकर वाष्प-ऊष्मक पर गरम करके छान और कास्टिक सोडा के १५ प्रतिशत उष्ण विलयन से धो लेते हैं। जो अवशिष्ट भाग बच जाता है, उसे उष्ण हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से साधित कर अन्तिम धोवन को अमोनिया से उदासीन करके सोडियम क्रोमेट के विलयन से सीस धातु का परीक्षण करते हैं। जबतक सीस की उपस्थिति रहे, उपर्युक्त साधन को दुहराते रहना चाहिए। जब सीस का पूर्णतया अभाव हो जाय, तब कीप से मूषा में हस्तान्तरित कर वायु-ऊष्मक पर ११०° श० सुखा कर ठंढा कर तौलने के बाद कार्बन को रक्त-ताप तक गरम करके जला लेते हैं और तब मूषा को फिर तौल लेते हैं।

भार में जो अन्तर होता है, वही कार्बन की मात्रा है।

ग्रेफ़ाइट

रबर के नमूने (०·५ से १·० ग्राम) को लेकर उसको एल्कोहलीय पोटाश विलयन (अर्ध नार्मल) के साथ ४ घंटे उबालकर छान लेते हैं। जो अवशेष बच जाता है, उसे एक छोटे पोरसीलेन मूषे में रखकर सधूम नाइट्रिक अम्ल (आपेक्षिक भार १·५२) डालकर चार बार उबालते हैं। अब बचे हुए रबर में दसगुना (भार में) लेड आक्साइड डालकर गरम करते हैं। जब गैस का निकलना बन्द हो जाय तब गरम करना बन्द कर ठंढा करके लेते हैं। अब मूषे को तोड़कर पेंदे से बचा हुआ अंश निकालकर तौलते हैं। उससे कार्बन की प्रतिशतता निकालते हैं।

$$\text{कार्बन प्रतिशत} = \frac{\text{पेंदे में बचे हुए अंश का भार}}{\text{रबर का भार}} \times १००$$

एक दूसरी रीति में रबर को ऐसीटोन और क्लोरोफार्म से निकाल लेने पर उसमें हल्के नाइट्रिक अम्ल को ५० सी. सी. डालकर एक उष्ण पट्ट पर ६० से १००° श० तक गरम करते हैं। अब उसमें महीन पीसा हुआ ०·२ ग्राम कीसेलगुहर डालकर कुछ मिनट तक गरम करके परिक्षिप्त कर लेते हैं। अब बीकर को हटाकर उसमें १० से २० सी. सी. कार्बन टेट्रा-क्लोराइड डालकर नाइट्रिक अम्ल के साथ मिलने के लिए खूब हिलाते हैं। अब ३० सी. सी. प्रबल नाइट्रिक अम्ल और ०·३ से ०·५ ग्राम कीसलगुहर मिलाकर उबालकर गूच मूषे में ऐस्बेस्टस की पतली गद्दी पर जल्दी से छान लेते हैं। इस गद्दी पर कार्बन को छानकर क्रमशः उष्ण प्रबल नाइट्रिक अम्ल से, उष्ण जल से और उबलते ऐसीटोन और क्लोरोफार्म (२ : १) के मिश्रण से धो लेते हैं। निस्यन्द जब रंग-रहित हो जाता है, तब धोना बन्द कर देते हैं।

अब फिर उष्ण अमोनिया, उष्ण हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और अन्त में उष्ण जल से धो लेते हैं।

अब मूषे को १४०–१५०° श० पर सुखाते हैं। अब मूषे के पदार्थ को दहन नौका में रख-कर दहन नली में रखते हैं। यह नली प्रायः १३ मिलीमीटर के अभ्यन्तर व्यास और २० से ३० सेंटीमीटर लम्बी होनी चाहिए। अब नली को बड़ी सावधानी से गरम करते और उसमें आक्सिजन को धीरे-धीरे प्रवाहित करते हैं। आक्सिजन के प्रवाह की गति प्रति मिनट २० सी. सी. से अधिक नहीं रहनी चाहिए।

जो गैस निकलती है, उसे दानेदार अजल कैलसियम क्लोराइड में और फिर तौले हुए पोटाश बल्ब में ले जाते हैं। इस प्रकार सारे कार्बन को जलाकर कार्बन डायक्साइड में परिणत कर लेते हैं। यह जलाना तबतक जारी रखते हैं, जबतक सारा कार्बन पूर्णरूप से जल न जाय। पूर्णतया जल जाने के बाद भी प्रायः १० मिनट तक आक्सिजन प्रवाहित कर सारे कार्बन डायक्साइड को निकालते हैं। कार्बन के जलने से जो कार्बन डायक्साइड बनता हैं, उसकी मात्रा से कार्बन काल और ग्रेफ़ाइट की मात्रा मालूम होती है।

$$\text{कार्बन काल और ग्रेफ़ाइट} = \frac{०·२७२७ \times \text{कार्बन डायक्साइड का भार}}{\text{रबर का भार}} \times १००$$

समस्त पूरक

पूरक की मात्रा निकालने के लिएँ विलायक का उपयोग होता है। इसके लिए जो विलायक उपयुक्त होते हैं, उनमें निम्नलिखित गुण होना चाहिए—

२०°श० पर श्यानता	५६ सेकंड
प्रदीपनांक	१३२°श०
प्रज्ज्वलनांक	१७७°श०
विशिष्ट भार	०·८५३
रंग	रंगहीन

रवर के नमूने को महीन टुकड़ों में काटकर उसका ०·५ से १ ग्राम लेकर उसमें क्लोरोफार्म और ऐसीटोन का मिश्रण डालते हैं। ऐसे मिश्रण में क्लोरोफार्म लगभग ७० प्रतिशत और ऐसीटोन लगभग ३० प्रतिशत रहना चाहिए। रवर में विलायक को डालकर प्रायः ८ घंटे रखकर निष्कर्ष निकालते हैं। अब रवर के नमूने को एक छोटे १५० सी. सी. फ्लास्क में रखकर २० से २५ सी. सी. और विलायक डालकर १५०°–१५५° श० तक गरम कर उसे पूर्णतया घुला लेते हैं। जब सारा रवर घुल जाय, तब प्रायः ११०° श० तक ठंढा करके थोड़ी-थोड़ी मात्रा में १० से १५ सी. सी. बेंज़ीन डालकर, खूब मिलाकर, ठंढा कर पेट्रोलियम ईथर से तनु बनाकर फ्लास्क को लगभग भर लेते हैं। अब उसको ढँककर रात-भर रख देते हैं।

एक गूच मूषे में ऐस्वेस्टस रखकर ऐस्वेस्टस को पहले प्रदाहक सोडा के प्रबल विलयन से, फिर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से धो, सूखा, उत्तापन कर तौल लेते हैं। इसी मूषे में अब मिश्रण को छान लेते हैं, फिर पेट्रोलियम ईथर से, फिर गरम ऐसीटोन से धो लेते हैं। यदि निस्यन्द अब भी रंगीन है तो ऐसीटोन और क्लोरोफार्म के सम आयतन मिश्रण से धोकर फिर उष्ण एल्कोहल से धोते हैं।

अब मूषे को १०५° से ११०° श० तक चूल्हे पर एक घंटा सुखाकर, ठंढाकर तब तौलते हैं।

एक दूसरी विधि से भी समस्त पूरक की मात्रा निर्धारित कर सकते हैं। इस विधि में रवर के २ ग्राम नमूने का ऐसीटोन से निष्कर्ष निकाल कर उसे सुखाकर ३०० सी. सी. फ्लास्क में रखकर पश्चवाही वायु संघनक लगाकर ५० सी. सी. नाइट्रोबेंजीन डालकर उवालते हैं। वायु-संघनक २ फुट लम्बा होना चाहिए। जब रवर घुल जाय, तब उसे ठंढाकर फ्लास्क को गर्दन तक ऐसीटोन से भरकर केन्द्रापसारी में रखकर घुमाना चाहिए अथवा निथरने के लिए रख देना चाहिए। अब विलयन को निस्यन्दन-पत्र पर छान लेना चाहिए और अवशिष्ट भाग को ऐसीटोन से धो लेना चाहिए। अब उसे वाष्प-भट्ठी में सूखाकर ठंढा कर तौल लेते हैं।

समस्त पूरक में गन्धक

पूरक में गन्धक तीन रूप में रहते हैं। एक विलेय सल्फ़ेट के रूप में, दूसरा अविलेय वेरियम सल्फ़ेट के रूप में और तीसरा सल्फ़ाइड के रूप में।

रवर का पहले ऐसीटोन से निष्कर्ष निकाल लेते हैं। फिर रवर को प्रबल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से दो घंटे उवालते हैं। फिर रवर को धो, सुखाकर और जलाकर राख वना लेते हैं। राख में अम्ल के द्वारा प्राप्त निष्कर्ष को मिलाकर उवालकर सुखा लेते हैं। जो अवशिष्ट भाग वच जाता है उसे उष्ण पट्ट पर कुछ मिनट पकाकर २,३ सी. सी. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाल कर अम्लिक वनाकर वीकर में रखकर पानी से २५० सी. सी. वना लेते हैं।

अव इसे प्रायः आध घंटा उवालकर छानकर विलेय सल्फेट को वेरियम सल्फ़ेट के रूप में अवक्षिप्त कर विलेय सल्फेट में गन्धक की मात्रा निकालते हैं।

अव राख के कुछ भाग को लेकर द्रावक मिश्रण के साथ मिलाकर आवर्त्त भट्ठी में द्रवित कर, ठंढा कर, जल से निर्णेजित कर अविलेय भाग को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घुलाकर उसमें हल्का सलफ्यूरिक अम्ल द्वारा वेरियम सल्फेट के रूप में अवक्षिप्त कर उससे वेरियम की मात्रा निर्धारित करते हैं।

ग्लू (सरेस)

रवर का ऐसीटोन से निष्कर्ष निकालकर उसमें केल्डाल रीति से नाइट्रोजन की मात्रा निर्धारित करते हैं। कितना अमोनिया वना उसका पता प्रमाणिक सलफ्यूरिक अम्ल और क्षार विलयन के अनुमापन से लगता है। क्षार विलयन में क्षार की मात्रा के ६·२ से गुणा करने से ग्लू की मात्रा निकल आती है।

सेल्युलोस

ऐसिटीलेशन रीति से सेल्युलोश की मात्रा निर्धारित होती है। रवर के ०·५ ग्राम के साथ वैसा ही उपचार करते हैं जैसे समस्त पूरक के निर्धारण में करते हैं। अम्ल में घुलनेवाले अंश के निकल जाने पर जो तल्प (पैड) वच जाता है उसे उवलते जल से पहल पूर्णतया धोकर फिर थोड़े-थोड़े ऐसिटोन से धोते हैं। जव निस्यन्द साफ़ आने लगे तव ऐसिटोन से धोना वन्द कर एल्कोहल से धोकर १०५° श० पर सुखा लेते हैं। जव उसका भार स्थायी हो जाय तव सूखाना वन्द करते हैं। अव तल्प को एक तौले भार-वोतल में रखकर १० मिनट सुखाकर, ठंढाकर तौलते हैं। अव तल्प को ५० सी. सी. ऐसिटिक एन्हीड्राइड और ०·५ सी. सी. सलफ्यूरिक अम्ल डालकर वाष्प-उष्मक में एक घंटा पकाते हैं। पकाने के वाद ठंढा कर ऐसिटिक अम्ल (९० प्रतिशत) का २५ सी. सी. डालकर तौले हुए गूच मूषे में छान लेते हैं। उष्ण ऐसिटिक अम्ल से धोते हैं। जव निस्यन्द स्वच्छ आने लगे तव धोना वन्द करते हैं। अव चार से छः वार ऐसिटोन से धोकर गूच कीप से मूषे को हटाकर वाहर से पूरा साफ कर १४०° श० पर दो घंटा सुखाते हैं। अव इसे ठंढा कर तौलते हैं और उससे सेल्युलोस की मात्रा निकालते हैं।

रवर

रवर की मात्रा निकालने की कोई सीधी रीति नहीं है। अन्तर से ही रवर की मात्रा मालूम की जाती है। १०० भाग से खनिज पदार्थ और पूरक की प्रतिशत मात्रा, संयुक्त और मुक्त गन्धक की प्रतिशत मात्रा निकाल देने से जो अवशिष्ट अंश वच जाता है, वही रवर की प्रतिशत मात्रा है।

अभिसाधन

अभिसाधन के ज्ञान के लिए रबर में संयुक्त गन्धक की मात्रा का ज्ञान आवश्यक है। यदि समस्त गन्धक की मात्रा का ज्ञान हो, खनिज लवण में गन्धक की मात्रा का और असंयुक्त गन्धक की मात्रा का ज्ञान हो तो रबर के समस्त गन्धक की प्रतिशत मात्रा से खनिज लवण की प्रतिशत मात्रा और असंयुक्त गन्धक की मात्रा निकालने से संयुक्त गन्धक की प्रतिशत मात्रा का ज्ञान होता है। यही संयुक्त गन्धक की मात्रा वलकनीकरण का गन्धक है। उससे वलकनीकरण का गुणक $= \frac{\text{प्रतिशत वलकनीकरण गन्धक}}{\text{प्रतिशत रबर}} \times १००$ होता है।

तीसवाँ अध्याय

रबर का बेल्ट

सामानों को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने और मशीनों के संचालन में बेल्टों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे बेल्टों के निर्माण में आज रबर का उपयोग होता है। मशीनों के लिए जो बेल्ट बनते हैं, वे दो प्रकार के होते हैं। एक बेल्ट ऐसे होते हैं, जो सामानों को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते हैं। ऐसे बेल्टों को वाहक बेल्ट कहते हैं। दूसरे किस्म के बेल्ट शक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान पर वहन करते हैं। ऐसे बेल्टों को शक्ति, पारेषण बेल्ट कहते हैं।

ये दोनों प्रकार के बेल्ट रबर चढ़े कपड़ों से बनते हैं। कपड़ों पर रबर की तह बैठाने से कपड़े बड़े मजबूत हो जाते हैं। इसके लिए जो कपड़े उपयुक्त होते हैं, वे डक होते हैं। ये एक निश्चित चौड़ाई के प्रायः ४२ इंच चौड़े होते हैं और प्रति गज इनकी तौल २८,३२ या ३६ औंस की होती है।

बेल्ट बनाने के लिए जो डक इस्तेमाल होता है, उसके ताने का सूत पर्याप्त मजबूत होना चाहिए ताकि वह भार को सहन कर सके; पर साथ-ही-साथ ऐसे ताने के सूत पर भार पड़ने पर भी प्रत्यास्थता का गुण रहना चाहिए, नहीं तो भार पर वह खींचकर स्थायी रूप से झुक सकता है। बाना का सूत भी पर्याप्त मजबूत रहना चाहिए, ताकि यदि उसमें जब बेल्ट का बाँधनेवाला जोड़ा जाय, तब भार पर भी वह मजबूती से पकड़े रहे और निकल न जाय।

इन दोनों प्रकार के बेल्टों के बनाने में प्रारम्भिक कर्म एक से होते हैं। कपड़े को पहले सुखाना दोनों में पड़ता है। यह सुखाना भी तो उष्ण गोलकों के द्वारा होता है अथवा कपड़े को ऐसे कक्षों में रखने से होता है, जिसमें भाप से गरम किया हुआ पट्ट रखा हो। ऐसे कक्षों का ताप प्रायः ११०°–१२०° श० का रहना चाहिए। उष्ण दशा में ही उसपर रबर बैठाया जाता है। रबर बैठाने का काम तीन प्ररम्भवाली मशीनों में होता है। ऐसी प्ररम्भ मशीन में तीन गोलक होते हैं। इनमें पेंदेवाला गोलक अन्य गोलकों से धीमी चाल चलता है। पेंदे के गोलक की चाल से मध्य गोलक की चाल दुगुनी रहती है। ऊपर और मध्य के गोलक का ताप ८०–९०° श० रहना चाहिए। पेंदे के गोलक का ताप प्रायः ६०° श० रहता है। ऊपर

और मध्य के गोलक के बीच रबर डाला जाता है और वह मध्य के गोलक पर रहता है। मध्य गोलक का तल रबर पर बड़ी दृढ़ता से चिपका रहता है। पेंदे और मध्य गोलक के बीच कपड़ा डाला जाता है। रबर कपड़े की तहों में प्रविष्ट कर उसपर चिपक जाता है और फिर ठंढा कर लिया जाता है। उसपर फिर इसी प्रकार रबर को बैठाकर ऐसे अनेक तहों को जोड़कर इतना मोटा और दृढ़ बनाया जाता है कि वह बोझ को ले आ-जा सके। ऐसी मोटी तह पर फिर रबर का एक चीमड़ आवरण चढ़ाया जाता है। ऐसा आवरण कपड़े को संक्षारण और यांत्रिक चोटों से सुरक्षित रखता है।

कुछ बेल्ट ऐसे होते हैं जिनकी मोटाई एक-सी होती है। ऐसे बेल्ट ६ फुट तक चौड़े हो सकते हैं। ऐसे बेल्ट की समस्त चौड़ाई में स्तरों की संख्या एक-सी रहती है। कुछ बेल्ट ऐसे होते हैं जो बीच में पतले होते और किनारों में मोटे होते हैं। ऐसे बेल्ट के मध्य में रबर की मात्रा अधिक रहती है। इस कारण रबर की तह मोटी होती है।

तहों को मोड़कर एक करने के अनेक यंत्र बने हैं। ये यंत्र उसी प्रकार के हैं जैसे बरसाती कपड़ों के तैयार करने में उपयुक्त होते हैं। इनके जोड़ ऐसे होते हैं कि वे एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर रहें। ५०० फुट के अन्दर दो से अधिक अनुप्रस्थ जोड़े नहीं रहना चाहिए और ५० फुट से कम दूरी पर कोई जोड़ नहीं रहना चाहिए।

बेल्ट के ऊपर रबर बैठाने के अनेक तरीके हैं। यह साधारणतया प्ररम्भ मशीन में होता है, जिस मशीन का वर्णन पूर्व में हो चुका है। आवश्यक मोटाई की प्ररम्भ मशीन में दबाई चादरें तैयार कपड़े पर पहले एक ओर और पीछे दूसरी ओर चढ़ाई जाती है और उसे दबाव गोलक में दबाया जाता है। इस प्रकार प्ररम्भ मशीन में $\frac{३}{१६}$ इंच मोटाई तक की तहें चढ़ाई जा सकती हैं।

किनारों पर जो रबर बहकर निकल जाते हैं, उन्हें किनारों पर ही दबाकर चढ़ा देते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत बेल्टों को बड़े-बड़े प्रेसों में वल्कनीकरण के समय बेल्ट खींचे हुए रहते हैं। पट्टों के बीच-बीच में जो छड़ रहती हैं, उनसे बेल्ट की चौड़ाई बढ़ती नहीं है। चौड़ाई के बढ़ने में छड़ों से नियंत्रण होता है, दबाने के लिए जो प्रेस उपयुक्त होते हैं वे आम्भस किस्म के होते हैं और उनसे प्रतिवर्ग इंच प्रायः १२० पाउण्ड दबाव प्राप्त होना चाहिए। ऐसे वाहक बेल्ट कोयले के ढोने में एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने में उपयुक्त होते हैं। खानों में इनसे ही अनेक प्रकार के खनिज निकाल कर बाहर लाये जाते हैं।

पारेषण बेल्ट साधारणतया वाहक बेल्ट से पतले होते हैं। इनके भी कपड़े वैसे ही तैयार होते हैं जैसे वाहक बेल्ट के तैयार होते हैं। इन कपड़ों को फिर आवश्यक मोटाई में काटकर तब उनपर गोलक पर रबर चढ़ाते हैं। कभी-कभी वल्कनीकरण के बाद आवश्यक मोटाई में काटते हैं। किनारों को रबर के विलयन से ढँककर तब सुखाते और फिर वल्कनीकृत करते हैं।

सब प्रकार के बेल्ट भाप-तप्त प्रेसों में वल्कनीकृत होते हैं जिनमें हनु लगे रहते हैं, जिनसे

वल्कनीकरण के समय वेल्ट तने हुए रहते हैं। पार्श्व में खुले हुए प्रसों में अन्तहीन वेल्ट वनते हैं। एक ऐसे प्रेस का चित्र यहाँ दिया हुआ है।
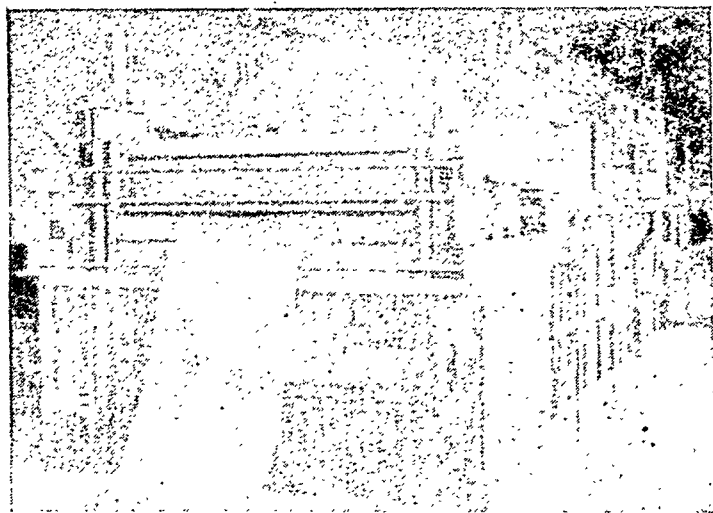
चित्र ६१—वेल्ट दवाने की मशीन

रवर मढ़े वेल्ट की तहों के वीच कितना अभ्याकर्षण होता है, इसका परीक्षण वहुत आवश्यक है क्योंकि इसी पर वेल्ट की मजवूती निर्भर करती है। अभ्याकर्षण जितना ही अधिक हो, वेल्ट उतना ही अधिक मजबूत समझा जाता है। इसके लिए दो रीतियाँ उपयुक्त होतीं है। एक रीति को मृतभार रीति कहते हैं। इस रीति में वेल्ट के एक छोटे टुकड़े एक इंच चौड़े टुकड़े को तेज चाकू अथवा टप्पे मशीन से काट लेते हैं। परत को तव कुछ खोल लेते हैं ताकि उसके एक परत से वाट लटकाया जा सके और दूसरे को किसी दृढ़ स्तम्भ पर लटका सके। वाट को तवतक डालते जाते हैं जवतक परत खुलना न शुरू कर दे। वाट इतना होना चाहिए कि प्रति मिनट १ इंच परत खुलता रहे। यह भार उसका घर्षण-अभ्याकर्षण है। कभी-कभी एक दूसरी रीति से भी घर्षण-अभ्याकर्षण निकालते हैं। इस रीति में वाट को स्थायी रखा जाता है और जिस वेग से परत निकलती है, वही उसका घर्षण, अभ्याकर्षण होता है।

दूसरी रीति को 'परीक्षण मशीन रीति' कहते हैं। इस रीति में भी परत को कुछ खोलकर रवर परीक्षण परीक्षक में रखकर पेंच से कस देते हैं। पवल को तव उठाकर रवर को स्वच्छन्दता से झुलने देते हैं। अव हनुओं को प्रति मिनट २ इंच की दर से पृथक् करते हैं। उसके अंकानीक पर अभ्याकर्षण का जो अंक प्राप्त होता है उसे महत्तम, न्यूनतम और औसत करके अंकित करते हैं। इनकी सहायता से रेखा-चित्र तैयार करते हैं। आप-से-आप अंकित होनेवाले यंत्र भी वने हैं।

वेल्टों के वनाने में दो प्रकार के रवर इस्तेमाल होते हैं, एक प्रकार के रवर वस्त्रों के छेदों को भरने के लिए और दूसरे प्रकार के रवर ऊपर मढ़ने के लिए उपयुक्त होते हैं। वाहक के वस्त्र वेल्टों में जो रवर उपयुक्त होते हैं, वे निम्नलिखित रूप के होते हैं।

रबर	७२	५८
पुनर्ग्रहीत रबर	३६	७६
आपाचायिता	१	१
एस्टियरिक अम्ल	२	१
चीड़-कोल-तार	२	१
प्रति-आक्सीकारक	१	१
जिंक आक्साइड	५	५
कार्बन-काल	२८	–
कोमल-काल	—	४८
डाइबेंजथायजील डाइसल्फाइड	१	१
टेट्रामेथिल थायरमडाइसल्फाइड	०·१	०·१
गन्धक	२·५	२·०

ऐसे रबर का अभिसाधन प्रेस में प्रतिवर्ग इंच पर ४० पाउण्ड दबाव से हो जाता है।

पारेषण बेल्ट

रबर	७४
पुनर्ग्रहीत	३६
कार्बनकाल	२५
चीनी मिट्टी	४
रेज़िन तेल	३
जिंक आक्साइड	१५
गन्धक	२·७५
ब्युटिरल्डीहाइड एनिलिन	०·७५

प्रायः ४५ मिनट में यह प्रतिवर्ग इंच ४५ पाउण्ड दबाव पर अभिसाधित हो जाता है।

एकतीसवाँ अध्याय

उपसंहार

आज से दो वर्ष से अधिक हुए जब इस पुस्तक की पांडुलिपि लिखी गई थी। इस बीच रबर की स्थिति में जो परिवर्तन हुए हैं, उनका दिग्दर्शन करा देना आवश्यक प्रतीत होता है।

रबर के उत्पादन में भारत अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति कर सके, इसके लिए भारत संघ-सरकार सचेत है। भारत सरकार चाहती है कि जल्द से जल्द हमारे देश के रबर का उत्पादन इतना बढ़ जाय कि उसे किसी दूसरे देश पर निर्भर रहना न पड़े। इस सम्बन्ध में भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली है, जिसमें रबर के पेड़ों की संख्या बढ़ाने और जहाँ पेड़ पुराने हो गये हैं, वहाँ नये पेड़ों के लगाने का आदेश दिया है। इस सम्बन्ध में लोक-सभा में एक बिल भी पास हुआ है। यह बिल इसी वर्ष १९५४ ई० में नवम्बर मास के अधिवेशन में उपस्थित किया गया था और सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया। जब नये पेड़ १५ वर्षों में प्रौढ़ावस्था में पहुँच जायँगे, तब उनसे इतना आक्षीर प्राप्त होगा कि हमारी रबर की सतत् बढ़ती हुई माँग की पूर्त्ति सरलता से हो जायगी। मोटरकारों, मोटरट्रकों, मोटरबसों और साइकिलों इत्यादि की वृद्धि से रबर की माँग दिन-दिन बढ़ रही है।

आज अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए हमें बाहर से रबर मँगाना पड़ता है, यद्यपि हम अपने कच्चे रबर को भी कुछ बाहर भेजते हैं। रबर के समान भी अभी पर्याप्त मात्रा में बाहर से इस देश में आते हैं। आज भारत की प्रायः २,००,००० एकड़ भूमि में रबर की खेती होती है। उससे प्रायः २०,००० टन रबर प्रति वर्ष उत्पन्न होता है। देश की रबर की वार्षिक आवश्यकता लगभग २५,००० टन कूती गई है, जिसकी मात्रा समय के साथ क्रमशः बढ़ती जायगी।

रबर के अनेक कारखाने भारत में खुल गये हैं और उनकी वृद्धि दिनो-दिन हो रही है। अब भी इस व्यवसाय में पूँजी लगाने की गुंजायश है। भारत के अनेक प्रदेशों में रबर के सामान बनाने के कारखाने अभीतक नहीं खुले हैं।

भारत में कृत्रिम रबर तैयार करने का भी कारखाना खुलना चाहिए। अभी तक ऐसा कोई कारखाना इस देश में नहीं है। अमेरिका, रूस और यूरोप के अनेक देशों में कृत्रिम रबर-निर्माण के कारखाने हैं और उनमें पर्याप्त मात्रा में कृत्रिम रबर तैयार होता है।

कुछ गुणों में कृत्रिम रबर प्राकृतिक रबर के गुणों से श्रेष्ठतर होते हैं। कुछ विशेष कामों के लिए तो वे सर्वश्रेष्ठ होते हैं। कृत्रिम रबर-निर्माण की सब सामग्री इस देश में मिलती या मिल

सकती हैं। अतः यह आवश्यक है कि कम--से-कम एक कारखाना भी इस देश में अवश्य खुले। यदि कोई पूँजीपति इसमें पूँजी लगाने को तैयार न हो तो भारत-सरकार को इस कारखाने को खोलना चाहिए। ऐसे कारखानों में पद-पद पर विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है; ऐसे व्यक्ति जो रसायन की इस विशेष शाखा में दक्ष हों, जो इंजनियरिंग के इस क्षेत्र के विशेष अनुभवी हों। यह काम सरकार से ही हो सकता है। इस बात का विशेष रूप से अनुसंधान कर देखना है कि किस विधि के उपयोग से यहाँ के कच्चे माल से श्रेष्ठतर कोटि का रबर प्राप्त हो सकता है। आशा है कि आगामी पंच-वर्षीय योजना में ऐसे कारखाने खोलने का प्रस्ताव अवश्य रहेगा।

प्राकृतिक रबर की खपत आज सबसे अधिक अमेरिका में होती है। अमेरिकी वाणिज्य-विभाग की रिपोर्ट से पता चलता है कि नवम्बर १६५३ ई० में अमेरिका में ४३,१६७ टन रबर की खपत हुई थी, उस मास के समस्त रबर (प्राकृतिक और कृत्रिम) की खपत का यह ४५ प्रतिशत था। नवम्बर १६५२ में अमेरिका में कुल रबर की खपत ३६ प्रतिशत और नवम्बर १६५१ में ३५ प्रतिशत थी। १६५३ के प्रथम ग्यारह महीनों में अमेरिका में ५,१०, ६८६ टन प्राकृतिक रबर खपा था, जब कि १६५२ में ग्यारह महीनों में ४,०६०५६ टन ही प्राकृतिक रबर खपा था।

अमेरिका के रबर-उद्योग की संस्था 'रबर मैनुफैक्चरिंग ऐसोसियेशन' ने यह अनुमान लगाया है कि १६५३ में कुल कृत्रिम और प्राकृतिक रबर का १३,४२,००० टन इस्तेमाल हुआ था। इसकी तुलना में १६५२ में केवल १२,६१,४१३ टन इस्तेमाल हुआ था। १६५२ में कृत्रिम की खपत भी अमेरिका में ८,०७,५६७ टन हुई थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्राकृतिक रबर की औसत वार्षिक खपत अमेरिका में लगभग ५,२५,००० टन हो रही है।

अमेरिका की एक अन्य रबर संस्था नेचुरल रबर ब्यूरो के मतानुसार १६५४ में अमेरिका में १२,८०,००० टन नया रबर लगेगा। इसमें प्रायः ५० प्रतिशत अर्थात् ६,००,००० टन प्राकृतिक रबर होगा। कुछ अमेरिकी व्यवसायियों का अनुमान है कि १६५४ में कम-से-कम १३,००,००० टन नया रबर लगेगा, जिसमें प्रायः आधा प्राकृतिक रबर होगा।

१९५२ के मई मास में रबर-व्यवसाय से सम्बन्धित १८ देशों के प्रतिनिधि ओटावा में मिले थे। उन लोगों का अनुमान है कि रबर का वार्षिक उत्पादन १,६६,०००० टन और खपत १,४५,०००० टन है। इसमें ७७,००,००० टन कामनवेल्थ देशों में और उसका ७५ प्रतिशत केवल मलाया में उत्पन्न होता है।

समस्त रबर के उत्पादन का ११ प्रतिशत इंगलैंड में, ६.५ प्रतिशत फ्रांस में, ७ प्रतिशत रूस में और शेष १६ प्रतिशत यूरोप के अन्य देशों में जाता है। १६५२ में लण्डन में उत्कृष्ट कोटि के रबर का मूल्य २ शिलिंग ४ पेंस प्रति पाउण्ड था, जब कि १६५१ में ४ शिलिंग ३ पेंस था। मूल्य गिर जाने से व्यवसाय की कुछ क्षति हुई है।

मलाया में जो राजनीतिक उथल-पुथल चल रहा है उससे रबर के उत्पादन में कुछ कमी अवश्य हुई है; पर स्थिति अब सुधर रही है। अन्य देशों में भी इसी प्रकार के उथल-पुथल से प्राकृतिक रबर के उत्पादन में कुछ कमी हुई है। मजदूरों के पारिश्रमिक बढ़ जाने और मशीनों के अभाव से रबर के मूल्य में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। पुराने पेड़ों को हटाकर उनके स्थानों

पर नये पेड़ों के लगाने में ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रायः १३०० रुपया प्रति एकड़ खर्च पड़ता है। मलाया में छोटे-छोटे रबर के बागों का क्षेत्र प्रायः ४५ लाख एकड़ भूमि कूता गया है।

कृत्रिम रबर

१६५२ ई० में रूस और रूस से सम्बन्धित देशों को छोड़कर अन्य देशों में ४६७,६४४ टन कृत्रिम रबर उत्पन्न हुआ था। इसमें केवल अमेरिका में ४२७,४२५ टन बना था। कृत्रिम रबर के निर्माण में कुछ देशों में बाधाएँ थीं, जो अब प्रायः दूर हो गई हैं। अमेरिका सरकार ने कृत्रिम रबर के अनुसन्धान के लिए १६५२-५३ में ६५ लाख डालर का बजट बनाया था। कुछ ऐसी विधियों का भी अमेरिका में आविष्कार हुआ है, जिससे आशा की जाती है कि बहुमूल्य मशीनरियों के बिना भी कृत्रिम रबर का उत्पादन हो सकता है।

१६५२ ई० में एक नये प्रकार का रबर बना। इस रबर को हिपेलोन नाम दिया गया है। पोलीथाइलिन के क्लोरीन और सलफ्युरील क्लोराइड के साधन से यह बनता है। इससे ऐसा रबर प्राप्त होता है कि जिसको मिलाया, संयोजित (मिश्रित) और वल्कनीकृत किया जा सकता है। ऐसा अभिसाधित रबर ओजोन और प्रकाश के प्रति उत्कृष्ट कोटि का अवरोधक होता है। पोलिब्युटाडिन के हाइड्रोजनीकरण से एक और नया रबर प्राप्त हुआ है, जिसे हाइड्रोपोल कहते हैं। यह बहुत निम्न ताप पर द्रव नाइट्रोजन में वलकनीकृत हो सकता है और ऐसे ताप पर भंगुर भी नहीं होता।

अनुक्रमणिका और वैज्ञानिक शब्दावली

अ

अवकृत	reduced	१६३
अवनमन	depression	४६
अवरोध	resistance	१८२
अवरोधक	resistant, insulator	११६
अवरोधन	insulation	१७१
अवशोषण	absorption	३८
अवष्टम्भ	barrage	३
अविरत	constant	६३
अविराम	continous	१०४
असंतृप्ति	unsaturation	४३
असंयक	adhesive	४१
असुनम्य	non-plastic	५१
आइसोप्रीन	isoprene	१०४
आइसोलीन	isolene	१३०
आक्सीकरण	oxidation	९९
आक्सीकारक	oxidant	१३१
आकुञ्जन	camber	१४६
आक्षीर	latex	२०
आघात	impact	४४,१२४
आच्छादन-शक्ति	covering-power	६३
आनम्य	non-plastic	११७
आपाचन	peptization	१५६
आपाचयिता	peptizer	१५८
आयास	stress	१८३
आलम्बन	suspension	२६
आवरण	shell	३,२६,७५
आवेश	charge	२६
आवृत्ति	frequency	६८
आस्तर	lining	१३१, १४८
आसक्ति	adhesion	१६६
आसृस्त	suspended or dispersed	२६
आसृसन	dispersion	२७
आसवन	distillation	३८
आसुत	distillate	१९८
आसुत जल	distilled water	१६७
इण्डियन रबर बोर्ड	Indian Rubber Board	५

एक-भाज	mono-mer	११२
एक-भाजक	mono-mer	११६
एक्वारेक्सडी		१२०
एच. बी.	H. B.	४२
एम. बी. टी. एस.	dibenz thiazyl disulphide	१६५
एथिनायडरेजिन	ethenoid resin	१०२
एधा	cambium	२१
एल्डोल	aldɔl	१०५
एलास्टोमर	elastomer	१०३
एलोप्रीन	alloprene	४०
एस. एच.	S.H.	४२
एस्टाइरिन	Styrene	१०७
एन्टीमनी सल्फाइड	antimony sulphide	६४
ऐलवेन	albane	१८
ऐस्वेस्टस	asbestos	६१
ऋणाविष्ट	negatively charged	३४
ओएन स्लेजर	Oenslager	७२
ओस्टवल्ड विस्कोमीटर	Ostwald viscometer	२८
कचकड़ा	ebonite	११,६५
कजली	lamp black	६२
कड़ाह	pan	९४
कतरनी	nip	६४
कच्चा रवर	raw rubber	५
कपाट	valve	६८
कपिल	brown	१२५
कर्तक	cutter	५५
कला	phase	५०
कलिल	colloid	८१
काई	moss	३३
काट	cut	२१
कांटा	spike	१५६
कार्नौवामोम	carnauba wax	१६७
कार्बनिक रंग	organic dye	६४
काय	carcas	८१
कायपरत	body pile	१५६
किएवन	fermentation	१०४

गुणक	factor	६६
गुयायुले	gyayule	१६
गूड इयर	Good year	१०
गेंद चक्की	ball mill	८१
गेरू	ochre	६४
गैस कार्बन	gas carbon	११०
गोंद कराया	Gum karaya	३४
गोंद ट्रैगेकान्त	Gum traganth	३४
गोंद ट्रैगेन सीड	gum tragen seed	३४
गोंद बबूल	gum arabic	३४
गोलक	roller	१०
घटीकाच	watchglass	१८६
घर्षण	friction	१०, ६३
घानी	batch	
घिरनी	pulley	१८०
घिसाई	wear	१६६
घूर्णक	revolver	५७
घृषि	rubber	६
चंचु	jet	
चक्र	roll	३५
चक्रण	cyclisation	४३
चर्वक	masticator	१०
चर्वन	mastication	५३, ५७
चर्वित	masticated	४२
चाप	arc	१०६
चांप	stress	१२३
चार	tread	१५६, १६०
चार परत	tread layer	१५६
चिपचिपा	tacky	२५, ४०
चिक्ल सेपोडिला	chicle sapodila	१६
चीनी मिट्टी	china clay	६२
चीमड़	flexible	६२
चूचुक	teat	८२
चेमिगम	chemigum	११७, १२७
च्यवन	tapping	२८
च्यावक	tapper	२२

धनाग्र	anode	२६
धान	pouches	११५
धानी	holder	११८
धूलन चूर्ण	dusting power	३५
नम्य	flexible	११७
नाइट्रोसाइट-ए	Nitro-site-A	४५
नाइट्रोसाइट-बी	Nitrosite-B	४५
निक्षेप	deposit	६२
निचोल	jacket	६६
निचोलित	jacketted	६६
निर्जलीकरण	dehydration	१०५
निमज्जन	immersion	८२
निरन्तर	continuous	२५
नियंत्रण	control	२
निराकरण	neutralisation	२६
निलम्वन माध्यम	suspended medium	३४
निष्कर्ष	extract	३६
निषादक	gland	६८
निस्यन्द	filtrate	१८८
निस्यन्दक	fiter	१८७
नीचोड़	squeeze	१०५
नीवोप्लास-ए	neoplas-A	१३४
पपड़ी	incrustation	८३
पवलिकर		१०५
परगुट	pergut	४०
परड्यूरेन	perduren	१३३
परब्यूनान	perbunan	११७
परब्यूनान-एक्स्ट्रा	perbunan-extra	१२६
परिक्रमण	revolution	१८२
परिक्षिप्त	dispersed	२६
परिक्षेपण	dispersion	२६,३७,५०
परिभ्रामक	revolving	१४३
परिरक्षक	protective	११८,१२५
परिरक्षण	preservation	२५, ३२
परिरक्षी	preservative	२५,३३
पवल	pawl	१८०

बन्धक	binder	८५
बफर	buffer	१२०
बलाटा	balata	१८
बलिता	bobbin	१७२
बहाव	extrusion	१७२
बाट	weights	२०५
बहु-गोलक	poly-roller	१४६
वाहक	carrier	६९
बाहुप	sleeve	१४४
बेराइटीज	barytes	६१
ब्राउनीय गति	Brownian motion	२६
ब्युटाडीन	butadiene	१०४
ब्युटिल रबर	butyl rubber	१३२
ब्युना-एस	Buna-S	११७
बौछार	spray	३४
भंगुर	brittle	१०
भंजक	destructive	४५
भंजन	cracking	४५
भारु	bearing	६१
भेदन	incision	१७
भेद्यता	penetration	१३६
भ्राशमान	fluorescent	१८७
मनका	bead	१५७
मंडलक	disc	१८३
मलाई	cream	२२, ३३
मात्रक	unit	१०६
मान	value	९६
मापांक	modulus	६३, १२३, १८०
मापी	measure	९८
मारक प्रभाव	deadening effect	६१
मिथाक्रिलिक अम्ल	methacrylic acid	१०८
मिथाक्रिलेट	methacrylate	१०८
मिश्रक	mixer	
मिश्रित पुरभाजन	mixed polymerisation	११६
मुर्दासंख	litharge	१६२
मेड़	ridge	९

संतृप्त	saturated	४५
संपरिवर्तन	modification	३५
संपीड़न सामर्थ्य	compression power	४४
संयोजन	compounding	५३
संरक्षण	protection	६
संरक्षित	protected, protective	३२, ३४
संरोहण	coalescence	२९
संवृत्ति भट्ठी	muffle furnace	१६१
संवृत्त शृंखला	closed chain	११३
संरूपण	form	५२
संसक्त	coherent	२६
संसक्ति	cohesion	१६६
संश्लिष्ट रबर	synthetic rubber	१०२
सांचा	mould, die	१४२
स्कंध	coagulum	२९
स्कंधक	coagulant	२९
स्कंधन	coagulation	३६
स्कंधित पिंड	congulated mass	२७
स्तर	layer	२६
स्थायीकारक	stabilising agent	११६
स्थायीसम	permanent set	१२३
स्नेहन	lubrication	१२८
स्पंज	sponge	८६
हाइकर	Hyker	११७, १२७
हाइड्रोजनीकरण	hydrogenation	४५
हिमीकरण	freezing	६४
हनु	jaw	१८२, २०४
हिम्य	glacial	१३७
हिवीया	Hebea	८
हैलोरबर	halo-rubber	१०३
हाज़	hose	१७४
हृष्करण	sensitisation	८०
हृष्कारक	sensitiser	१०२